मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज

ऋषि बिसेन

मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज

[Madhyabharat me Panwar(Powar) Samaj]

ऋषि बिसेन(IRS)

B.E.(Metallurgy), M.A.(History)

MTBL(NALSAR, Hyderabad)

माँ कौशल्या प्रकाशन

पंवार ले आउट, प्रभुत्तमनगर,

बालाघाट(मध्यप्रदेश)

मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज

[Madhybharat me Panwar(Powar) Samaj]

लेखक

ऋषि बिसेन

प्रकाशक एवं सर्वाधिकार

श्रीमती बिंदु बिसेन,
माँ कौशल्या प्रकाशन,
पंवार ले आउट, प्रभुत्तमनगर,
बालाघाट(म. प्र.)

मुखपृष्ठ

चि. मानस बिसेन, नागपुर

प्रकाशन

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वादशी,
कालयुक्त संवत्सर विक्रम संवत, २०८२
(२४/०५/२०२५)

ISBN

978-93-342-7498-1
(मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज)

प्रेरणास्त्रोत

पंवार श्रीराम मंदिर, सिहारपाठ

बैहर, जिला-बालाघाट (मध्यप्रदेश)

मनोगत और जीवन परिचय

अपने इतिहास को जानने की जिज्ञासा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्वाभाविक रूप से होती है। हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं, हमारे पूर्वज कौन थे, ऐसे अनेक प्रश्न हमारे मन में बार-बार उठते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर न केवल हमें हमारी पहचान से जोड़ते हैं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक जड़ों से भी साक्षात्कार कराते हैं। मेरे भीतर यह जिज्ञासा बचपन से ही रही है, जो समय के साथ एक उद्देश्य में परिवर्तित हो गई। यह उद्देश्य है अपने समाज, संस्कृति और गौरवपूर्ण अतीत को जानना, समझना और उसे लेखनी के माध्यम से संरक्षित करना।

मेरा पालन-पोषण एक संयुक्त परिवार में हुआ, जहाँ पारंपरिक संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और मूल्यों के प्रति गहरा आदरभाव था। इस पारिवारिक वातावरण ने मुझे लगातार अपनी जड़ों की ओर आकर्षित किया। विशेष रूप से मेरी दादीजी और माताजी की प्रेरणा ने मुझे अपनी संस्कृति के प्रति सजग, संवेदनशील और गर्वान्वित होने का भाव दिया। दादीजी के अनुभवों और किस्सों ने जहाँ मुझे समाज की मौखिक परंपरा और गहराई से जोड़ा, वहीं माताजी की स्नेहमयी सीख और जीवन-मूल्यों ने मेरे दृष्टिकोण को आकार दिया। इन दोनों महान महिलाओं की भूमिका मेरे जीवन और सोच की नींव रही है।

मैं बचपन से ही बैहर नगर स्थित पंवार राम तीर्थ, सिहरपाठ से जुड़ा हुआ था। कक्षा दसवीं में मैंने बैहर तहसील में प्रथम स्थान प्राप्त किया, जिसके लिए मुझे समाज के सर्वोच्च संस्थान, पंवार राम मंदिर ट्रस्ट, बैहर द्वारा विशेष रूप से सम्मानित किया गया और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। ये सभी घटनाएँ मेरे भीतर समाज और संस्कृति के प्रति गहरे लगाव का कारण बनीं। समय के साथ, मेरी जिज्ञासा और बढ़ी और मुझे अपने समाज के इतिहास को जानने की तीव्र इच्छा हुई। यह पुस्तक उसी प्रेरणा और जिज्ञासा की परिणति है। यह एक विनम्र प्रयास है, जिसके माध्यम से मैं अपनी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को न केवल समझना चाहता हूँ बल्कि उसे भावी पीढ़ियों तक भी पहुँचाना चाहता हूँ।

बचपन में, मैंने अक्सर यह सुना था कि हमारे पूर्वज मालवा-राजपूताना से आए थे, और हमारे परिवार के लोग कभी राजा-महाराजा हुआ करते थे। यह जानकारी मेरे भीतर समाज के वास्तविक इतिहास को जानने की जिज्ञासा और बढ़ा देती थी।

इसके अतिरिक्त सिहारपाठ पहाड़ी पर प्रतिवर्ष राम नवमी के अवसर पर पंवार समाज के द्वारा मेला आयोजित किया जाता है, जहाँ समाज के कई महानुभावों के भाषणों को सुनने का अवसर मिलता था। इन भाषणों और विचारों ने मुझे समाज के लिए शोध करने और उसकी सांस्कृतिक धरोहर को जानने की प्रेरणा दी।

सन् १९९९ में श्री व्ही. बी. देशमुख जी के मार्गदर्शन में, रायपुर पंवार संगठन के तत्वाधान में विभिन्न महाविद्यालयीन स्तर के युवाओं का संगठन निर्माण कार्य आरंभ किया, जिससे मेरी समाज संगठनों में सक्रिय भागीदारी की शुरुआत हुई। इस प्रयास ने न केवल मुझे समाज के विकास में योगदान करने के लिए प्रेरित किया, बल्कि मेरे भीतर समाज के इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर को जानने की जिज्ञासा भी बढ़ाई। इस दिशा में सन् २०१२ से मैंने समाज के इतिहास पर गहन शोध करना शुरू किया और साथ ही फेसबुक पर विभिन्न समूहों का निर्माण कर समाज के इतिहास और संस्कृति का प्रचार-प्रसार भी किया। इस माध्यम से समाजजनों को जोड़ने और समाज की समृद्ध धरोहर को साझा करने का कार्य किया गया।

सन् २०२० में पोवारी उत्कर्ष व्हाट्सएप समूह के माध्यम से समाज की मातृभाषा, पोवारी को सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके साथ ही, अनेक पोवारी साहित्यकारों के साथ मिलकर समाज की संस्कृति के विभिन्न आयामों को सामने लाकर लेखन कार्य की विधिवत शुरुआत की। इसी क्रम में, सन् २०२१ में समाज की संस्कृति और इतिहास विषयों पर पोवारी भाषा में एक सौ आठ कविताओं का संग्रह "पोवारी संस्कृति" का विमोचन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख, आदरणीय मोहन जी भागवत के हाथों से करवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसी क्रम में, सन् २०२३ में मैंने समाज और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए पोवारी भाषा में कई महत्वपूर्ण कृतियों का लेखन किया। इस वर्ष के दौरान, "देवघर" नामक एक कथासंग्रह, "पोवारी" नामक एक काव्य संग्रह और "पोवारी धरोहर" नामक एक गद्य संग्रह का प्रकाशन हुआ। इन कृतियों में समाज के विविध आयामों, सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक धरोहर को उजागर करने का प्रयास किया गया। सन् २०२३ में ही, मैंने पोवारी भाषा के इतिहास और उसके परिचय पर हिंदी में एक शोधग्रंथ "पोवारी भाषा का परिचय" लिखने का भी सौभाग्य प्राप्त किया। इस ग्रंथ में पोवारी भाषा की उत्पत्ति, विकास और सांस्कृतिक महत्व को गहनता से विश्लेषित किया गया है, जिससे इस भाषा की अहमियत और समाज में इसके स्थान

को समझा जा सके। यह शोधग्रंथ पोवारी भाषा को न केवल संरक्षित करने का प्रयास है, बल्कि इसे अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने का भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

बचपन से ही इतिहास और संस्कृति के प्रति गहरी रुचि रही थी, और इस रुचि को शोध के माध्यम से शब्दों के रूप में प्रस्तुत करने की शुरुआत मैंने २०१२ में की थी। इसके बाद, निरंतर शोध और लेखन के प्रयासों के परिणामस्वरूप, यह काम सन् २०२१ में एक पुस्तक के रूप में तैयार हो गया था। लेकिन कुछ कारणों से यह प्रकाशित नहीं हो पाया। अब इस पुस्तक का संवर्धित संस्करण विधिवत समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह पुस्तक "मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज" नाम से प्रकाशित हो रही है, जो मध्यभारत में स्थित पंवार समाज के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं पर आधारित है। इसमें इस समाज के इतिहास, परंपराओं, और सांस्कृतिक धरोहर का गहन विश्लेषण किया गया है, जिससे इस समाज की पहचान और योगदान को सही संदर्भ में प्रस्तुत किया जा सके। यह किताब समाज के लोगों के लिए एक अमूल्य धरोहर साबित होगी, जो उन्हें अपने इतिहास और संस्कृति से जुड़ने का एक सशक्त अवसर प्रदान करती है।

इस किताब में छत्तीस कुल पंवार समाज की उत्पत्ति और उसके मध्य भारत में आगमन से लेकर वैनगंगा क्षेत्र में जाकर स्थाई रूप से बसने का इतिहास, विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से लिखने का प्रयास किया गया है। साथ ही, पंवार समाज के विविध सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर भी लेखन किया गया है। इस कार्य में विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों के साथ-साथ समाजजनों से संपर्क कर समाज का वास्तविक इतिहास और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप को सामने लाने का यथासंभव प्रयास किया गया है।

पंवार समाज का इतिहास बहुत ही समृद्ध और विविधतापूर्ण है। अधिकतर इतिहासकारों ने पंवारों को आबूगढ़ में स्थित अग्निकुंड से उत्पन्न परमार वंश की एक शाखा मानकर उनका इतिहास लिखा है। इसी प्रकार कुछ इतिहासकारों ने उन्हें पंवार राजपूतों की वैनगंगा तटीय शाखा बताया है। १९१६ में आर.वी. रसल ने अपनी पुस्तक में पंवार राजपूत वंश की एक शाखा "नागपुर पंवार" के बारे में उल्लेख किया था। हालांकि, ये सभी विचार पंवार समाज के छत्तीस कुलीन जातीय अस्तित्व की संपूर्ण व्याख्या नहीं कर पाते हैं।

इस पुस्तक के पहले अध्याय में पंवारों के कुल और जातीय अस्तित्व पर गहन विचार किया गया है। यह सिद्ध किया गया है कि पंवार जातीय समुदाय को किसी एक कुल की शाखा के रूप में नहीं देखा जा सकता। ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों और जनगणना प्रतिवेदनों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मध्यभारत के नगरधन में पंवार समाज का आगमन एक राजपूत सैन्य जत्थे के रूप में हुआ था, जो बाद में वैनगंगा क्षेत्र के भंडारा, सिवनी और बालाघाट जिलों में स्थाई रूप से बस गया।

दो सौ वर्षों से भी अधिक समय के सभी दस्तावेजों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि सम्पूर्ण पोवार समाज एक सामूहिक सैन्य दस्ते के रूप में केंद्रीय प्रांत के नगरधन-नागपुर क्षेत्र में आया और फिर उनकी स्थायी बसाहट वैनगंगा की घाटियों में हुई। इन दस्तावेजों से यह भी सिद्ध होता है कि मध्यभारत में आकर इन्होंने अपने ही छत्तीस कुलों से सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध बनाए। इसलिए, इन्हें किसी एक कुल या वंश की शाखा नहीं माना जा सकता, क्योंकि ये एक पुरातन समुदाय के रूप में रहते हुए अपने अस्तित्व और संस्कृति को बनाए रखे हुए हैं। सभी ऐतिहासिक तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि इनका "छत्तीस कुलीन अस्तित्व" प्राचीन अवंती राज्य से भी पूर्व का है, जो हजारों वर्ष पुराना है। इस कारण से, पोवार (पंवार) समाज किसी कुल की नदी तटीय शाखा नहीं है और न ही इसकी कोई उपजाति है।

समाज के अस्तित्व को लेकर एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि सभी रिकॉर्ड्स में इन्हें राजपूत कहा गया है, तो फिर इनका जातीय नाम राजपूत न होकर पोवार या पंवार क्यों है? इसके अलावा, क्यों इनके अपने छत्तीस कुल के अलावा अन्य राजपूतों से वैवाहिक संबंध नहीं होते? इन प्रश्नों के उत्तर को इस पुस्तक में विभिन्न संदर्भों के साथ ढूंढने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास करते हैं कि पोवार समाज ने कैसे अपने सांस्कृतिक और जातीय अस्तित्व को बनाए रखा है, और क्यों यह समाज आज भी अपने प्राचीन कुलों से जुड़े हुए हैं।

यह समाज एक ऐसा सैन्य दस्ता था जो न केवल केंद्रीय प्रांत में, बल्कि इसके पूर्व भी साथ में था, इसीलिए इनका एक सामुदायिक अस्तित्व था। चूंकि ये अपने प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक अस्तित्व को इधर आने के बाद भी बनाए रखना चाहते थे, इसलिये इनका बाहरी लोगों से सांस्कृतिक संबंध बहुत ही सीमित थे। कुछ दस्तावेजों में यह उल्लेख मिलता है कि कुछ सैनिकों ने अपने परिवारों को साथ न लाकर स्थानीय

लोगों से वैवाहिक संबंध बनाए। हालांकि, यह पूरी तरह से निराधार है, क्योंकि सभी दस्तावेज और पोथियाँ इस तथ्य का समर्थन करती हैं कि ये लोग अपने पूरे कुनबे के साथ इधर आए थे। अपनी एक भाषा और सम्पूर्ण संस्कृति को बनाए रखना तभी संभव था जब सैन्य दस्ते के साथ उनका परिवार भी आया हो। छत्तीस कुलों में वे कुल, जो अपने परिवार के साथ नहीं आए, वे वैनगंगा क्षेत्र में नहीं बस पाए। इसीलिए, सभी छत्तीस कुल इस क्षेत्र में नहीं पाए गए।

कोई भी व्यक्ति अपने परिवार और समुदाय से दूर नहीं रह सकता, और कार्य पूरा होने पर वह निश्चित रूप से वापस लौटने की इच्छा रखता है। जो व्यक्ति अपने परिवार और कुनबे को साथ लेकर चलता है, वही किसी नए क्षेत्र में स्थायी रूप से बस सकता है। इसलिए, यह तथ्य कि सैनिकों ने अपने परिवारों को साथ नहीं लाया, पूरी तरह से असत्य और निराधार है।

भाट की पोथी में वर्णित स्थानों में से कुछ स्थानों पर जाकर पोवारों की जानकारी ली गई, तो यह तथ्य सामने आया कि अब उन स्थानों पर इस समुदाय का कोई भी परिवार मौजूद नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि पूरा कुनबा ही इधर आ गया था। सभी ऐतिहासिक दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि नागपुर के राजाओं ने पोवारों को जागीर और जमीन प्रदान कर उन्हें इस क्षेत्र में स्थायी रूप से बसने के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा, यह क्षेत्र औरंगजेब जैसे आक्रांताओं से मुक्त हो चुका था और नागपुर राज्य एक शांतिपूर्ण क्षेत्र बन चुका था। इसीलिए जो भी इस क्षेत्र में आया, वह इधर ही स्थायी रूप से बस गया।

कई गैजेट्स में यह तथ्य उल्लेखित है कि पोवारों ने स्थानीय समुदायों से सामाजिक और सांस्कृतिक दूरी बनाए रखी थी। यही वजह है कि इन्होंने अन्य कालक्रम में केंद्रीय प्रांत में आए राजपूतों से भी वैवाहिक संबंध नहीं रखे। साथ ही, उनके रीति-रिवाजों और भाषा-संस्कृति में अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो यह दर्शाता है कि इन दोनों समुदायों के बीच लंबे समय तक सांस्कृतिक संबंध नहीं रहे।
पोवारों के सभी इतिहास में इनके "छत्तीस कुल" होने का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि इन्होंने अपने प्राचीन अस्तित्व को बनाए रखने के हर संभव प्रयास किए। सन १८९० में लखाराम जी पंवार ने समाज से आव्हान किया था कि "ये छत्तीस कुल में हर कुल एक तीर्थ की तरह है और इसे किसी भी कीमत पर भूलना नहीं चाहिए"।

यही आव्हान राजा भोज की पुत्री के द्वारा किए जाने का उल्लेख नरपति नाल्ह द्वारा रचित "बीसलदेव रासो" पुस्तक में भी मिलता है।

बाबूलाल जी भाट की पांच हजार पृष्ठों की पोथियों में सैकड़ों वर्षों से वंशावली और साथ ही सभी का प्राचीन इतिहास दर्ज है। यह वही इतिहास है, जिसे शायद अधिकांश लेखकों ने देखा भी नहीं है। ब्रिटिश कालीन दस्तावेज़ केवल समाज के बाह्य स्वरूप को ही दर्शाते हैं। इनके कुल और उनके रीति-रिवाज को समझे बिना, पोवार समाज को सही तरीके से समझा ही नहीं जा सकता। इस समाज का अति प्राचीन अस्तित्व और हर कुल का अपना इतिहास, साथ ही सामुदायिक अस्तित्व का होना, बिना इन पोथियों के अध्ययन के समझा नहीं जा सकता।

औरंगजेब के विरुद्ध देवगढ़ रियासत की रक्षा से लेकर नागपुर के भोसले मराठों के उड़ीसा और बंगाल तक विस्तार में मालवा राजपुताना के पोवार राजपूतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जो इतिहास में कहीं गुम हो गया था, क्योंकि ये शासक वर्ग रवी थे। हालांकि, ब्रिटिश कालीन जिला गज़ेट्स और जनगणना दस्तावेजों में पोवारों द्वारा मध्यभारत में स्थानीय राजाओं की सैन्य और राजकीय व्यवस्था संभाले जाने का इतिहास उल्लेखित है, लेकिन पाठ्यपुस्तकों में इसे सामने नहीं लाया गया।

संख्या बल के हिसाब से पूर्व का वैनगंगा ज़िला, यानी आज के भंडारा, सिवनी, बालाघाट और गोंदिया जिलों में पोवार समाज सबसे बड़ा जनसंख्या वाला समुदाय था, और इसके द्वारा इस क्षेत्र को धन-धान्य से परिपूर्ण करने का इतिहास मिलता है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस क्षेत्र में पोवारों का ही वास्तविक शासन था और पहले देवगढ़ तथा बाद में नागपुर के राजाओं के साथ उनके सहयोग और समझौते का भी प्रमाण है।

राजपुतों ने इस क्षेत्र के राजाओं को बसने और आगे बढ़ने में महत्वपूर्ण मदद की थी, लेकिन उनके योगदान का इतिहास बहुत ही कम लिखा गया। इतिहास में अधिकतर ध्यान शासकों पर ही केंद्रित रहा और राजपुतों के योगदान को नज़रअंदाज किया गया, जिसके कारण उनके महत्वपूर्ण इतिहास का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका। दरअसल, छत्तीस कुल पंवार समाज ही वास्तव में वह छत्तीस कुलीन राजपूत सैन्य दस्ता था, जिन्होंने धर्म और सनातन संस्कृति के लिए अनेक युद्ध लड़े।

राजाओं ने छत्तीस कुलीन क्षत्रियों से युद्ध में सहयोग का आह्वान किया था। प्राचीन काल में जब बड़े युद्ध होते थे, तो राजाओं को अपने सैन्य बल को मजबूत करने

के लिए छत्तीस कुलों के क्षत्रिय योद्धाओं की मदद की आवश्यकता होती थी। इन योद्धाओं की सैन्य क्षमता, वीरता और युद्ध कौशल को अत्यधिक मान्यता प्राप्त थी, और इसलिए राजाओं ने उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया था।

यह सहयोग केवल सैन्य दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इन युद्धों में भाग लेकर ये योद्धा अपने प्राचीन धर्म, संस्कृति और रीति-रिवाजों की रक्षा कर रहे थे। इस प्रकार, यह न केवल युद्ध की जीत के लिए, बल्कि समाज की संस्कृति और अस्तित्व की रक्षा के लिए एक साझा प्रयास था। राजाओं के आह्वान पर छत्तीस कुल के क्षत्रियों ने अपनी सैन्य शक्ति का योगदान देकर न केवल युद्धों में विजय प्राप्त की, बल्कि मध्यभारत के इतिहास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह योगदान समय के साथ स्मृति में अंकित हो गया और इन योद्धाओं की वीरता तथा साहस को ऐतिहासिक रूप से मान्यता मिली।

छत्तीस कुलीन पंवार (पोवार) समाज उन प्राचीन छत्तीस कुलीन क्षत्रियों के वंशज हैं, जिनका इतिहास सदियों से गौरवशाली और प्रेरणादायक रहा है। उनके संघर्ष, बलिदान और शौर्य ने न केवल अपने समय को प्रभावित किया, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मजबूत नींव भी रखी। इस समाज का इतिहास खोजना और उसे लिखना वास्तव में एक गर्व का विषय है, क्योंकि यह हमें हमारे अतीत की सच्चाइयों और कर्तव्यों से जोड़ता है। आज हम जब अपने गौरवमयी इतिहास को समझते हैं, तो यह हमें यह प्रेरणा देता है कि अपने पुराने कर्तव्यों और संस्कृतियों को याद करते हुए हम अपने वर्तमान को सुधार सकते हैं। यह समाज अपने प्राचीन मूल्यों, संस्कृति और संघर्ष की मिसाल को फिर से जीवन में लाकर न केवल अपनी पहचान बनाए रख सकता है, बल्कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को भी मजबूत कर सकता है।

हमारे पूर्वजों ने जो महान कार्य किए, उन कार्यों से प्रेरित होकर हम अपने समय में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भागीदार बन सकते हैं। आज, जब हम देश के समग्र विकास की ओर बढ़ रहे हैं, तो यह हमारा दायित्व है कि हम अपने इतिहास से सीखी हुई महत्वपूर्ण बातों को अपने जीवन में लागू करें, ताकि हम न केवल अपने समाज की स्थिति को बेहतर बना सकें, बल्कि पूरे राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सकें।

मुझे पूरा विश्वास है कि जब हम अपने पूर्वजों के संघर्ष और गौरव को समझते हुए, वर्तमान में उसका पालन करते हैं, तो हम न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखेंगे, बल्कि अपने देश को एक नए दृष्टिकोण से सशक्त और एकजुट करेंगे।

ब्रिटिश कालीन, मराठा कालीन, और समाजजन के द्वारा लिखे गए इतिहास के ग्रंथों, भारत की जनगणना के दस्तावेजों, विदेशी लेखकों द्वारा लिखे गए ग्रंथों, समाज के प्राचीन भाट की मूल पोथी और अन्य अनेक संदर्भों के साथ इस किताब को लिखा गया है। इतिहास लेखन एक जटिल और निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न दृष्टिकोण और विचार हो सकते हैं। इसलिए, इतिहास लेखन में हमेशा संशोधन की संभावना बनी रहती है, और यह कार्य एक निरंतर प्रगति का हिस्सा होता है।

भविष्य में, आगामी अंकों में और भी शोध, वास्तविक सुझाव और संसाधनों को शामिल किया जाएगा। इस किताब का उद्देश्य केवल एक प्रारंभिक कदम है, और पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने बहुमूल्य सुझावों से इस कार्य को और अधिक समृद्ध करें। इतिहास अनुसंधान एक ऐसा कार्य है, जिसमें नित नए शोध, नई व्याख्याएं और सिद्धांत सामने आते रहते हैं। यह सिर्फ एक शुरुआत है, और इस दिशा में कई शोधकर्ता निरंतर कार्य कर रहे हैं। इस संदर्भ में, कुछ तथ्यों पर नए निष्कर्ष हो सकते हैं और वे इतिहास के लिखने के दृष्टिकोण को भी प्रभावित कर सकते हैं।

इस किताब के लेखन में मुझे जिन-जिन व्यक्तियों और समुदायों का सहयोग और प्रेरणा मिली है, उनके प्रति मैं अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। यह कार्य केवल मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है, बल्कि समाज के समग्र सहयोग और समर्पण का परिणाम है, जिसके बिना यह संभव नहीं हो पाता। संपूर्ण पंवार समाज का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनका निरंतर मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और प्रेरणा मुझे इस पुस्तक के लेखन में मिला। पंवार समाज का यह सहयोग न केवल मेरे लिए, बल्कि समाज के इतिहास, संस्कृति और भाषा के संरक्षण में भी एक महत्वपूर्ण योगदान है। मेरे पिता श्री फागुलाल जी बिसेन, माता श्रीमती कृष्णा बिसेन, पत्नी श्रीमती बिंदु बिसेन, और मेरे प्रिय पुत्र मानस बिसेन तथा तुषिर बिसेन का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। उनके सहयोग और निरंतर प्रोत्साहन के बिना यह लेखन संभव नहीं था। उनका समर्पण, त्याग और प्रेम ही वह शक्ति है जिसने मुझे इस लेखन कार्य में मार्गदर्शन दिया और मुझे लगातार प्रेरित किया।

मेरे मित्रों, रिश्तेदारों और विशेष रूप से समाज के सम्माननीय जनों का मैं दिल से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध ग्रंथ के निर्माण में न केवल प्रोत्साहित किया, बल्कि डेटा संग्रहण और विभिन्न संदर्भों के संकलन में सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस अवसर पर मैं विशेष रूप से श्री महेन्द्र जी पटले, श्री नरेश जी गौतम, श्री ऋषिकेश

जी गौतम का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य के लिए अनमोल समय दिया और मार्गदर्शन प्रदान किया। अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासंघ के अध्यक्ष डॉ. विशाल बिसेन और उनके समस्त कार्यकारिणी का भी मैं विशेष रूप से धन्यवाद करता हूँ, जिनकी निष्ठा, समर्पण और कार्यशीलता ने समाज के उद्देश्यों को प्रगति की दिशा दी। उनके साथ काम करना मेरे लिए एक अद्भुत अनुभव था और यह सहयोग मेरे लिए प्रेरणादायक साबित हुआ।

साथ ही, समाज पर लिखने वाले सभी विचारकों और लेखकों का मैं कृतज्ञ हूँ, जिनके लेखन से मुझे प्रेरणा मिली और मैंने उनका अनुसरण किया। वे समाज के इतिहास और संस्कृति को संरक्षित करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहे हैं। पोवारी भाषा के सभी साहित्यकारों का भी मैं आभारी हूँ, जिनके शब्दों ने हमारी संस्कृति, परंपराओं और धरोहरों को जीवित रखा।

आखिरकार, मैं अपने पूर्वजों की पवित्र आत्माओं को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ। उनके आशीर्वाद और मार्गदर्शन से ही मुझे इस प्रयास में सफलता मिली। उनके आदर्शों और संस्कारों का ही परिणाम है कि आज मैं इस कार्य को संपन्न करने में सक्षम हुआ। यह पुस्तक उन पूर्वजों की महानता का प्रतीक है, जिन्होंने अपनी संस्कृति और परंपराओं को आने वाली पीढ़ियों के लिए संरक्षित किया।

यह कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं है, बल्कि एक शुरुआती कदम है। इतिहास लेखन की सीमाओं को देखते हुए भविष्य में और अधिक शोध की आवश्यकता रहेगी, जो नए दृष्टिकोण और तथ्यों को सामने लाएगा। मैं पूरी तरह से आश्वस्त हूं कि इस कार्य को आगे बढ़ाने से हमारे समाज और देश के इतिहास को और अधिक सटीकता और गहराई से समझा जा सकेगा, और यही शोध भविष्य में हमें अपने गौरवमयी अतीत से जुड़ने और उसे संरक्षित करने में मदद करेगा।

आपका,

ऋषि बिसेन (IRS),

मूलनिवास : ग्राम-खामघाट,

तहसील: लालबर्रा, जिला बालाघाट

जन्म स्थान : खोलवा, तहसील : बैहर, जिला बालाघाट

स्थान : नागपुर/२४-५-२०२५

अनुक्रमणिका

अध्याय १

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज का परिचय

अध्याय १

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज का परिचय

1.1 पंवार(पोवार) समाज का परिचय और उत्पत्ति

मध्य भारत में पंवार (छत्तीस कुल पोवार) समाज मुख्य रूप से बालाघाट, गोंदिया, भंडारा, सिवनी और नागपुर जिलों में निवासरत है। वर्तमान में इस समाज की जनसंख्या लगभग पंद्रह लाख होने का अनुमान है। पंवार (पोवार) जाति या समाज पुरातन छत्तीस क्षत्रिय कुलों का एक संघ मानी जाती है। प्राचीन काल में ये कुल अलग-अलग पौर, यानी जनपद के प्रमुख हुआ करते थे, इसीलिए इन्हें पौर राजा या पोवार तथा कालांतर में पंवार कहा जाने लगा। हालाँकि, पौर को एक सभा भी माना जाता था। जैसे पौर से पुर या परगना शब्द किसी क्षेत्र विशेष की व्याख्या करते हैं, वैसे ही ऋग्वेदिक पौर क्षत्रिय और प्रवर का विकास इनसे जुड़े श्रेष्ठजन या प्रमुख को दर्शाता है। संभवतः इनसे जुड़े ऋषियों के साथ इन प्रमुखों के गोत्र और कुल का विकास हुआ होगा। इस विषय पर इतिहासकारों में व्यापक मतभेद हैं, लेकिन इतना तो निश्चित है कि कुलों की उत्पत्ति क्षेत्र, उनके शासकों और उनके गुरुओं से अवश्य जुड़ी हुई है। प्राचीन ग्रंथों में इन्हें ही छत्तीस कुलीन पुरातन क्षत्रिय या राजपुत्र माना गया है।

छत्तीस कुलीन पुरातन क्षत्रियों का मूल निवास अखंड भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र, आधुनिक ईरान से लेकर मगध तक तथा कश्मीर से लेकर नर्मदा क्षेत्र तक एक विशाल भूभाग में फैला हुआ था। इन्हीं छत्तीस कुलीन क्षत्रिय राजपुत्रों के संघ से राजपूत समाज की उत्पत्ति भी मानी जाती है। इस क्षेत्र में अवंती एक शक्तिशाली राज्य बना और इसके राजाओं, जैसे सम्राट विक्रमादित्य, ने आज से लगभग दो हजार से भी अधिक वर्ष पूर्व इस संपूर्ण क्षेत्र पर शासन किया था। इस अवधि में पोवारों में शामिल कुलों का अवंती राज्य की राजधानी उज्जैन के आसपास विभिन्न कारणों से आगमन होता रहा, और कालांतर में इन्हीं क्षत्रियों के संघ के रूप में पंवार या पोवार जाति की उत्पत्ति हुई।

एक समुदाय के रूप में इस समाज का अस्तित्व वैदिक काल से ही रहा है। हो सकता है कि वे उस समय संख्या में छत्तीस न रहे हों, लेकिन समुदाय के रूप में उनका अस्तित्व हमेशा से रहा था। ऋग्वेद में युद्धों का उल्लेख है, जिसमें कई राजाओं ने सामूहिक रूप से युद्ध लड़ा था। निश्चित ही वे सभी राजा आपस में सामाजिक और

सांस्कृतिक रूप से भी जुड़े रहे होंगे। ऋग्वेद के बाद में लिखे गए अन्य ग्रंथों, जैसे रामायण, महाभारत, उपनिषद, पुराण आदि में भी इसी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित थी, लेकिन धीरे-धीरे यह जन्म आधारित होती गई। जैसे इक्ष्वाकु वंश, जिसे रघुवंशीय भी कहा गया, से अनेक क्षत्रिय कुलों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके वंशज भी क्षत्रिय ही कहलाए, भले ही उन्हें राजा बनाया गया हो या नहीं। इसी प्रकार, राजा के वंशजों, गुरुओं और उनके निवास स्थान के नाम शाखायें बनी और वे समय के साथ स्वतंत्र कुल के रूप में विकसित होकर क्षत्रिय संघ का हिस्सा बन गए।

प्राचीन काल में अवंति राज्य एक अत्यंत शक्तिशाली महाजनपद था, जिसकी राजधानी उज्जैन थी। राजा गंधर्वसेन के पुत्र राजा भरथरी और उनके बाद उनके भाई, सम्राट विक्रमादित्य ने अवंति राज्य का शासन संभालकर भारतवर्ष के विशाल भूभाग पर शासन किया तथा सनातन धर्म और संस्कृति का परचम संपूर्ण विश्व में फैला दिया। महाकाल की नगरी उज्जैन, सनातनी संस्कृति का मुख्य केंद्र थी और हजारों वर्षों तक अनेक वंश या कुलों के राजाओं ने यहां से श्रेष्ठ शासन दिया था। इन क्षत्रिय राजाओं को राजपुत्र कहा जाता था, और बाद में इन्हें राजपूत कहा जाने लगा। दसवीं सदी तक क्षत्रियों को "छत्तीस कुल" का संघ माना जाने लगा था। बाद में इन क्षत्रियों की अनेक शाखाएँ हो गई और प्राचीन अवंति राज्य मालवा, राजपूताना आदि क्षेत्रों में विभाजित हो गया। उज्जैन पर बाद में परमार कुल का मुख्य रूप से शासन रहा, जिसमें राजा उपेंद्र, राजा सियाक, राजा मुंज, राजा भोज, राजा उदियादित्य आदि प्रमुख रूप से ऐतिहासिक दस्तावेजों में दर्ज हैं।

राजा भोज के समय उज्जैन की बजाय धार को मालवा की राजधानी बनाया गया था। इसके साथ ही, उज्जैन की भांति धार भी एक सामाजिक-सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ। धार में परमार राजपरिवार तथा उनके नातेदारों की भी बसाहट हुई। मालवा में परमार व उनके संबंधी कुलों के द्वारा ही राजकीय और सैन्य कार्य किए जाते थे, जो कालांतर में एक विशिष्ट जातीय समूह के रूप में विकसित हुए।चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो में भी इस समूह का उल्लेख छत्तीस क्षत्रिय कुलों के रूप में मिलता है, जिनमें परमार कुल का भी वर्णन है। मालवा क्षेत्र में यही छत्तीस क्षत्रिय कुल ‘पोवार’ या ‘पंवार’ जाति के रूप में विकसित हुए। ये सभी कुल प्राचीन राजपुत्रों के संघ का हिस्सा थे, जो आगे चलकर ‘राजपूत’ जाति-संघ के रूप में विकसित हुआ। इस राजपूत

संघ में उन प्राचीन छत्तीस कुलों के साथ-साथ उनसे विभाजित कुलों और अन्य क्षत्रिय कुलों को भी सम्मिलित किया गया।

राजा महलकदेव की मृत्यु के बाद धार नगर पर मुस्लिमों का अधिकार स्थापित हो गया, जिससे मालवा में पोवारों का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। हालांकि, बाद में उन्होंने अन्य क्षेत्रों में जाकर न केवल अपने राज्य स्थापित किए, बल्कि विभिन्न राजाओं को युद्ध क्षेत्र में सहयोग देने के भी प्रमाण मिलते हैं। वे सैनिक अभियानों के दौरान दूर-दराज तक जाया करते थे, किंतु उनका मूल निवास मालवा और राजपुताना क्षेत्र में ही बना रहा।

दीर्घकालिक सह-वास और सांस्कृतिक सहभागिता के परिणामस्वरूप छत्तीस कुलों से मिलकर बने पोवारों की एक विशिष्ट भाषा और संस्कृति का विकास हुआ, जो अन्य समुदायों से भिन्न थी। उन्होंने राजपुताना और बुंदेलखंड के नातेदार राजपूत राजाओं के साथ-साथ मराठाओं के सैन्य अभियानों में भी सक्रिय सहयोग दिया, किंतु प्रत्येक अभियान के पश्चात वे अपने मूल क्षेत्र में लौट आया करते थे। बाद में, विदर्भ के स्थानीय राजाओं को सैन्य और राजकीय सहयोग देने के उद्देश्य से पोवार सर्वप्रथम रामटेक के पास नगरधन क्षेत्र में जाकर बसे, और फिर धीरे-धीरे वैनगंगा की पावन भूमि में स्थायी रूप से निवास करने लगे।

1.2 वर्ण और जाति व्यवस्था का विकास तथा पंवार समाज

भारतवर्ष में लिखित इतिहास की विधिवत शुरुआत वैदिक काल से मानी जाती है, इसलिए वर्ण व्यवस्था का इतिहास भी इसी काल से प्रारंभ माना जाता है। आदर्श रूप में यह व्यवस्था केवल कर्म-आधारित होनी चाहिए थी, किंतु समय के साथ यह धीरे-धीरे जन्म-आधारित होती चली गई। इसी प्रक्रिया के अंतर्गत वर्णों के भीतर अनेक उप-समूहों का गठन हुआ, जिससे यह एक बंद सामाजिक व्यवस्था का रूप लेने लगी और कालांतर में जाति-व्यवस्था के रूप में विकसित हो गई।

भारतीय इतिहास में वर्ण से जाति में रूपांतरण एक दीर्घकालीन प्रक्रिया रही है, जो सामाजिक स्तरीकरण के साथ समय-समय पर परिवर्तित होती रही। भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात विभिन्न जातियों ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए स्वयं को एक और अधिक बंद सामाजिक ढांचे में ढाल लिया। इसी क्रम में समकक्ष क्षत्रिय कुलों से 'राजपूत' जाति का उद्भव हुआ।

पंवार समाज को छत्तीस प्राचीन क्षत्रिय कुलों के एक संघ के रूप में माना जाता है, इसलिए इसकी उत्पत्ति की व्याख्या इन्हीं कुलों के इतिहास के संदर्भ में ही सम्यक रूप से समझी जा सकती है। अधिकांश इतिहासकारों ने क्षत्रिय इतिहास को राजपूत इतिहास के साथ जोड़ा है, किंतु वास्तव में राजपूतों का इतिहास, क्षत्रिय इतिहास का केवल एक अंश मात्र है।

यदि प्राचीन छत्तीस कुलों की सूची का अवलोकन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें से कई कुल कालांतर में राजपूत जाति के कुलों के रूप में स्थापित हो गए, जबकि कुछ कुल विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में, तात्कालिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार, अलग-अलग जातीय रूपों में विकसित हुए। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में छियानबे कुलों का एक जातीय संगठन 'मराठा समाज' के रूप में विकसित हुआ। इसी प्रकार, मालवा क्षेत्र में छत्तीस कुलों के संगठन से 'पंवार' जाति का विकास हुआ, जो वास्तव में सिंधु-सरस्वती क्षेत्र से होते हुए प्राचीन अवंती और वर्तमान मालवा क्षेत्र में आकर बसे थे।

1.2.1 पोवारों का वैदिक कालिन अस्तित्व

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था को एक कर्म-आधारित प्रणाली के रूप में वर्णित किया गया है, जो व्यक्ति के कर्म के अनुसार गतिशील होती थी। प्राचीन ग्रंथों में पोवार समुदाय का उल्लेख प्रायः क्षत्रिय या राजपुत्र के रूप में हुआ है, जो किसी राज्य, जनपद या पौर (नगर) के प्रमुख होते थे। इन्हें ही पौर क्षत्रिय कहा जाता था। इसी पौर शब्द से क्रमशः प्रवर, पोवार, पंवार, पंमार और परमार जैसे शब्दों का विकास हुआ, जो आगे चलकर विभिन्न समुदायों के कुलनाम और जातिनाम के रूप में स्थापित हुए।

ऋग्वेद में भी पौरों का उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक काल में पौर समुदाय का अस्तित्व था-

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥

अर्थ: "हे अश्विनी कुमारो! तुम जलवर्षा करने वाले बादलों को पौरों के निवास-स्थल के समीप भेजो। जिस प्रकार एक शेर दहाड़ते हुए सिंह को परास्त करता है, उसी प्रकार यज्ञ-कर्म में संलग्न पौरों के समीप तुम वर्षा करो।"

श्री महेन पटले के द्वारा लिखित पुस्तक 'पोवार' में पोवार समाज के इतिहास का विस्तृत उल्लेख किया है। इस किताब में पोवार समुदाय को बहुत अधिक प्राचीन समाज माना गया है। इस पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक ५४/५५ में उल्लेखित है की,

"ग्रीक इतिहास के लेखों में ग्रीक भाषा में जो शब्द है वह है 'πωρουάροι' जिसको अंग्रेजी में Porouaroi/porvarai लिखा जाता है! हिंदी में यह पोरोआराय/पोरुआराय/प्रोआराय/पोरवाराय/पोर्वाराय आदि जैसा कुछ उच्चारित होगा! उज्जयनी, मालवा व भारत के उत्तर पश्चिम में अगर इन राजाओ का उल्लेख है तो इस प्रकार के नाम के राजा वहा इतिहास में होना ही चाहिए! यह शब्द दरअसल संस्कृत शब्द प्रवराय, पौराय होना चाहिये! भारत में कुछ लोगोने पोरुआराय को पौरव समझा परन्तु उज्जयनी, मालवा या उत्तर पश्चिम में पौरव की बजाये पोवार, पंवार वंश का शासन था! प्राचीन पौवारा साम्राज्य भी पोवारो के साम्राज्य को दर्शाता है! कुछ लोगो ने पोरुआराय को पुरु समझा ! अगर पुरु वही राजा थे तो पोरु कहा होता! पर वे पोरु की बजाये पोरुआराय कहते है जो की प्रवराय का अपभ्रंश लगता है! भारत में पुरु राजा ने अलेक्झांडर से लड़ाई की ऐसे लिखा गया, परन्तु ग्रीक इतिहास के अनुसार तथ्य कुछ अलग है! अलेक्झांडर का सामना दो पोवार राजाओं से होता है! पहला कमजोर था तो दूसरा राजा बहुत शक्तिशाली था! पश्चिमी इतिहासकारों के अनुसार पोरस किसी व्यक्ति का नाम न होकर एक जाती या समूह का नाम था! भारत के इतिहास में पोवार समुदाय मौजूद है! पश्चिमी इतिहास में ६०० छोटे बड़े पोवार राजाओं का उल्लेख मिलता है! पश्चिमी इतिहास में पुरु या पौरव के बजाये पोवार /पौवार लिखा गया! और यह समुदाय हजारो सालो बाद इतिहासकारों को उज्जयनीमें मिला भी! कुछ इतिहासकारों ने पोवार राजाओं को पौरस कहा जो संस्कृत शब्द पौर से सबंधित है! दो पौर राजा यानि ग्रीक भाषा में पौरस राजा हुए! ऋग्वेद में ऋग्वेदीय ऋषियो को पौर कहा गया मिलता है! हालांकि ज्यादातर पश्चिमी इतिहासकार उन राजाओं को पोवार कहते है!"

इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि पोवारों का अस्तित्व प्राचीन काल से ही रहा है। उनका उल्लेख वेदों, पुराणों और विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों में क्षत्रिय और राजपुत्र के रूप में मिलता है। समय के साथ, सामाजिक, राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण उनके मूल निवास स्थान भी बदलते रहे। अखंड भारतवर्ष के विभिन्न राजवंशों और राज्यों में इनका प्रभाव था, और ये कई प्रमुख

राजधानियों और सैन्य केंद्रों से संबद्ध रहे। मालवा, उज्जयिनी, धार, राजपूताना, विदर्भ और वैनगंगा क्षेत्र तक इनका विस्तार समय के साथ होता गया। इनकी संस्कृति, भाषा और परंपराएँ भी स्थान और काल के अनुसार विकसित होती रहीं, किंतु इन्होंने अपनी मूल क्षत्रिय परंपरा और विशिष्ट पहचान को सदैव बनाए रखा।

1.2.2 पंवार जाति की उत्पत्ति के सिद्धांत

पोवार या पंवार जाति की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं। कई इतिहासकारों ने नामों की समानता के कारण, अग्निवंशीय पंवार/परमार कुल के इतिहास को पंवार/पोवार जाति का इतिहास मानने की भूल की है। इसके परिणामस्वरूप, उनकी उत्पत्ति को आबूगढ़ के अग्निकुंड में गुरु वशिष्ठ द्वारा आयोजित एक यज्ञ से जोड़ दिया गया। यह एक पौराणिक कथा है, जिसे केवल पंवार/परमार कुल की उत्पत्ति तक सीमित माना जाना चाहिए।

सैद्धांतिक रूप से, "कुल" और "जाति" दो भिन्न अवधारणाएँ हैं। जाति एक व्यापक सामाजिक व्यवस्था है, जबकि कुल एक पारिवारिक इकाई होती है। एक जाति कई कुलों से मिलकर बनती है, लेकिन एक कुल, परिवार या वंश से संबंधित होने के कारण, उसमें आपसी विवाह संबंध वर्जित होते हैं। इसलिए, विवाह केवल अपने कुल से भिन्न कुल में ही मान्य होता है। पंवार (पोवार) जाति में, अग्निवंशीय पंवार या परमार कुल की भांति, छत्तीस अलग-अलग कुल हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक कुल की अपनी स्वतंत्र उत्पत्ति और इतिहास रहा है। प्राचीन भाट वंशावलियों (पोथियों) से भी यह प्रमाणित होता है कि इस जाति में शामिल प्रत्येक कुल का मूल स्थान भिन्न-भिन्न था, किंतु वे प्राचीन काल से आपस में नातेदारी के माध्यम से जुड़े हुए थे।

समय के साथ, ये सभी कुल सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से एक संघ के रूप में संगठित हो गए और प्राचीन अवन्ति, मालवा, बुंदेलखंड तथा विदर्भ सहित अनेक क्षेत्रों में एकजुट होकर बसे। इनका एक विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप और एक साझा भाषा होने से भी यह स्पष्ट होता है कि पंवार (पोवार) जाति एक सुदृढ़ सामाजिक इकाई के रूप में विकसित हुई। इसलिए, पंवार (पोवार) जाति की उत्पत्ति को छत्तीस क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति और उनके आपसी नातेदारी संबंधों के विकास के संदर्भ में समझा जा सकता है। इन कुलों के बीच सैन्य और अन्य गतिविधियों में परस्पर सहयोग ने इन्हें एक-दूसरे से जोड़कर रखा। इसी क्षत्रिय सहयोग से छत्तीस कुलीन पंवार संघ की

स्थापना हुई। कुछ इतिहासकार पंवार या परमार कुल के जातीय रूप में विकसित होने को मध्यभारत की ऐतिहासिक घटनाओं से भी जोड़ते हैं। हालांकि, मालवा में परमार राजपूतों के शासनकाल के दौरान भी पंवार जाति के छत्तीस कुलीन होने के कई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इन प्रमाणों का आगे विस्तार से उल्लेख किया गया है।

1.2.3 पोवार(पंवार) समाज के गोत्र

संपूर्ण छत्तीस कुल पंवार समाज की उत्पत्ति को किसी एक कुल या वंश की उत्पत्ति के सिद्धांत से परिभाषित नहीं किया जा सकता। पंवार (पोवार) जाति में सम्मिलित प्रत्येक कुल का अपना अलग इतिहास है। इनके कुलदेवी, गोत्र, प्रवर आदि भिन्न-भिन्न थे, किंतु एक संगठित सामुदायिक संरचना के कारण इनके सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध केवल अपने छत्तीस कुलों तक ही सीमित रहे। संभवतः इसी कारण से समय के साथ पोवारों के अलग-अलग कुल अपने मूल गोत्र, कुलदेवी, कुलदेव और प्रवर को भूल चुके हैं। बुजुर्गों की मान्यता के अनुसार, पोवारों का गोत्र 'कश्यप' माना जाता है। पौराणिक परंपराओं के अनुसार, जो व्यक्ति अपना मूल गोत्र भूल जाते हैं, उन्हें 'कश्यप' गोत्र स्वीकार कर अपने आध्यात्मिक अनुष्ठान करने चाहिए। संभवतः यही कारण रहा कि मध्य भारत में आने के बाद सभी पोवारों ने 'कश्यप' को अपना गोत्र मान लिया।

हाल के वर्षों में कुछ लोग परमार कुल के 'वशिष्ठ' गोत्र को भी पोवारों का गोत्र बताने लगे हैं। हालांकि, कई प्राचीन ग्रंथों में परमार कुल का गोत्र 'कश्यप' भी लिखा गया है। चूंकि छत्तीस कुल पंवार समाज सैकड़ों वर्षों से 'कश्यप' गोत्र को ही मानता आ रहा है, इसलिए इस परंपरा को बनाए रखना अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है।

1.3 छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के प्राचीन भाट और उनकी पोथियाँ

भाट या राव जी, वंशावली और इतिहास लेखन का कार्य परंपरागत रूप से करते आए हैं। इस पुस्तक के लेखन के लिए पोवारों की प्राचीन वंशावली और इतिहास से संबंधित जिन भाटों का सन्दर्भ लिया गया है, उनमें मूल रूप से मालवा के रतलाम निवासी भाट परिवार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, कई अन्य भाट भी समय-समय पर इस कार्य में योगदान देते रहे हैं।

रतलाम के भाट परिवार के स्वर्गीय बाबूलाल जी भाट की पोथियों के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि उन्होंने प्रत्येक कुल के मूल स्थान का उल्लेख करते हुए उनकी वंशावली, नगरधन में बसने के बाद की पीढ़ियों से लिखी है। नगरधन से पहले की वंशावली उनके पूर्वजों द्वारा लिखी गई थी, किंतु विभिन्न कारणों, विशेष रूप से विस्थापन, के चलते वह उपलब्ध नहीं हो पाई होगी। यही कारण है कि स्व. बाबूलाल जी भाट की पोथियों में मुख्य रूप से लगभग १७०० ईस्वी से लेकर १९८० के आसपास तक की लगभग सोलह-सत्रह पीढ़ियों का विवरण ही मिलता है।

चूंकि उनके कोई पुत्र नहीं थे, जो इस परंपरा को आगे बढ़ा सकते, इसलिए उनके पश्चात इन पोथियों का लेखन कार्य बंद हो गया। बाद में, यह सभी पोथियाँ स्व. मुन्नालाल जी चौहान (गोंदिया) के पास सुरक्षित जमा करा दी गईं। हालाँकि, अन्य भाट परिवार भी पोवार समाज की वंशावली और इतिहास लेखन का कार्य कर रहे हैं। इन भाटों द्वारा भी यह प्रमाणित किया गया है कि पंवार (पोवार) समाज वास्तव में प्राचीन काल से ही छत्तीस कुलों का एक संघ ही रहा है।

नगरधन आने से पूर्व की वंशावली की खोजबीन अब भी जारी है, और इसके पूर्ण रूप से मिलने पर समाज के प्रत्येक कुल की उत्पत्ति और इतिहास को अधिक स्पष्टता से समझा जा सकेगा। हालांकि, इतने वर्षों के अंतराल के बाद मूल क्षेत्रों में जाकर इन जानकारियों को पुनः प्राप्त कर पाना एक अत्यंत जटिल और चुनौतीपूर्ण कार्य है।

1.4 पंवार/परमार कुल और पंवार/पोवार जाति

ब्रिटिश जनगणना और अन्य शासकीय रिपोर्टों में पंवार समाज के बारे में केवल सतही जानकारी ही मिलती है, जिससे इस समाज की संपूर्ण संरचना और वास्तविक इतिहास स्पष्ट नहीं हो पाता। अधिकांश ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में पंवार समाज को मालवा के परमार वंश से जोड़ा गया है और यह उल्लेख मिलता है कि मध्यभारत के पोवार, मालवा के परमार राजपूत हैं। कुछ दस्तावेजों में यह भी लिखा गया है कि नागपुर या मध्यभारत क्षेत्र में आने के बाद मालवा के पंवार, जातीय रूप में संगठित हुए।

हालांकि, भाट की पोथियों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मध्यभारत के पंवार, मालवा और राजपूताना से आए थे, लेकिन इनमें कई वंशों के क्षत्रिय कुल

सम्मिलित थे। इसका अर्थ यह हुआ कि पंवार समाज की जातीय या सामुदायिक संरचना केवल मध्यभारत में आने के बाद नहीं बनी, बल्कि यह मालवा में भी एक कुल-संघ के रूप में विद्यमान थी।

भाट की पोथियों में परमार को दो रूपों में लिखा गया है। एक कुल के रूप में, जिसमें पैंतीस शाखाएँ शामिल हैं, और दूसरी, एक जाति के रूप में, जिसमें छत्तीस कुल सम्मिलित हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि नगरधन-नागपुर आए राजपूतों या सैन्य जत्थे में मालवा के परमार कुल के वंशज भी शामिल थे, जो उस जत्थे या समुदाय का नेतृत्व कर रहे थे। यही कारण है कि इस जत्थे में अलग-अलग कुलों के राजपूत होते हुए भी सभी को परमार या पंवार के नाम से उल्लेखित किया गया है। इसके दो संभावित कारण हो सकते हैं, पहला, यह कि इस जत्थे में विभिन्न कुलों के राजपूत शामिल थे, लेकिन चूँकि नेतृत्व परमार कुल के पास था, इसलिए पूरे समूह को परमार या पंवार कहा गया। दूसरी संभावना यह है कि वे पहले से ही एक जातीय स्वरूप में संगठित थे, और इस समुदाय में शामिल सभी कुल प्रारंभ से ही एक अभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई के रूप में स्थापित थे।

यह संभावना अधिक प्रबल है कि पंवार समाज का प्राचीन अस्तित्व मालवा से ही मौजूद था। इसके साथ ही यह भी संभव है कि कुछ अन्य राजपूत कुल, जो युद्ध के लिए उनके साथ आए थे, बाद में इस समाज में शामिल हो गए हों। वहीं, कुछ कुल वैनगंगा क्षेत्र में न आकर वापस लौट गए, जिसके कारण वे इस जातीय संरचना का हिस्सा नहीं बन सके। यही कारण है कि वर्तमान में छत्तीस कुलों में से केवल तीस कुल ही वैनगंगा क्षेत्र में पाए जाते हैं, जबकि शेष कुल या तो मालवा-राजपूताना क्षेत्र में रह गए या अन्यत्र चले गए। इससे यह स्पष्ट होता है कि पंवार समाज का गठन किसी एक समय में नहीं हुआ, बल्कि यह एक निरंतर ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था, जिसमें विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार कुछ कुलों का स्थानांतरण और समायोजन होता रहा। हालांकि, इस समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप अपने मूल अस्तित्व के साथ परिवर्तन को स्वीकार करते हुए भी बना रहा, जिसके प्रमाण विभिन्न ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में देखे जा सकते हैं।

पोथी में भगत कुल को माँ काली के भक्त और जगदेव पंवार के वंशज बताया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये सीधे मालवा के परमार राजाओं के वंशज हैं। इसी प्रकार, पटले कुल को गुजरात के पाटन से आए परमार वंश की एक शाखा बताया

गया है। ये अग्निवंशीय हैं, जबकि छत्तीस कुलों में कई अन्य कुल भी हैं, जिनका अपना अलग वंशीय अस्तित्व है।

ब्रिटिश दस्तावेजों में पंवार समाज को विभिन्न नामों से उल्लेखित किया गया है, जैसे- नागपुर पंवार, नगरधन आए पोवार राजपूत, वैनगंगा क्षेत्र में बसने वाले पोवार, परमार क्षत्रिय और परमार राजपूत। साथ ही, इन दस्तावेजों में उनके कुलों को परमार राजपूत की शाखाएँ बताया गया है। हालांकि, इन दस्तावेजों में इस समाज की संपूर्ण संरचना और विस्तृत ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

यह प्रस्तुति समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक जड़ों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। विभिन्न दस्तावेजों, प्राचीन ग्रंथों और ऐतिहासिक स्रोतों को एकसाथ जोड़कर ही संपूर्ण पंवार (पोवार) समाज की उत्पत्ति और उसके वर्तमान सामाजिक ताने-बाने को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। इतिहास में उपलब्ध जानकारी विभिन्न संदर्भों में बिखरी हुई मिलती है, जिससे समाज के वंशीय, सांस्कृतिक और जातीय विकास को समझने के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो जाता है। इसके अलावा, समाज की वास्तविक ऐतिहासिक यात्रा को और अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिए भविष्य में भी गहन शोध की आवश्यकता होगी। यह ग्रंथ उसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास है, जिसका उद्देश्य प्रमाणों के आधार पर पंवार (पोवार) समाज की उत्पत्ति, स्थानांतरण और उसकी सामाजिक संरचना को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है।

1.4.1 परमार(पंवार) कुल की उत्पत्ति के सिद्धांत और उनकी शाखायें

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) के इतिहास के अवलोकन से एक तथ्य सभी जगह प्राप्त हुआ है कि ये मालवा के पंवार(पोवार) या परमार हैं। हालाँकि, छत्तीस कुल में अग्निवंशी परमार की कुछ शाखाएँ भी सम्मिलित हैं, और अन्य कुल भले ही दूसरे वंश के हों, लेकिन वे परमार कुल के नातेदार अवश्य हैं तथा सदियों से आपस में रक्तसंबंधी रहे हैं। इसलिए परमार कुल की उत्पत्ति को जानना बहुत जरूरी है। बहुत से इतिहासकार मालवा के परमारों को प्राचीन राष्ट्रकूटों का वंशज मानते हैं, जबकि कुछ इन्हें विदेशी भी कहते हैं। मालवा के परमार राजा स्वयं को अवंति नरेश विक्रमादित्य का वंशज कहते थे, जबकि उनके मध्य लगभग एक हजार वर्षों का अंतराल है। इस लंबे अंतराल में अवंति राज्य पर अन्य राजवंशों का भी शासन रहा था।

सामाजिक लेखकों द्वारा आबूगढ़ में अग्निकुंड से उत्पन्न राजा परमार से लेकर राजा उपेंद्र परमार तथा उनके उत्तराधिकारियों तक की वंशावली सूची बनाई गई है। इसमें विक्रमसेन विक्रमादित्य और राजा भरथरी को परमार कुल का बताया गया है। कुछ इतिहासकार इन्हें तुर या तंवर भी बताते हैं। लेकिन इतना तो निश्चित है कि प्राचीन अवंति और बाद के मालवा राज्य पर परमार शासकों का सबसे लंबे समय तक शासन था। कई इतिहासकारों का मत है कि परमार, प्राचीन क्षत्रियों के उस समूह का एक कुल या परिवार है, जिसे पंवार(पोवार) या छत्तीस कुल क्षत्रिय संघ कहा गया है। छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के वर्तमान छत्तीस कुलीन स्वरूप का विकास भी इसी क्षेत्र में हुआ था, इसलिए इनके इतिहास को समझने के लिए परमार कुल की उत्पत्ति को जानना बहुत आवश्यक है।

पृथ्वीराज रासो में परमार कुल की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार, असुरों के संहार के लिए गुरु वशिष्ठ द्वारा यज्ञवेदी से परमार कुल की उत्पत्ति की गई थी, इसी कारण इन्हें अग्निवंशी कहा गया। पुरातन परमार कुल का गोत्र वत्स था और उनके पाँच प्रवर थे। नैणसी ने भी परमार कुल की उत्पत्ति अग्निकुंड से ही बताई थी और गुरु वशिष्ठ द्वारा उत्पन्न किए जाने के कारण राजा परमार और उनके कुल के लोगों का गोत्र वशिष्ठ हुआ था। नैणसी ने अपनी ख्यात में परमार कुल की छत्तीस शाखाओं के नाम दिए हैं, जिनमें से कुछ छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के कुल भी शामिल हैं लेकिन ये नाम परमार परिवार के वंशजों के नाम पर बनी पैंतीस शाखाओं से भिन्न हैं।

उदयपुर प्रशस्ति में लिखी पंक्ति "उवाच परमारा..." में परमारों की उत्पत्ति अग्निकुंड से बताई गई है। राजा सिंधुराज के दरबारी कवि पद्मगुप्त ने भी आबू पर्वत पर अग्निकुंड से परमारों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है। बसंतगढ़, उदयपुर, नागपुर, अथुर्ना, हाथल, डेलवाड़ा, पटनारायण और अचलेश्वर अभिलेखों में परमारों की अग्निकुंड उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है, लेकिन ये सभी दसवीं सदी या उसके बाद के अभिलेख हैं। इसी प्रकार, आईन-ए-अकबरी में भी परमार कुल की अग्निकुंड उत्पत्ति का विवरण मिलता है।

बहुत से इतिहासकारों का मत है कि अग्निकुंड से इंसान की उत्पत्ति की कहानी व्यवहारिक रूप से संभव नहीं हो सकती। रामायण, महाभारत और कई पौराणिक ग्रंथों में भी अग्निकुंड से व्यक्ति की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। व्यवहारिक दृष्टि से देखा

जाए तो किसी यज्ञ के माध्यम से किसी योद्धा को दी गई उपाधि को उसका नया कुलनाम माना जा सकता है। इतिहासकारों ने लिखा है कि गुरु वशिष्ठ, प्रभु श्रीराम के गुरु थे, और उन्हीं के द्वारा आबू पर्वत पर यज्ञ करके चौहान, परमार, सोलंकी और परिहार, इन चार क्षत्रियों की उत्पत्ति किया जाना कालक्रम के अनुरूप उचित प्रतीत नहीं होता। लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि किसी गुरु ने राज्य की रक्षा के लिए यज्ञ और विधि-विधान द्वारा क्षत्रियों को तैयार किया, इसी कारण इन्हें अग्निकुल क्षत्रिय कहा गया। इनमें से एक योद्धा परमार हुए और राजा बने, जिनके वंशज परमार कुल के क्षत्रिय कहलाए। अग्निवंश, चंद्रवंश और सूर्यवंश की तुलना में नवीन वंश माना जाता है, इसलिए इतिहासकार मानते हैं कि अग्निवंशी क्षत्रिय पूर्व में या तो सूर्यवंशी रहे होंगे या चंद्रवंशी।

अधिकांश लेखकों ने राजपूत समाज में सम्मिलित परमार कुल के इतिहास के आधार पर परमारों की शाखाओं की सूचियों को एक ही कुल से निकली हुई शाखाएँ बताया है। लेकिन वर्तमान में इन सभी छत्तीस या पैंतीस शाखाओं के न मिलने का कारण यह बताया गया कि या तो कुछ शाखाएँ विलुप्त हो गईं या फिर दूसरे धर्म अथवा जातियों में समाहित हो गईं। हालांकि, इस विषय पर बहुत अधिक शोध नहीं किया गया। संभवतः इसका कारण यह हो सकता है कि समय और क्षेत्र के अनुसार इन शाखाओं ने या तो अन्य नाम धारण कर लिए हों या किसी अन्य कुल अथवा जाति में समाहित हो गई हों। लेखकों ने पंवार(पोवार) और परमार को एक ही राजपरिवार के वंशज के रूप में लिखा है, लेकिन वे इस तथ्य को स्पष्ट नहीं कर पाए कि पंवार(पोवार) या परमार जाति का विकास कैसे हुआ, इसमें कौन-कौन से कुल शामिल थे, और इनका परमारों की पैंतीस शाखाओं से क्या संबंध रहा होगा। कुछ शिलालेखों में परमार को एक जातीय रूप में भी दर्शाया गया है। इसीलिए परमार या पंवार(पोवार) का एक कुल और एक जातीय स्वरूप में अध्ययन किया जाना महत्वपूर्ण हो जाता है, जो कि इतिहासकारों ने नहीं किया।

परमार कुल की सोडा, सांखला, भायल, उमठ, बारड़, महिपावत आदि शाखाएँ आज भी अस्तित्व में हैं, जो एक कुल या परिवार के वंशज से उत्पन्न हुई हैं। प्रत्येक शाखा का एक मूल पुरुष होता है, जिसे उस शाखा का संस्थापक माना जाता है। इसी कारण, सभी शाखाएँ एक ही कुल की होने के कारण आपस में विवाह नहीं करतीं। वंशजों, क्षेत्र, ठिकाने या जागीरों के नाम के आधार पर परमार कुल की कई शाखाएँ विकसित हुई हैं। उदाहरण के लिए, दाता स्टेट के परमार स्वयं को दाता परमार और

मूली स्टेट के परमार स्वयं को मूली परमार कहते हैं। ये सभी अब राजपूत समाज का हिस्सा हैं, इसीलिए इन्हें केवल एक कुल मानकर ही उनका अध्ययन किया गया। इन शाखाओं का भी कई क्षेत्रों में स्थानांतरण हुआ, और कालांतर में इनमें से कुछ शाखाएँ स्वतंत्र रूप से कुल भी बन गईं, जिससे उनके बीच वैवाहिक संबंधों के नए अध्याय की शुरुआत हुई। इसी कारण, पोवार जाति के कई कुल परमार की शाखाओं के रूप में भी देखे गए हैं। इसका दूसरा पहलू यह है कि कई कुलों ने परमार वंश की ख्याति के कारण अपने मूल कुलनाम को छोड़कर परमार उपाधि धारण कर ली, जो कालांतर में परमार की शाखा बन गई।

पंवार(पोवार) जाति की छत्तीस कुलनामों में से अधिकांश के नाम अलग ही हैं। पाकिस्तान में मुस्लिम धर्म अपना चुके पंवार राजपूत भी अपनी छत्तीस शाखाओं का उल्लेख करते हैं, लेकिन वे एक ही कुल शाखाएँ अधिक प्रतीत होती हैं, जिनके नाम भी नैणसी की ख्यात में दिए गए नामों से भिन्न हैं। इसी प्रकार, वंश भास्कर में परमारों की 35 शाखाओं का उल्लेख किया गया है, लेकिन उसमें भी कुछ नाम अलग हैं। कई ऐसी शाखाएँ भी थीं जो स्वतंत्र थीं, लेकिन परमार वंश से नातेदार या रक्तसंबंधी होने के कारण लेखकों ने उन्हें भी परमार कुल की शाखाओं में सम्मिलित कर लिया था, जबकि उनका एक स्वतंत्र अस्तित्व था। यही कारण है कि अलग-अलग लेखकों द्वारा परमारों की जो शाखाएँ लिखी गई हैं, उनके नामों में अंतर दिखाई देता है। मुँहणोत नैणसी की ख्यात, दशरथ शर्मा की "पंवार दर्पण", "पंवारा री विगत" और डॉ. गांगुली द्वारा दी गई सूची जैसी अनेक सूचियाँ आज उपलब्ध हैं, जिनमें परमारों की शाखाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें कहीं 35 तो कहीं 36 शाखाओं का उल्लेख मिलता है।

डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक "पंवार वंश दर्पण" में उल्लेख मिलता है कि आबू पर्वत पर अनलकुंड से क्षत्रियों की चार जातियाँ उत्पन्न हुई थीं, जिनमें परमार भी शामिल थे। बाद में परमारों की पैंतीस शाखाएँ बनीं, जो उनके कुल या परिवार के राजाओं के नाम पर आधारित थीं। यही कारण है कि ये सभी एक ही कुल या वंश के माने गए और आपस में विवाह नहीं कर सकते। इन शाखाओं का पंवार(पोवार) जाति की छत्तीस कुल परंपरा से भिन्न होना स्पष्ट है। शाखा और कुल में यह अंतर देखा जा सकता है कि शाखाएँ एक ही कुल के वंशजों पर आधारित होती हैं, इसीलिए वे बहिर्विवाही होती हैं। उदाहरण के लिए, सोडा पंवार और सांखला पंवार एक ही कुल

की शाखाएँ होने के कारण आपस में विवाह नहीं कर सकते। दूसरी ओर, पंवार(पोवार) जाति में छत्तीस कुल होते हैं, जो प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न क्षत्रिय वंशों या कुलों से आए हैं, और उनमें आपस में विवाह होता है। जैसे बिसेन कुल के पंवार और परिहार कुल के पंवार आपस में विवाह कर सकते हैं।

1.4.2 ३५/३६ साख परमार(पंवार) और ३६ कुल पोवार(पंवार)

पंवार(परमार) कुल और पंवार(परमार/पोवार) जाति में बड़ा अंतर है। केवल समान नामों के आधार पर इनकी एक ही उत्पत्ति मानना उचित नहीं होगा, क्योंकि कुल और जाति की अवधारणा भिन्न होती है। परमार कुल, पंवार(पोवार) जाति का एक हिस्सा या केवल एक कुल मात्र है, जो राजपूत, मराठा सहित कई जातियों में एक कुल रूप में शामिल है। इसके अतिरिक्त, पंवार(पोवार) जाति के छत्तीस कुलों में कुछ ऐसे कुल भी शामिल हैं, जिन्हें परमार की छत्तीस या पैंतीस शाखाओं में गिना गया है, जबकि कुछ कुल ऐसे भी हैं, जो वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक छत्तीस क्षत्रिय कुलों का हिस्सा रहे हैं। इसी कारण, पोवारों के भाटों ने मध्यभारत में आए जत्थो को अग्निवंशी क्षत्रियों के साथ अन्य वंशों के क्षत्रियों का संघ माना है।

राजपूतों के इतिहास में यदि परमार/पंवार वंश के इतिहास का अवलोकन करें, तो अधिकांश स्थानों पर इनकी पैंतीस शाखाएँ (Branches) बताई गई हैं, जो एक ही कुल या परिवार से संबंधित हैं। इसी कारण, ये आपस में विवाह नहीं कर सकते और बहिर्विवाही होते हैं। लेकिन जातीय रूप में परमार/पंवार/पोवार को छत्तीस कुल (Clan) का बताया गया है, जो आपस में अपने ही कुलों में विवाह करते हैं, इसीलिए वे अंतर्विवाही होते हैं।

पंवार/परमार नाम से कुल और जाति दोनों के कारण इतिहासकारों में भ्रम की स्थिति बनी रही है। एक कुल का इतिहास सम्पूर्ण जाति का इतिहास नहीं हो सकता, इसलिए पंवार या परमार कुल की उत्पत्ति और इतिहास को छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के इतिहास का केवल एक हिस्सा माना जा सकता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पंवार/परमार का एक कुल और एक जाति के रूप में समान नाम होने के कारण, ब्रिटिश दस्तावेजों तथा इतिहासकारों ने 'अग्निवंशीय पंवार/परमार कुल' की उत्पत्ति की व्याख्या को 'छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज' की उत्पत्ति की व्याख्या मानने की भूल की है।

इसी कारण यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या सभी छत्तीस कुल केवल एक ही कुल या वंश के वंशज हो सकते हैं? यदि ऐसा होता, तो सभी एक ही परिवार से संबंधित होने के कारण आपस में वैवाहिक संबंध नहीं कर सकते थे। इसलिए इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए समाज की पोथियों और ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से सम्पूर्ण समाज को समझना आवश्यक है।

इतिहासकार डी.सी. गांगुली ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ द परमार डायनेस्टी' में परमार कुल का विस्तृत अध्ययन किया है। इस किताब के पृष्ठ क्रमांक ४२ के अनुसार, हिमाचल में बाघल रियासत के राजा, जो बघेला कहलाते हैं, वे राजस्थान के पंवार राजाओं के वंशज हैं। इस रियासत के राजपरिवार के पूर्वज राजा भोज और राजा विक्रमादित्य से संबंधित बताए गए हैं। बघेल कुल, छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज का एक कुल है, जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पंवार(पोवार) जाति के कुल प्राचीन काल से ही छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज में सम्मिलित रहे हैं। इसके अलावा, इस पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक २४ में लिखा है कि परमार कुल ३५ शाखाओं में विभक्त थे। इनके प्रारंभिक इतिहास की अधिक जानकारी नहीं मिलती, और चूंकि ये शाखाएँ परमार परिवारों से संबंधित थीं, इसलिए वे एक ही कुल की मानी जाती थीं और उनमें आपस में वैवाहिक संबंध संभव नहीं रहा होगा। हालाँकि, कुछ परमार शाखाएँ कालांतर में क्षेत्रीय विस्थापन के कारण कुलों के रूप में स्थापित हो गईं और पोवार संघ का हिस्सा बनीं। इनका विस्तृत विवरण पुस्तक के अध्याय चार में दिया गया है।

इतिहासकार श्री गांगुली ने परमारों की अग्निकुंड से उत्पत्ति के सिद्धांत को काल्पनिक माना है। उनका तर्क है कि चव्हाण, चालुक्य और प्रतिहार को भी अग्निकुल से उत्पन्न माना गया है, लेकिन इनकी कथाएँ और कालक्रम भिन्न हैं, जिससे यह सिद्धांत संदेहास्पद हो जाता है। डा. लास्सेन (Ind -Alterthumsk, III, पृष्ठ ८२२) का मत है कि परमार, टालेमी द्वारा दूसरी सदी में उल्लेखित 'Porvarai' ही है। श्री गांगुली का मानना है कि यह नाम परमार से समानता रखता है, और इसका संबंध आज के पुवार या पोवार से हो सकता है। पोवारों का उल्लेख "पोवरगढ़" (यानि पोवार का किला) नामक स्थान से भी किया जाता है, जो कभी उत्तरी गुजरात में एक जिले की राजधानी थी।

हालाँकि, श्री बर्गेस ने डा. लास्सेन की इस मान्यता को अस्वीकार किया और तर्क दिया कि टालेमी के 'Porvarai' का अर्थ केवल "लोगों का समूह" है, जबकि परमार एक क्षत्रिय परिवार को दर्शाता है। यदि हम परमार कालीन संदर्भों का विश्लेषण करें तो श्री बर्गेस की मान्यता अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है, क्योंकि परमार एक परिवार, वंश या कुल को दर्शाता है, जबकि पोवार एक समूह या समुदाय को। आज के सन्दर्भ में भी देखे तो पोवार, ३६ कुलों के साथ एक जातीय समूह है जबकि परमार एक कुल या वंश।

श्री गांगुली ने तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि परमारों की अग्निकुल उत्पत्ति का सिद्धांत विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होता है, लेकिन यह एक परमार परिवार को दर्शाता है, जो कि मालवा के शासक रहे। उनके अनुसार, "परमार" कोई जाति, प्रजाति या उपभाग नहीं, बल्कि एक शासक परिवार के लिए प्रयुक्त नाम है।

कुछ इतिहासकारों ने परमारों को विदेशी मानते हुए हूणों के समान बाहर से आया हुआ समुदाय बताया है, जबकि अन्य इतिहासकारों ने हूणों को ही परमारों से संबंधित माना है। आज भी छत्तीस कुल पंवार समाज में हनवत और हरिनखेड़े नामक दो कुल पाए जाते हैं, जिन्हें भाटों के अनुसार प्राचीन हूण परमार कहा जाता है। हालाँकि, कई इतिहासकार परमारों या पोवारों को विदेशी मानने से इनकार करते हैं और उन्हें ब्रह्मक्षत्रिय (यानी वे ब्राह्मण जो कर्म से क्षत्रिय बने) मानते हैं। प्रतिपाल भाटिया ने अपनी पुस्तक "The Parmaras (८००-१३०० A.D.)" में निष्कर्ष निकाला कि "परमार" नाम केवल एक परिवार को स्पष्ट करता है, न कि एक संपूर्ण जाति को। इतिहासकारों की इन भिन्न मान्यताओं के आधार पर हम स्पष्ट रूप से परमार कुल और पोवार जाति के अंतर को समझ सकते हैं।

पोवारों के इतिहास को सही रूप में समझने के लिए समाज में सम्मिलित सभी छत्तीस कुलों के इतिहास और उनकी उत्पत्ति का अध्ययन आवश्यक है। यही कारण है कि प्राचीन भाटों की पोथियों का अवलोकन अनिवार्य हो जाता है। अब यह प्रश्न उठता है कि पोवार (पंवार) समाज को मुख्य रूप से मालवा या धारानगरी के पोवारों से क्यों जोड़ा गया, जबकि इसके अंतर्गत समाज के सभी छत्तीस कुलों का स्वतंत्र अस्तित्व और इतिहास भी है।

श्री गांगुली ने अपनी पुस्तक में इसका उत्तर दिया है कि "पोवार (पंवार) एक समुदाय या कुलों का समूह है, जबकि "परमार" उनमें से एक परिवार या कुल की उपाधि।

लेकिन इतिहासकारों ने पंवार(परमार) कुल और पंवार(पोवार) जाति के अंतर को स्पष्ट रूप से समझे बिना ही दोनों के इतिहास और उत्पत्ति की व्याख्या की। यही कारण है कि छत्तीस कुल पंवार समाज की उत्पत्ति की सही ऐतिहासिक व्याख्या नहीं हो पाई। "परमार" या "पंवार" को एक कुल या परिवार के रूप में देखा जाता है, जबकि समाज या जाति के रूप में छत्तीस क्षत्रियों का संघ होता है, जिसमें परमार कुल भी सम्मिलित है, जैसे भगत परमार।

1.4.3 मध्यभारत में छत्तीस कुल पंवार और अन्य राजपूत

प्राचीन पोथियों में यह उल्लेख मिलता है कि परमार वंश, नगरधन तक फैल गया था। हालाँकि, मालवा के परमार शासकों ने मध्यभारत (विदर्भ) पर, राजधानी नगरधन से दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक लगभग ३५० वर्षों तक शासन किया, लेकिन बाद में उनके वंशजों का अधिक इतिहास नहीं मिलता। मध्यभारत में पंवार(पोवार) जाति के अलावा कई परमार(पंवार) राजपूत और अन्य राजपूत परिवार भी निवास करते हैं। संभवतः वे नगरधन के प्राचीन परमार राजाओं के वंशज हो सकते हैं, या पोवारों के आने के पहले अथवा बाद में आये हों। लेकिन उनका छत्तीस कुल पंवारों से कोई सामाजिक या सांस्कृतिक संबंध नहीं पाया जाता।

ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार, छत्तीस कुल पोवार समाज का सैन्य दल के रूप में आगमन लगभग १७०० ईस्वी के आसपास हुआ था, और वे केवल अपने साथ आए लोगों से ही सामाजिक संबंध रखते थे। इस आधार पर, नगरधन के परमार शासकों और १७०० ईस्वी के बाद आए छत्तीस कुल पोवार समाज के बीच लगभग ४०० वर्षों का अंतर है। यही कारण है कि छत्तीस कुल पोवार राजपूतों और इस क्षेत्र में पहले से निवास करने वाले अन्य राजपूतों के मध्य कोई सामाजिक संबंध स्थापित नहीं हुआ। कुछ पोवार कुल, जैसे रणदिवे और रावत राजपूत, नागपुर क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गए, लेकिन वे बाकी पोवार समाज के साथ आगे वैनगंगा क्षेत्र में स्थानांतरित नहीं हुए। इसी कारण से, वर्तमान में उनसे छत्तीस कुल पोवार समाज का कोई सामाजिक संबंध नहीं दिखाई देता।

1.4.4 पंवार या परमार खाप

हरियाणा और आसपास के कई ठिकानों में पंवार(परमार) खाप विद्यमान हैं। पंवार या परमार खाप मूलतः एक कुल या परिवार को दर्शाती हैं, और परमारों की अलग-अलग खापें उनकी विभिन्न शाखाओं का प्रतीक हैं। ये पंवार(परमार) खाप बहिर्विवाही होती हैं, अर्थात वे अपने ही कुल में विवाह नहीं करते, बल्कि दूसरे कुल के राजपूतों से विवाह संबंध स्थापित करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पंवार(परमार) खाप, परमार वंश से उत्पन्न एक ही कुल या परिवार की शाखाएँ हैं, जबकि छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की संरचना इससे भिन्न है।

1.5 पुरातन क्षत्रियों के छत्तीस कुल और पंवार क्षत्रिय के छत्तीस कुल

पृथ्वीराज रासो चंदरबरदाई द्वारा रचित प्रथम ग्रंथ है, जिसमें छत्तीस महान क्षत्रिय कुलों का उल्लेख मिलता है। ये कुल आज भी अस्तित्व में हैं और आपस में विवाह करते हैं। वर्तमान में ये कुल मुख्य रूप से राजपूत समाज के कुल माने जाते हैं। हालाँकि, "राजपुत्र" मूल शब्द था, जो बारहवीं-तेरहवीं सदी के आसपास "राजपूत" जाति के रूप में विकसित हुआ। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजपूत, प्राचीन क्षत्रियों के कुलों का एक संघ हैं, जिसमें परमार भी एक कुल है।

इसी प्रकार, परमार या पंवार कुल केवल राजपूतों तक सीमित नहीं है। यह मराठा समाज, सिंधी, जाट, गुर्जर आदि जातियों में भी कुल के रूप में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, कई अन्य समाजों में भी परमार, पंवार, पवार, पुवार जैसे सरनेम या कुल मिलते हैं।

समाजशास्त्री श्री एम. एन. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण (Sanskritization) की एक अवधारणा प्रस्तुत की थी। इसके अनुसार, निचले सामाजिक स्तर की जातियों ने अपनी स्थिति को ऊँचा दिखाने के लिए ऊँची जातियों के कुलनामों और रीति-रिवाजों को अपनाना शुरू किया। राजपूतों के कुलनामों को गैर-राजपूत कुलों ने भी इस अवधारणा के तहत अपनाया, और समय के साथ वे राजपूत जाति से होने का दावा करने लगे।

भाट की पोथियों में छत्तीस कुल और उनकी शाखाओं सहित ९९ क्षत्रियों की सूची भी दी गई है, जिसमें विदर्भ आए पंवारों के छत्तीस कुल भी सम्मिलित हैं। भाट ने लिखा है कि नगरधन में आए ये क्षत्रिय मूलतः मालवा के अग्निवंशीय परमार हैं और

उनके ३६ कुलों के इस संघ में सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, ऋषिवंशी क्षत्रिय भी शामिल हैं। जैसे चौहान, परिहार अग्निवंशी क्षत्रिय हैं, बिसेन और गौतम ऋषिवंशी क्षत्रिय हैं, उसी प्रकार पुण्ड (पुंडीर) और कटरे (कटैरिया) चंद्रवंशी क्षत्रिय हैं।

उनके द्वारा दिए गए कुलनाम चंदबरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में दिए गए कुलनामों से समानता रखते हैं। पृथ्वीराज रासो में राजपूतों या क्षत्रियों के ३६ कुल बताए गए हैं, और बाबूलाल जी की पोथी में पंवार समाज के भी छत्तीस कुल बताए गए हैं, जिनके नामों में समानता है और जिनके कई मूल स्थान भी समान हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पंवार जाति समाज के ३६ कुल उन्ही कुलों से साम्यता रखते हैं जो पृथ्वीराज रासो में चंदरबरदाई ने क्षत्रियों के ३६ कुल बताए हैं। हालाँकि, कई नामों में विविधता है और अलग-अलग लेखकों द्वारा दी गई छत्तीस कुलों की सूचियों में कई नाम भिन्न मिलते हैं। "द साइक्लोपीडिया ऑफ इंडिया एंड ऑफ ईस्टर्न एंड साउथर्न एशिया: वॉल्यूम 2" में राजपूतों की शाखाओं का वर्णन किया गया है। सूर्यवंशीय, चंद्रवंशीय और अग्निवंशीय से ३६ क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति हुई। इसमें परमार को एक अग्निवंशीय कुल बताया गया है, जिसकी पैंतीस शाखाएँ हैं।

बुंदेलखंड में राजपूतों के दो समूह माने गए हैं, पहला तीन कुरी और दूसरा छत्तीस कुरी राजपूत। छत्तीस कुरी राजपूतों को पश्चिम राजपुताना से आया हुआ माना गया है। इसी प्रकार, छत्तीस कुल पंवार(पोवार) राजपूत भी पश्चिमी राजपुताना, अर्थात् प्राचीन अवंति राज्य में ही संगठित हुए थे। जेम्स टॉड ने इन्हीं को मालवा के छत्तीस कुल परमार या पोवार कहा था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिंतामणि विनायक वैद्य ने पृथ्वीराज रासो में वर्णित पद्यों का विश्लेषण अपनी पुस्तक 'मिडाइवल हिंदू इंडिया' में करते हुए लिखा कि एक ही शाखा वाले का उसी शाखा में विवाह नहीं हो सकता। लेकिन बाद में क्षेत्रवार विस्थापन के कारण मुख्य कुलों से कई और शाखाएँ बनती गईं, तथा उनमें विवाह भी होने लगे। आज के समाजों के संदर्भ में प्राचीन छत्तीस कुलों का अवलोकन करें तो इनमें कई कुल मूल नामों के साथ नहीं मिलते। कुछ कुल जातियों में परिवर्तित हो चुके हैं, लेकिन अधिकांश कुल राजपूत समाज में समाहित हैं। चूँकि राजपूतों के अलावा भी कई जातियों में छत्तीस कुल क्षत्रियों के कुलनाम मौजूद हैं, सम्भवतः जाति बनने के दौर में ये पुरातन क्षत्रिय कुल या तो अन्य जातियों में शामिल हो गए होंगे, या फिर कुछ जातियों ने इन पुरातन क्षत्रिय नामों को ग्रहण कर लिया होगा।

क्षत्रियों की उत्पत्ति सूर्यवंश और चंद्रवंश से मानी जाती रही है, जिसका उल्लेख महाभारत, रामायण से लेकर प्राचीन पौराणिक ग्रंथों में मिलता है। जबकि अग्निकुंड से क्षत्रियों की उत्पत्ति का सिद्धांत दसवीं सदी के आसपास ही मिलता है। इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि चारों अग्निवंशी कुल मूल रूप से प्राचीन सूर्यवंशी या चंद्रवंशी रहे होंगे, जिनके समय-समय पर क्षेत्रवार समूह बनते रहे।

चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासो में जिन छत्तीस कुलों का वर्णन किया है, वे इन्हीं प्राचीन वंशों से उत्पन्न थे और उस समय उक्त क्षेत्र में मौजूद थे। यही कारण है कि कर्नल टॉड सहित अनेक लेखकों ने क्षत्रियों के छत्तीस कुलों की अलग-अलग सूची दी है। स्थानांतरण और नामों में परिवर्तन के कारण उनके नामों में विभिन्नता पाई जाती है।

आदर्श वर्ण व्यवस्था कर्म के अनुरूप गतिशील थी। कई राजा जन्म से क्षत्रिय न होकर राज्यारोहण के उपरांत क्षत्रिय धर्म का पालन कर क्षत्रिय बन गए। उनके वंशज नए क्षत्रिय कुल के रूप में क्षत्रिय सूची में शामिल हो गए। यही एक प्रमुख कारण रहा कि क्षत्रियों के छत्तीस कुलों में नए नाम जुड़ते गए और समय के साथ यह संख्या बढ़ती रही।

कर्नल जेम्स टॉड, श्री गौरीशंकर ओझा, श्री जगदीशसिंह परिहार, रोमिला थापर, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजवी अमरसिंह, शैलेन्द्र प्रतापसिंह, प्रो. लाल अमरेन्द्र, रावदंगल सिंह, ठा. ईश्वरसिंह मडाढ़, ठा. देवीसिंह मंडावा आदि विचारकों ने यह स्वीकार किया है कि क्षत्रियों के शाही कुल ३६ ही हैं। हालांकि, कुछ विद्वानों ने इनकी सूची में कुलों की संख्या बढ़ा दी है, जबकि कुछ ने इसे कम कर दिया है। साथ ही, इन कुलों के नाम भी भिन्न-भिन्न रूप में दर्ज किए गए हैं।

यदि छत्तीस कुलों की विभिन्न सूचियों का अवलोकन करें, तो इनमें क्षेत्रवार भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। समय और क्षेत्र के अनुरूप कुछ कुल जुड़ते रहे और कुछ सूची से अलग हो गए। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुरातन छत्तीस कुलों को आदर्श मानते हुए क्षत्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों में जाकर अपनी छत्तीस कुल पहचान और संख्या को कायम रखने का प्रयास किया।

यही परंपरा के तहत छत्तीस कुलों में शामिल परमार कुल में भी छत्तीस का विशेष महत्व दिखाई देता है, और इसी कारण उनमें भी छत्तीस कुलों का उल्लेख समाहित हो गया। भले ही व्यवहार में किसी क्षेत्र विशेष में कुलों की संख्या छत्तीस से कम या अधिक हो, लेकिन पंवार/परमारों के कुलों की संख्या छत्तीस और उनकी

शाखाओं की संख्या पैंतीस होने के बावजूद वो भी छत्तीस के पवित्र नंबर से प्रभावित होकर शाखाओं को भी पैंतीस के स्थान पर छत्तीस लिखा। इसलिए यह अवश्य कहा जा सकता है की क्षत्रियों के छत्तीस कुल और पोवार(पंवार) समाज के छत्तीस कुलों की उत्पत्ति का स्रोत एक ही है। हालाँकि छत्तीस कुल क्षत्रिय में शामिल परमार कुल की पैंतीस साख में बहुत सी साखायें एक कुनबे या कुल या परिवार से है लेकिन उन्होंने छत्तीस की संख्या को क्षेत्रवार दिखाने के लिए उन कुलों या शाखाओ को भी शामिल कर लिया जो परमार कुल या परिवार से नहीं थी। जिन्हे लेखकों ने परमार कुल में न मिलने वाली या विलुप्त हो गई शाख कहकर उनपर आगे शोध नहीं किया। जबकि ये शाखाएं या कुल अन्य समुदायों में सम्मिलित भी होने के प्रमाण मिल जाते हैं।

शायद यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई कुलों की सूची में नामों में भिन्नता पाई जाती है। इसका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि कुछ कुल अपने या अपने पूर्वजों के नाम अथवा स्थान के आधार पर पुराने कुलनाम की जगह नया कुलनाम अपनाने लगे। समय के साथ ये नई शाखाएँ या कुल बन गए। इतिहास में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनका उल्लेख आगे के अध्यायों में भी किया गया है।

1.5.1 मालवा के छत्तीस कुल क्षत्रिय और जाति पंवार

छत्तीस कुलों की सूची में सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, अग्निवंशी सहित अन्य वंशों के क्षत्रिय भी शामिल किए गए हैं। यही तथ्य बाबूलाल भाट ने अपनी पोथी में भी लिखा है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के सभी कुल, केवल अग्निवंशी परमार(पंवार) कुल या वंश से नहीं निकले हैं। बल्कि ये अलग-अलग वंशों के कुल हैं, जिनके संघ को ही ब्रिटिश दस्तावेजों में मालवा या धारानगरी के पोवार(परमार) राजपूत के रूप में उल्लेखित किया गया है।

प्राचीन ग्रंथों के अवलोकन से भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि युद्धों में छत्तीस क्षत्रियों को संगठित होकर भाग लेने का आह्वान किया जाता था। उदाहरणस्वरूप, जब पृथ्वीराज चौहान गौरी के विरुद्ध युद्ध के लिए जाते हैं, तब वहाँ भी छत्तीस क्षत्रियों से इस धर्मयुद्ध में शामिल होने का आह्वान किया जाता है।

"छतोस कुलो बर वंस विय। चढ़ि प्रथिराज नरिंद चर ॥
उपवन्न बंब बच्चों विष। खान थान द्रिगपाल इलि ॥छ०॥२४२॥"

(चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो)

बीसलदेव रासो सहित अनेक प्राचीन ग्रंथों में भी ऐसे आह्वान के ऐतिहासिक साक्ष्य मिलते हैं। राजाओं के लिए युद्ध, धर्मयुद्ध माने जाते थे। पंवार राजा भोज के पास कोई स्थायी सेना नहीं थी और वे अपने युद्धों में योद्धाओं को धर्मयुद्ध मानकर लड़ने का आह्वान करते थे। उनके अधिकांश योद्धा या तो उनके अपने कुल के होते थे या फिर नातेदार कुलों से संबंध रखते थे।

इसी प्रकार, मालवा के परमार(पंवार) राजा और उनके नातेदार कुलों का एक संघ, छत्तीस क्षत्रिय कुलों के रूप में संगठित था। यही कारण है कि मालवा में इस संघ के आधार पर एक जाति के रूप में इसका विकास हुआ। इसका प्रमाण बीसलदेव रासो की निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है, जिसमें मालवा नरेश भोज की पुत्री राजमती स्वयं को पंवार(पंमार) बताती हैं। आगे की पंक्तियों में, वह अपने समाज के छत्तीस कुलों का उल्लेख करते हुए, अपने पति शाकंभरी नरेश बीसलदेव (विग्रहराज) से वियोग के दुःख का वर्णन करती हैं।

पाटे वश्ठा दुई राजकुमार। पहिरी वत्र जाद्र-सार ॥
कांन्हे कुडल आडीया। सरब सोनारो" मुकुट लोलाट ॥
रूप देखि राजा हसई । त्रिभुवन माहइ छर जाति पमार ॥ ५८ ॥

झुरई' सहोवर' रावं का। कुली छतीसइ झरइ सोही ॥
धार भूरई राजा भोज सू'। सामखा राव सो पडयो विछोह ॥ ६८ ॥
(नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो)

इस समुदाय ने अवंती राज्य पर हजारों वर्षों तक शासन किया, और इन पोवार(पंवार) राजाओं के परिवार को संस्कृत ग्रंथों में परमार कुल या वंश के रूप में उल्लेखित किया गया है। पौराणिक कथाओं में, गुरु वशिष्ठ के द्वारा आबूगढ़ में अग्निकुंड से अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति का विवरण मिलता है, जिसमें प्रमार(परमार) कुल की उत्पत्ति मानी जाती है।

इन्हीं राजाओं ने मालवा सहित अनेक क्षेत्रों में शासन किया, और अवंती नरेश सम्राट विक्रमादित्य, गुरु भर्तृहरि, राजा शालिवाहन को अपना पूर्वज माना है। इन राजाओं और उनके नातेदार पंवार(पोवार) कुलों की इतनी प्रसिद्धि हुई कि पंवारों को पृथ्वी की शोभा कहा जाने लगा। पंवार(परमार) राजा भोज ने अपनी राजधानी उज्जैन

से धार स्थानांतरित की और उनकी चारों दिशाओं में इतनी ख्याति फैली कि यह कहा जाने लगा - "जहां धार, वहां पंवार"।

धारानगर के छत्तीस कुल पंवार(पोवार) या परमार का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है। हालाँकि, परमार, पंवार(पोवार) मूलतः एक राजपरिवार की उपाधि या कुलनाम था, लेकिन इनकी अपार प्रसिद्धि के कारण समस्त छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समुदाय को भी परमार जाति के रूप में उल्लेखित किया गया है।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के बाद संस्कृत के 'राजपुत्र' शब्द का अपभ्रंश 'राजपूत' हो गया, और यही क्षत्रियों के संघ के रूप में एक जाति के रूप में विकसित हुआ, जिसे आज का राजपूत समाज कहा जाता है। इसमें अधिकांश पुरातन छत्तीस क्षत्रिय कुलों सहित अवंती राज्य के परमार(पंवार) राजवंश के वंशज भी परमार या पंवार(पोवार) कुलनाम से शामिल हुए। इसी कारण पंवार(पोवार) और परमार का एक कुल और एक जाति के रूप में उल्लेखित होना स्पष्ट हो जाता है।

1.6 मालवा के ५२ कुल परमार(पंवार) समाज

मालवा के शाजापुर, देवास, सीहोर आदि जिलों में निवासरत परमार समाज के ५२ गोत्र माने जाते हैं, जिनमें से वर्तमान में लगभग ४४ कुलनाम (गोत्र) मौजूद हैं। ये भी खुद को मालवा के परमार वंश के राजपूतों से ऐतिहासिक संबंध जोड़ते हैं। इनके जाति-प्रमाण पत्र पंवार नाम से ही बनते हैं।

अपने इतिहास के अनुसार, विक्रम संवत १३४३ (१२८६ ईस्वी) में, ७५० गाड़ियों के काफिले के साथ यह समुदाय विषम परिस्थितियों में आबूगढ़ से चित्तौड़गढ़, मंदसौर होते हुए शाजापुर जिले के पलसावद पहुंचा। यहां इन्होंने अपने काफिले की सुरक्षा के लिए अपने दल को ३६ के बजाय ५२ कुलों में विभाजित किया। पुराने कुलनामों के स्थान पर इन्होंने उनके अपभ्रंशित नाम रखे।विक्रम संवत १३५३ (१२९६ ईस्वी) में, इन्होंने सुजालपुर के राजा को हराकर यह क्षेत्र जीत लिया और यहां स्थायी रूप से बस गए। वर्तमान में, मालवा क्षेत्र में इस समुदाय के लगभग ढाई लाख लोग लगभग दो सौ गांवों में निवास करते हैं।

[मालवा क्षेत्र के पंवार समाज की उत्पत्ति: लेखक: श्री कुंवरलाल पंवार, पटलावदा (शाजापुर)]

1.6.1 मालवा के ५२ कुल परमार(पंवार) समुदाय और मध्यभारत के छतीस कुल पोवार(पंवार) समुदाय

मध्य भारत के पोवार और मालवा के परमार समाज, दोनों में ही मूल रूप से ३६ कुल माने गए हैं। दोनों समाजों के कई आदि कुल समान हैं। ५२ कुल परमार समाज का मूल क्षेत्र आबूगढ़ बताया गया है, जबकि पोवारों के मूल क्षेत्र अलग-अलग बताए गए हैं। हालांकि, ये मालवा से अन्य कई क्षेत्रों में एक साथ स्थानांतरित होते हुए मध्य भारत में आकर स्थायी रूप से बस गए।

छत्तीस कुल पोवार समाज में अग्निवंशीय कुल भी शामिल हैं, जिनकी उत्पत्ति आबूगढ़ से मानी जाती है। आबूगढ़ से बावन कुल परमारों के आगमन का भी ऐतिहासिक विवरण मिलता है। इसी कारण, दोनों समाजों के बीच प्राचीन काल में ऐतिहासिक संबंध रहे हो सकते हैं। हाल के दिनों में, संगठनों और सोशल मीडिया के माध्यम से इन दोनों समुदायों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों की शुरुआत हुई है।

1.7 पोवारों के छत्तीस कुलों का मूल क्षेत्र

अधिकतर ऐतिहासिक संदर्भों में पोवार समाज को मालवा या धार से आया हुआ बताया गया है। ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में इन्हें मालवा के परमार राजपूत बताया गया है, जो सर्वप्रथम विदर्भ के नगरधन में आए और फिर मध्य भारत के अन्य क्षेत्रों में जाकर अपनी बस्तियाँ बसाई। पोवारों की पोथियों में भी इनके सबसे पहले नगरधन आने का ही उल्लेख मिलता है। सभी संदर्भों के अवलोकन से एक सर्वमान्य तथ्य उभरकर सामने आता है कि पोवार सर्वप्रथम विदर्भ की प्राचीन राजधानी, वर्तमान नागपुर जिले की रामटेक तहसील के पास स्थित नगरधन नगर में ही आए थे।

पोथियों के आधार पर यह तथ्य भी मिलता है कि पोवार समुदाय में धारानगरी के परमार राजपूतों के साथ अन्य कुलों के क्षत्रिय भी शामिल हैं, जिनका मूल स्थान या ठिकाना भिन्न-भिन्न था। लेकिन ये सभी, हजारों वर्षों से सामाजिक रूप से जुड़े होने के कारण, अवंति या मालवा के उज्जैन और धार नगरों से जुड़े हुए थे। शायद यही कारण है कि मध्य भारत में इन सभी को धारानगरी या मालवा के पंवार(पोवार) के रूप में ही पहचाना गया, और ऐतिहासिक तथ्य भी इसी को प्रमाणित करते हैं।

पोथियों में कई रियासतों से सूबेदारों के अपनी सेना के साथ आने का उल्लेख मिलता है, जिसे पोथियों के अलावा कई ब्रिटिश दस्तावेजों में भी दर्ज किया गया है। जैसे, बिसेन कुल (प्राचीन कोहपाल) उज्जैन के बिसनगढ़ी से, ठाकुर (ठाकरे) कुल ठाकरगढ़ और टोंक से, तथा पटले कुल गुजरात के पाटन से आए थे। इन्हीं तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समय-समय पर परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप पोवार समाज के पूर्वजों ने अच्छे जीवन की खोज में विभिन्न क्षेत्रों में स्थानांतरण किया।

पोवारों की पोथियों में उनके कुलों के मूल स्थानों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे, तुरकर कुल को हस्तिनापुर, दिल्ली के तंवर राजवंश से संबंधित बताया गया है, जो कि तंवर (तोमर) राजवंश का क्षेत्र था। इसी प्रकार, तोमर सिंह के वंशज टेंभरे कुल को अमरकोट से आना बताया गया है, जो सोढ़ा परमारों की भी राजधानी रही है। भाट के अनुसार, छत्तीस कुल पोवारों में परमार कुल के क्षत्रिय भी शामिल थे, इसलिए यह स्पष्ट होता है कि टेंभरे पंवार निश्चित रूप से अमरकोट के सोढ़ा परमार साख के वंशज रहे होंगे। कटरे कुल को काठियावाड़ के काठी क्षत्रिय वंश से संबंधित बताया गया है, जो एक प्राचीन क्षत्रिय कुल माना जाता है।

परमारों की आराध्य देवी 'मालण शक्ति' का अवतरण पाट्टन के राजा वैरिशाल परमार के घर हुआ था, जिनका मुख्य मंदिर जानरा (जैसलमेर) में स्थित है। पाटन नगर पर परमार शासकों ने लंबे समय तक शासन किया और उन्होंने 'पट्टलिक' की उपाधि भी धारण की थी। यही परमार शाखा कालांतर में एक कुल के रूप में विकसित हो गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि मध्यभारतीय पटला (वर्तमान पटले) कुल के पंवार, पाटन के पंवारों के वंशज हैं। इस तथ्य की पुष्टि पटले कुल की भाट द्वारा लिखित वंशावली से भी होती है, जिसके अनुसार पटला या पटले कुल के पंवार, गुजरात के पाटन से मध्य भारत आए थे।

पारधी(पारदी) कुल, गुजरात से नगरधन आए और शिवराम पारधी नगरधन के राजा बने। गुजरात में स्थित पारदी किले का प्राचीन क्षत्रिय कुल पारद से ऐतिहासिक संबंध रहा है, जिन्हें रघुकुल के सूर्यवंशी वंशज माना जाता है। यह कुल, पारदी या पारधी नाम से छत्तीस कुल पंवारों में सम्मिलित है।

इसी प्रकार, पोथियों में उल्लिखित विभिन्न कुलों के मूल स्थानों के आधार पर पोवार समाज के इतिहास को समझने का प्रयास किया जा रहा है। इस पर विस्तृत

शोध कार्य जारी है, जिससे सभी कुलों के वास्तविक इतिहास को स्पष्ट किया जा सके। उम्मीद है कि यह विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययन जल्द ही उपलब्ध होगा।

पोथियों में निम्नलिखित स्थानों को छत्तीस कुल पंवारों के विभिन्न कुलों के मूल स्थानों के रूप में दर्शाया गया है, उज्जैन, बिसनगड़ी, धार, आबूगढ़, धोतक, अरथगढ़, ठाकाम, आदगढ़, भांभरा, बुलंदगढ़, बूंदीगढ़, वोथाना, चाहगढ़, उतरा, वोसणा, आसगढ़, दिहिगढ़, तोहरा, हस्तिनापुर, जैसलमेर, वारगढ़, धूँटा, टोंकगढ़, पारदी, कटवा, कन्नौज, ठाकरगढ़, तिलगढ़, गढ़खुमरी, मथुरा, यादवघाटी, कहकवी, गढ़राज, पिपलगढ़ आदि। हालांकि, पोथियों में लिखे इन नामों को पढ़ने में आने वाली कठिनाइयों और समय के साथ इन स्थानों के नामों में हुए बदलावों के कारण इन्हें वर्तमान में पहचान पाना अत्यंत कठिन हो गया है।

अध्याय २

पंवारों का मध्यभारत में आगमन और नागपुर के शाह तथा मराठा राजवंश

अध्याय २

पंवारों का मध्यभारत में आगमन और नागपुर के शाह तथा मराठा राजवंश

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, अवंती या मालवा के पंवारों (पोवारों) का अनेक क्षेत्रों में स्थानांतरण हुआ है, और वर्तमान में ये राजपूत, मराठा सहित कई जातियों में एक कुल के रूप में भी शामिल हैं। छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज स्वयं को मालवा के परमारों का वंशज मानता है और मालवा के परमार राजाओं को ही अपना आदर्श मानकर अपनी पहचान उनसे जोड़ता है। इतिहास में जिन छत्तीस कुल क्षत्रिय संघ का उल्लेख है, उनके मूल वंशज, छत्तीस कुल पंवार (पोवार) का अस्तित्व आज भी मध्य भारत में मौजूद है। मालवा के पंवार (पोवार) समाज ने अपने नाम और पहचान को आज भी संजोकर रखा है।

अठारहवीं सदी की शुरुआत में, देवगढ़ एवं नागपुर के राजाओं के आह्वान पर पंवार (पोवार) समाज विदर्भ के नगरधन-नागपुर क्षेत्र में आकर बस गया, और बाद में वैनगंगा क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करने लगा। कुछ इतिहासकार इन्हें नगरधन के प्राचीन परमार राजाओं का वंशज मानते हैं, लेकिन अधिकांश ऐतिहासिक प्रमाण इन्हें मालवा या धारानगरी के छत्तीस कुलों वाले पंवार (पोवार) समाज के रूप में ही दर्शाते हैं। यद्यपि वर्तमान में इस क्षेत्र में पंवारों (पोवारों) के तीस कुल विद्यमान हैं, परंतु ऐतिहासिक साक्ष्यों में इनके छत्तीस कुल होने के ही प्रमाण मिलते हैं।

एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, वॉल्यूम XXXII (१८०३), जनरल के पृष्ठ क्रमांक ९२ में, बाबू राजेंद्र लाल मित्रा ने नागपुर के पास वैनगंगा के पश्चिमी किनारे स्थित एक मंदिर से प्राप्त तथा सतारा में रखे ताम्र अभिलेख का उल्लेख किया है, जिसमें पंवारों (पोवारों) का उल्लेख मिलता है। चांदा के भांडक मंदिर से भी एक अभिलेख प्राप्त हुआ था, जिसमें धार के पंवार राजा का इतिहास दर्ज था, लेकिन बाद में नागपुर के राजा ने इसे हटा दिया। संभवतः वह यह नहीं चाहता था कि इस क्षेत्र में बसे पंवार (पोवार) अपने इतिहास से परिचित होकर अपने पूर्वजों के प्रभुत्व को पुनः स्वीकार करें और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करें। वैनगंगा तट के प्राचीन मंदिरों और भांडक के नाग मंदिर के अभिलेखों में विदर्भ क्षेत्र पर मालवा के पंवार (पोवार) राजाओं द्वारा शासन किए जाने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

2.1 पोवारों के नगरधन आगमन का कालक्रम

पोवार समाज के नगरधन आगमन के समय को लेकर इतिहासकारों ने अलग-अलग तथ्य प्रस्तुत किए हैं। अध्याय एक में उनके मूल क्षेत्रों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। हालांकि, उनके मूल स्थान को लेकर विभिन्न मतभेद हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश ऐतिहासिक संदर्भों में यह स्वीकार किया गया है कि वे सर्वप्रथम विदर्भ की प्राचीन राजधानी, नगरधन पहुंचे। उनके नगरधन आगमन के कालक्रम को लेकर मुख्य रूप से तीन मत प्राप्त होते हैं।

2.1.1 पोवारों के आगमन पर प्रथम मत

इतिहासकारों के एक प्रमुख मत के अनुसार, विदर्भ क्षेत्र में वर्तमान में निवासरत पंवार (पोवार), दसवीं से चौदहवीं सदी तक नगरधन से लेकर मध्यभारत के अनेक भागों पर शासन करने वाले परमार राजाओं के वंशज हैं। हालाँकि, 1310 ईस्वी में परमार राजा महलकदेव की पराजय और मालवा पर मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद विदर्भ में भी परमारों का प्रभाव कमजोर हो गया, किंतु इसके बावजूद नगरधन पर उनका नियंत्रण कुछ समय तक बना रहा।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि पंवार (पोवार) राजवंश के पश्चात नगरधन पर देवगिरि के यादव वंश का भी शासन स्थापित हुआ था। किंतु स्पष्ट ऐतिहासिक साक्ष्यों के अभाव में यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि गोंड शासकों के नियंत्रण में आने तक नगरधन पर पंवारों (पोवारों) का ही आधिपत्य बना रहा, या बीच में यादव अथवा किसी अन्य राजवंश का शासन स्थापित हुआ था। तथापि, यह क्षेत्र अपने सघन वनों के कारण मुगल, मराठा और निज़ाम जैसे शक्तिशाली शासकों के मध्य एक सुरक्षित स्थल के रूप में प्रसिद्ध रहा। लक्ष्मणदेव एवं उनके भाई जगदेव पंवार (पोवार) के पश्चात, नगरधन से मध्यभारत पर प्रभावी नियंत्रण रखने वाले किसी अन्य प्रमुख शासक का उल्लेख ऐतिहासिक स्रोतों में नहीं मिलता।

देवगढ़ राज्य के राजा बुलंद शाह ने राजपूतों की सहायता से इस क्षेत्र को औरंगज़ेब के प्रभाव से मुक्त कर अपनी राजधानी देवगढ़ से नागपुर स्थानांतरित कर दी थी। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन्होंने नागपुर को अपनी राजधानी बनाया, न कि इस क्षेत्र की प्राचीन राजधानी नगरधन या नंदिवर्धन को। इस कालखंड से संबंधित दस्तावेजों और भाटों की पोथियों में नगरधन पर पंवार (पोवार) राजपूतों के आधिपत्य का उल्लेख

मिलता है। इतिहास में यह भी वर्णित है कि पंवार (पोवार) शिवराम पारदी ने नगरधन के किले पर नियंत्रण स्थापित किया था।

राजा बुलंद शाह और राजपूत योद्धाओं के बीच हुए सैन्य समझौते के अनुसार, औरंगज़ेब के नियंत्रण से इस क्षेत्र को मुक्त कराने में सहायता के बदले, नगरधन का आधिपत्य पंवारों (पोवारों) को बनाए रखने दिया गया, और साथ ही उन्हें कई किले तथा अन्य क्षेत्रों की जागीरदारी भी प्रदान की गई। इसी आधार पर, पहले मत के समर्थक यह मानते हैं कि वैनगंगा क्षेत्र के वर्तमान पंवार (पोवार), नगरधन के प्राचीन पंवार (पोवार) राजाओं के ही वंशज हैं।

2.1.2 पोवारों के आगमन पर द्वितीय मत

नगरधन में पंवारों (पोवारों) के आगमन से संबंधित द्वितीय मत के अनुसार, यह माना जाता है कि वे समय-समय पर आवश्यकतानुसार मध्यभारत आते रहे हैं। मालवा पर बार-बार हुए इस्लामिक आक्रमणों के कारण उनका क्रमिक विस्थापन हुआ। स्थानीय गोंड शासकों और राजपूतों के बीच ऐतिहासिक संबंध विद्यमान थे तथा मुस्लिम शासकों के विरुद्ध संघर्ष में गोंड शासकों को राजपूतों का सहयोग प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप अनेक राजपूतों ने इस क्षेत्र में स्थायी रूप से बसना स्वीकार किया।

हालाँकि इस मत को आंशिक रूप से ही स्वीकार्य माना जा सकता है, क्योंकि यद्यपि पंवार (पोवार) राजपूत थे, वे अन्य राजपूतों से सांस्कृतिक रूप से भिन्न थे। वे केवल एक ही संगठित जत्थे के रूप में इस क्षेत्र में आए और बाद में आने वाले अन्य राजपूतों से पृथक रहे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे मालवा से एक संगठित सामुदायिक स्वरूप में आए थे और उनकी विवाह संबंधी परंपराएँ केवल अपने छत्तीस कुलों के भीतर सीमित थीं। यह मत मध्यभारत में राजपूतों के आगमन और बसने की प्रक्रिया की व्याख्या करता है, किंतु नगरधन में आए छत्तीस कुलों वाले पंवार (पोवार) समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक एकरूपता और उनकी संगठित भाषाई पहचान की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाता। इस कारण इसे पूर्णतः प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।

2.1.3 पोवारों के आगमन पर तृतीय मत

पंवारों (पोवारों) के नगरधन क्षेत्र में आगमन से संबंधित तृतीय मत के अनुसार, उनका प्रवेश अठारहवीं सदी की शुरुआत में देवगढ़ के राजा बुलंद शाह के आह्वान पर

हुआ। यह आह्वान औरंगज़ेब के विरुद्ध सैन्य संघर्ष के संदर्भ में था, जिसमें पंवारों ने सहयोग दिया और इस क्षेत्र में आए। इस मत के समर्थन में सर्वाधिक प्रमाण उपलब्ध हैं, विशेष रूप से ब्रिटिश कालीन दस्तावेज, जो इस मत की पुष्टि करते हैं।

पंवार समाज की एक संगठित सामुदायिक संरचना और विशिष्ट भाषाई पहचान इस मत की पुष्टि करती है। पंवारों की अपनी मातृभाषा है, जिसे विभिन्न भाषाविदों ने राजस्थानी-हिंदी भाषा समूह की भाषा माना है। यह तथ्य तभी संभव हो सकता है जब यह समुदाय लंबे समय से एकीकृत रूप में साथ रह रहा हो। मध्यप्रदेश के इस क्षेत्र में मराठी भाषा का प्रभाव मराठा शासनकाल से आरंभ हुआ, इसके बावजूद पंवारों ने अपनी भाषाई पहचान को आज भी बनाए रखा है। यह इस बात का प्रमाण है कि वे राजस्थान-गुजरात क्षेत्र से यहां आए और अपने सांस्कृतिक एवं भाषाई मूल को संरक्षित रखा।

यदि पंवार, प्रथम मत के अनुसार, राजा मुञ्ज से लेकर राजा लक्ष्मणदेव पंवार तक के काल से इस क्षेत्र में बसे होते, तो संभवतः वे राजपूताना की भाषा और संस्कृति को पूरी तरह भूल चुके होते। किंतु वर्तमान में ऐसा नहीं देखा जाता। तृतीय मत के अनुसार, इन राजपूतों को यहां बसे हुए लगभग ३२५ वर्ष हो चुके हैं, और जनगणना व अन्य सामाजिक दस्तावेजों में यह भी उल्लेख मिलता है कि उन्होंने कई पारंपरिक राजपूत रीति-रिवाजों को छोड़कर स्थानीय परंपराओं को अपनाया है।

तीन शताब्दियों से अधिक समय के इस इतिहास में यह पूर्णतः संभव है कि मालवा, राजपुताना और मध्यभारत की संस्कृतियों का समन्वय, पंवारों की भाषा और संस्कृति में परिलक्षित हो। यही कारण है कि अधिकांश प्रमाण इस तृतीय आगमन सिद्धांत का समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार ये राजपूत सर्वप्रथम नगरधन आए, फिर लंबे समय तक नगरधन-नागपुर क्षेत्र में बसे रहे और अंततः वैनगंगा क्षेत्र में स्थायी रूप से स्थापित हो गए।

2.1.4 पोवारी संस्कृति और पोवारों के नगरधन आगमन का कालक्रम

पोवार एक जातीय स्वरूप में एक क्षेत्र विशेष में ही बसे हुए हैं, जिनकी विशिष्ट भाषा और संस्कृति आज भी लगभग पंद्रह लाख पोवारों में समान रूप से देखी जाती है। इसे ही छत्तीस कुल पंवारों(पोवारों) की साझा पोवारी संस्कृति कहा जाता है। इतने

बड़े समाज में एक समान संस्कृति का बना रहना तभी संभव है जब वे लंबे समय तक एक साथ रहे हों।

समाज की प्राचीन मातृभाषा, पोवारी भाषा के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि इस पर उत्तर-पश्चिम भारत की भाषाओं के साथ-साथ विदर्भ की भाषाओं, विशेष रूप से मराठी का भी प्रभाव देखा जाता है, और यही प्रभाव उनकी संस्कृति में भी परिलक्षित होता है। यदि आज के पंवारों(पोवारों) के पूर्वज ग्यारहवीं से बारहवीं सदी में इस क्षेत्र में आए होते, तो इतने लंबे अंतराल में वे निश्चित रूप से राजपूताना की संस्कृति को पूरी तरह से भूल चुके होते। वहीं, यदि वे अलग-अलग समय में विभिन्न जत्थों में आए होते, तो उनकी साझा संस्कृति और समान भाषा इतनी सुसंगत रूप में नहीं पाई जाती।

पोवारों के विस्थापन को समझने के लिए उनकी भाषा और संस्कृति के स्वरूप का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। पोवारी भाषा के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इसे बोलने वाले समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विस्थापन का क्षेत्रवार प्रभाव देखा जा सकता है। छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के हर सांस्कृतिक कार्यक्रम में पोवारी भाषा में गीत होते हैं, जो विवाह, छठी, बारसा आदि जैसे अवसरों पर गाए जाते हैं और पूरे समाज में समान रूप से प्रचलित हैं। उदाहरणस्वरूप, बैहर क्षेत्र में पोवारों की बसाहट १८७५ के आसपास हुई थी, जिससे उनका भंडारा जिले में रह रहे पोवारों से भौगोलिक दूरी के कारण संपर्क सीमित हो गया। इसके बावजूद, यदि दोनों क्षेत्रों के पोवारों की संस्कृति का अध्ययन किया जाए, तो उनके नेग-दस्तूर, विवाह गीत और अन्य परंपराएँ समान पाई जाती हैं। यह समानता तभी संभव हो सकती है जब वे इसके पहले भी लंबे समय तक एक संगठित समुदाय के रूप में साथ रहते आए हों।

भाषाई स्वरूप के अध्ययन से एक और महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि पोवारी भाषा का स्वरूप मराठी भाषा से काफी भिन्न है। विभिन्न भाषाई सर्वेक्षणों में पोवारी भाषा को पूर्वी हिंदी और राजस्थानी भाषा समूह के साथ रखा गया है, न कि मराठी भाषा समूह के साथ। इसी प्रकार, यदि पोवारों के पारंपरिक पहनावे का अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वे मराठी संस्कृति के परिधानों के साथ-साथ पूर्व में राजस्थानी-मालवी पहनावा भी धारण करते थे। आज भी पुराने बुजुर्ग बताते हैं कि पुरुष बाराकसी और धोती के साथ राजपूताना साफा पहनते थे, जबकि महिलाएँ पारंपरिक राजस्थानी परिधान पहनती थीं। यह तथ्य ब्रिटिश दस्तावेजों में भी प्रमाणित

होता है। कुछ दशक पूर्व तक हमारे पूर्वज राजपूताना के इन पारंपरिक वस्त्रों को पहनते थे, लेकिन मराठा शासकों के साथ रहने के कारण उन्होंने मराठी पहनावा और खान-पान को भी अपना लिया। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे लगभग ३०० वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में आए थे, जिससे उनकी पूर्ववर्ती और वर्तमान संस्कृति के संबंधों का समन्वित स्वरूप उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

एक समुदाय के रूप में भाषा और संस्कृति का पीढ़ी दर पीढ़ी और क्षेत्रवार हस्तांतरण तभी संभव है जब उनके परिवार साथ-साथ रहते हों। परिवार में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि सभी सामाजिक और सांस्कृतिक अनुष्ठान, रीति-रिवाज और दस्तूर उनके द्वारा ही किए जाते हैं। पोवारों के हर रीति-रिवाज के लिए पुरातन गीत हैं, जो पोवारी भाषा में ही गाए जाते हैं। इन गीतों का विकास केवल कुछ वर्षों में नहीं हो सकता, यह बहुत समय की प्रक्रिया का परिणाम है। हर छत्तीस कुल पोवार परिवार में इन गीतों का साझा होना और विभिन्न क्षेत्रों में उनका कुछ भिन्न होना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पोवारों का अपने परिवारों के साथ ही स्थानांतरण हुआ है। इसके साथ ही, अपने ही समुदाय में वैवाहिक संबंध बनाए रखने के कारण उन्होंने अपनी संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखा है।

उपरोक्त तथ्यों और अध्ययन के आधार पर, यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पोवारों का मध्यभारत में स्थानांतरण अठारहवीं सदी की शुरुआत में अपने परिवारों के साथ हुआ था। उनके सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन यह दिखाता है कि वे एक संगठित समुदाय के रूप में यहाँ आए थे, जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखे हुए थे।

अगर पोवार राजपूत, ग्यारहवीं या बारहवीं सदी में इस क्षेत्र में आते, तो इतने लंबे समय में उनकी सांस्कृतिक पहचान में बदलाव हो जाता और वे राजपूताना की संस्कृति को भूल जाते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि उनका सांस्कृतिक और भाषाई स्वरूप आज भी जीवित है, जो यह साबित करता है कि उनका स्थानांतरण एक स्थिर और सामूहिक रूप में हुआ था।

इसके अलावा, पोवारी भाषा, पारंपरिक रीति-रिवाज, विवाह संबंधी परंपराएँ और अन्य सांस्कृतिक पहलु यह प्रमाणित करते हैं कि वे एक परिवार और समुदाय के रूप में, एक साथ रहते हुए, इस क्षेत्र में स्थानांतरित हुए। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला

जा सकता है कि पोवारों का स्थानांतरण अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ, और इस स्थानांतरण ने उनकी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक ढांचे को मजबूती दी।

2.2 नागपुर के शाह तथा मराठा राजवंश और पंवार समाज

मध्य भारत के विदर्भ क्षेत्र में पंवार राजपूतों के आगमन से लेकर वैनगंगा क्षेत्र तक उनके विस्तार के दौरान, देवगढ़-नागपुर क्षेत्र में सर्वप्रथम शाह गोंड राजवंश का और तत्पश्चात भोसले मराठा राजवंश का शासन रहा। गोंड शाह राजवंश के राजा बुलंद शाह के आव्हान पर आए पंवार राजपूतों ने उन्हें मुग़ल शासक औरंगज़ेब के प्रभुत्व से मुक्त कर एक स्वतंत्र शासक के रूप में स्थापित किया।

इसी समय, बुलंद शाह के पुत्र बुलंद बख़्त ने नागपुर नगर की स्थापना की और सन सत्रह सौ दो में नागपुर को राज्य की राजधानी घोषित किया। इसके पश्चात् कुछ ही वर्षों में नागपुर पर भोसले मराठाओं का नियंत्रण स्थापित हो गया। भोसले राजाओं के शासनकाल में, जब उनका राज्य बंगाल से कटक तक फैला, उस विस्तार में पंवारों का पूर्ण सहयोग रहा।

नागपुर क्षेत्र में दीर्घकालीन निवास और सक्रिय भूमिका के कारण, ब्रिटिश काल के प्रसिद्ध लेखक आर. वी. रसेल (आर॰ वी॰ रसेल) ने अपनी पुस्तक "ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ द सेंट्रल प्रोविन्सेस ऑफ इंडिया, वॉल्यूम चार" में पंवारों को “नागपुर पंवार” की संज्ञा दी है।

इस अध्याय में नागपुर के शासकों का परिचय देने के साथ-साथ, मालवा और राजपुताना क्षेत्र से आए पंवार राजपूतों तथा नागपुर राज्य के शासकों के मध्य रहे ऐतिहासिक संबंधों का विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा।

2.2.1 नागपुर की स्थापना

शाह बुलंद बख्त की राजधानी देवगढ़ थी, जो आज के मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले में, सुदूर जंगलों और पहाड़ों के बीच स्थित थी। वे अपनी नई राजधानी मैदानी क्षेत्र में चाहते थे, इसीलिए उन्होंने एक नए शहर, नागपुर की स्थापना की। देवगढ़ के राजा बुलंद बख्त एक बहुत ही दूरदर्शी राजा थे। एक ओर, वे तकनीकी और शैक्षणिक रूप से उन्नत राज्य स्थापित करना चाहते थे, तो दूसरी ओर मुगलों से राज्य को सुरक्षित रखने के लिए शक्तिशाली सैन्य बल का निर्माण करना चाहते थे। राजपुर बरसा और

बारह गांवों को मिलाकर नागपुर नगर का निर्माण किया गया। सन १७०२ में, इस नए नगर में शाह बुलंद के द्वारा अपनी राजधानी स्थानांतरित की गई।

नागपुर जिला गैज़ेट (१९०८) में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि शाह बुलंद बख्त ने इस क्षेत्र में बाहर से अनेक जातियों के लोगों को आमंत्रित कर बसाने के प्रयास में उन्हें भूमि आबंटित की। सन १७०६ में शाह बुलंद की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र चांद सुल्तान ने नागपुर का काफी विकास किया। बाद में, नागपुर राज्य पर उत्तराधिकार को लेकर हुए विवाद में भोसले राजाओं को हस्तक्षेप करवाया गया और बाद में उन्होंने नागपुर राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

नगरधन, विदर्भ की प्राचीन राजधानी थी, लेकिन नागपुर को इस क्षेत्र की राजधानी के रूप में विकसित करने के कारण उसका प्रभाव कम हो गया था। एक समझौते के तहत नगरधन को पंवारों के नियंत्रण में रहने दिया गया, जो नागपुर राज्य की प्रमुख सैन्य राजधानी के रूप में विकसित हुआ। नागपुर के मुख्य राजधानी बनने के पश्चात्, यह मध्यभारत की सत्ता का केंद्र बन गया और गोंड, मराठा तथा ब्रिटिश शासन से लेकर स्वतंत्र भारत में १९५६ तक मध्यप्रदेश की राजधानी रहा।

2.3 राजा शाह बुलंद बख्त

देवगढ़ के शाह गोंड राजवंश के गोरख शाह के पुत्र महिपत शाह ने सन १६८६ में मुग़ल शासक औरंगजेब की मदद से देवगढ़ का राजा बने। परंतु, औरंगजेब ने केवल इस्लाम धर्म के पालन के बदले ही उत्तराधिकार के युद्ध में उनका सहयोग किया। इस्लाम धर्म ग्रहण करने के कारण महिपत शाह का नाम बदलकर शाह बुलंद बख्त कर दिया गया, और उन्हें देवगढ़ की गद्दी पर बिठाया गया।

2.3.1 औरंगजेब और बुलंद बख्त के सम्बन्ध

देवगढ़ रियासत के शासक बुलंद बख्त और मुग़ल शासक औरंगजेब के बीच हमेशा तनावपूर्ण संबंध रहे। औरंगजेब ने शाह बुलंद बख्त को जबरन इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था। इस्लाम अपनाने और मराठों के विरुद्ध मुगलों का सहयोग करने की शर्त पर ही उसे देवगढ़ का राजा बने रहने दिया गया। शाह बुलंद बख्त सन १६९६ तक औरंगजेब की शर्तों पर कार्य करता रहा, लेकिन इसके बाद देवगढ़ में उत्तराधिकार को लेकर अशांति फैल गई।

शाह बुलंद बख्त का करीबी दीनदार विद्रोही हो गया और चांदा के राजा किशन सिंह के सहयोग से सदरुद्दीन के अधीन एक मुगल सेना देवगढ़ पर नियंत्रण के लिए भेजी गई। मुग़ल शासक ने चांदा के राजा बीरसिंह को आदेश दिया कि वे देवगढ़ की ओर बढ़ें और अपने छोटे भाई नेकनाम को वहाँ पुनः स्थापित करें। संयुक्त सेना ने मार्च १६९६ में देवगढ़ पर कब्जा कर लिया और दीनदार को खदेड़ दिया। देवगढ़ के सिंहासन के लिए आकांक्षी किशनसिंह का पुत्र कानसिंह था, जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर "राजा नेकनाम" के नाम से सिंहासन प्राप्त किया और दीनदार को हटाकर मुगलों को एक अतिरिक्त कर देने का वादा किया।

देवगढ़ खोने के बाद, बुलंद बख्त बेरार में सक्रिय रहा। मुग़ल शासक ने फिरोज जंग को आदेश दिया कि वह बेरार से हटकर विद्रोही बुलंद बख्त को दंडित करे। हमीद खान बहादुर के अधीन मुगल सेना ने बुलंद बख्त को पराजित कर देवगढ़ पर पुनः नियंत्रण स्थापित किया। पराजित शाह बुलंद बख्त अपनी राजधानी छोड़कर मालवा चला गया, जहाँ उसने राजपूतों के सहयोग से एक विशाल सेना तैयार की।

2.3.2 बुलंद बख्त का विद्रोह

राज्य के आंतरिक विद्रोह और मुगलों द्वारा शाह बुलंद के प्रति विश्वास खोने के बाद, उसने अपने राज्य में पुनः बहाल होने की सभी आशाएँ छोड़ दीं और अपने राज्य को अतिरिक्त सैन्य बल द्वारा सुरक्षित करने का निर्णय लिया। सन १६९६ में चांदा और देवगढ़ के शासकों को बदलने के बाद, बुलंद बख्त शाही शिविर से निकल गया और पुनः देवगढ़ पहुँचा, जहाँ उसने विद्रोह का बिगुल बजा दिया।

बुलंद बख्त ने अपने राज्य को औरंगजेब के शासन से मुक्त करने का प्रयास शुरू कर दिया। इस उद्देश्य से उसने मालवा, राजपुताना सहित उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों से सैन्य योद्धाओं को आमंत्रित किया, ताकि वे उसकी सेना में शामिल होकर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष करें। उसका मुख्य उद्देश्य एक शक्तिशाली सैन्य बल का निर्माण कर मुगलों को इस क्षेत्र से बाहर निकालना था। इसी क्रम में, उसने मराठा शासकों और बुंदेलखंड के शासक, महाराजा छत्रसाल बुंदेला से भी अच्छे संबंध स्थापित किए और उनसे सहयोग की मांग की।

2.3.3 राजपूतों का बुलंद बख्त को सैन्य सहयोग

डॉ. हेमंत साने ने अपने शोधपत्र "द देवगढ़-नागपुर गोंड डायनेस्टी" में उल्लेख किया है कि राजा बुलंद बख्त ने बुंदेला शासक छत्रसाल से १५०० मुसकेटेर्स (बंदूकची) की मांग की थी। दोनों शासकों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके तहत महाराजा छत्रसाल बुंदेला ने एक मजबूत सैन्य दस्ता बुलंद बख्त की सहायता के लिए भेजा। इस सेना में अधिकांश राजपूत योद्धा थे, जो मुगलों से युद्ध के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

अपने शोधपत्र में डॉ. हेमंत साने ने लिखा है कि महगांव की जमींदारी मालवा के श्री पंडारा राजपूत को दी गई, जिसने अपने २००० अश्वारोही योद्धाओं के साथ आकर बुलंद बख्त का सैन्य सहयोग किया। भंडारा जिला गज़ेटियर (१९०८) में इन्हें पंवार(पोवार) राजपूत बताया गया है। इस क्षेत्र में बसने के लिए प्रेरित करने हेतु, बुलंद बख्त ने कई सैन्य सरदारों को विभिन्न गाँवों की जमींदारी प्रदान की। उसने उन योद्धाओं को भूमि उपहार में देने का प्रस्ताव दिया, जो आकर औरंगजेब के विरुद्ध संघर्ष करें।

इन राजपूत योद्धाओं के पूर्वज विभिन्न क्षेत्रों में रहकर सदैव समान विचारधारा वाले शासकों और मुस्लिम आक्रांताओं के विरोधियों का सहयोग करते आए थे। इस प्रकार, विभिन्न क्षेत्रों से आए योद्धाओं को संगठित कर बुलंद बख्त ने एक शक्तिशाली सेना का गठन किया। इस सेना और औरंगजेब के सरदारों के मध्य सीधा संघर्ष छिड़ गया।

इस समय नगरधन मुख्य सैन्य छावनी बन गया, जहाँ सभी योद्धाओं को उनके परिवारों के साथ ठहराया गया। इस संगठित सेना ने मुगलों से कई युद्ध लड़े और उन्हें पराजित कर इस क्षेत्र से बाहर खदेड़ दिया, जिससे बुलंद बख्त को पुनः पूर्ण सत्ता प्राप्त हो गई। विजय के पश्चात, बुलंद शाह पुनः देवगढ़ का शासक बना और अपनी राजधानी नागपुर स्थानांतरित कर ली।

2.3.4 बुंदेलखंड नरेश छत्रसाल बुंदेला और शाह बुलंद बख्त के रिश्ते

मालवा के बड़े हिस्से पर मुस्लिमों के आधिपत्य के बाद परमार वंश का शासन समाप्त हो गया था। इसके बाद मालवा के राजपूतों सहित उनके सहयोगियों का विभिन्न क्षेत्रों में विस्थापन हुआ। ये योद्धा कई स्थानों पर भटकते हुए अपने अन्य सहयोगियों की सहायता करते रहे और अपने परिवारों और कुनबे को आगे बढ़ाते रहे। बुंदेलखंड में बुंदेला राजाओं की शक्ति के बढ़ने के साथ राजपूतों का केन्द्रीकरण बुंदेलखंड में हुआ,

जिसमें मालवा राजपुताना के छत्तीस कुलीन राजपूत योद्धा भी बड़ी संख्या में शामिल हुए थे।

राजा छत्रसाल बुंदेला ने अपने राज्य की प्राप्ति के लिए एक विशाल सेना गठित की, जिसने बुंदेलखंड में मुगलों की सत्ता को समाप्त कर एक मजबूत शासन की स्थापना की। छत्रसाल ने पहले देवगढ़ पर विजय प्राप्त की थी, लेकिन शाह बुलंद बख्त के समय बुंदेलखंड और देवगढ़ के बीच अच्छे रिश्ते स्थापित हो गए थे। यही कारण था कि मुगलों के विरुद्ध शाह बुलंद के आह्वान पर छत्रसाल ने अपनी विशाल सेना भेजी। इस सेना में पोवारों के ३६ कुल के अनेक राजपूत कुल मालवा से बुंदेलखंड के रास्ते नगरधन तक पहुंचे थे। इस समय लोधी वंश के योद्धाओं का भी आगमन हुआ, और वे भी इस क्षेत्र में स्थाई रूप से बस गए।

छत्रसाल के सहयोग के कारण शाह बुलंद बख्त को एक अनुभवी और मजबूत सैन्य दस्ता प्राप्त हुआ। इस सैन्य समूह ने शाह बुलंद बख्त की संयुक्त सेना में शामिल होकर बुंदेलखंड की तरह देवगढ़ से भी मुगलों की सत्ता को १७०१ में हमेशा के लिए खत्म कर दिया।

2.3.5 वर्धा का युद्ध

वर्धा नदी के तट पर हुआ निर्णायक युद्ध इस क्षेत्र के शक्ति संतुलन को बदलने वाला था। इस युद्ध में एक ओर देवगढ़ की सेना थी, जिसमें राजपूत योद्धा और मराठा शासकों की संयुक्त सैन्य टुकड़ियाँ शामिल थीं, जबकि दूसरी ओर औरंगजेब के सरदारों के नेतृत्व में मुगल सेना खड़ी थी।

इस युद्ध का नेतृत्व पंवार राजपूतों ने किया, जिन्होंने अपने पराक्रम और रणनीति से मुगल सेना पर भीषण आक्रमण किया। राजपूतों और मराठों की संगठित सेना ने मुगलों को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें भारी क्षति पहुँचाई। कई घंटों तक चले इस संघर्ष में मुगल सेना को करारी हार का सामना करना पड़ा, और उनके प्रमुख सेनानायक या तो युद्ध में मारे गए या रणभूमि छोड़कर भागने को विवश हो गए। इस विजय ने न केवल इस क्षेत्र में मुगलों की पकड़ कमजोर कर दी बल्कि पंवार(पोवार) योद्धाओं की सैन्य शक्ति और प्रभाव को भी अत्यधिक सुदृढ़ कर दिया।

यह युद्ध वर्धा और पवनार के बीच कहीं लड़ा गया था। संभव है कि 'पवनार' नाम 'पंवार' योद्धाओं पर आधारित हो, जो समय के साथ अपभ्रंश होकर 'पवनार' बन गया हो।

2.3.6 बुलंद शाह के द्वारा संयुक्त सेना का गठन और नागपुर राज्य की स्थापना

बुलंद बख्त की सेना, पंवार(पोवार) राजपूत सरदार, मराठा सैनिकों और अन्य योद्धाओं को मिलाकर एक शक्तिशाली संयुक्त सेना का गठन किया गया। सन १७०० के आसपास इस संयुक्त सेना और मुगलों के मध्य कई युद्ध हुए, जिनमें बुलंद बख्त को लगातार जीत मिलती रही। आत्मविश्वास से भरी इस सेना ने सन १७०१ में बेरार के गवर्नर अली मर्दन खान पर आक्रमण किया, लेकिन इस युद्ध में संयुक्त सेना को हार का सामना करना पड़ा। युद्ध के दौरान बख्त बुलंद गंभीर रूप से घायल हो गया, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी।

बेरार में पराजय के बाद भी बुलंद बख्त ने अपने पंवार(पोवार) सरदारों के साथ मिलकर दरियापुर में मुगलों का पीछा किया और वहाँ एक निर्णायक युद्ध लड़ा। यह युद्ध बुलंद बख्त के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुआ, जिसमें उसने मुगलों को करारी शिकस्त दी। इस विजय के बाद संयुक्त सेना ने लगातार युद्ध जीतते हुए मुगलों को विदर्भ और मध्यभारत के कई हिस्सों से पीछे हटने पर मजबूर कर दिया।

धीरे-धीरे समूचे विदर्भ सहित मध्यभारत के बड़े हिस्से पर शाह बुलंद का आधिपत्य स्थापित हो गया। सन १७०२ में नवस्थापित नागपुर शहर में बुलंद बख्त का राज्याभिषेक हुआ और नागपुर राज्य की स्थापना हुई, जिससे नागपुर इस क्षेत्र की नई सत्ता का केंद्र बन गया।

इस विजय के सभी सहयोगियों को राजा शाह बुलंद ने उनकी क्षमताओं के अनुरूप पुरस्कृत किया और उन्हें इसी क्षेत्र में स्थायी रूप से बसने के लिए प्रेरित किया। वास्तव में, यही वह समय था जब मालवा, राजपुताना और उत्तर भारत से आए कई राजपूत योद्धा सपरिवार नागपुर से लेकर वैनगंगा क्षेत्र तक बस गए।

ब्रिटिश अधिकारी रिचर्ड्स जेंकिन्स ने भी अपनी रिपोर्ट्स में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि देवगढ़ के राजा बुलंद बख्त ने विभिन्न क्षेत्रों से आए योद्धाओं को उनकी क्षमताओं के अनुरूप कार्य प्रदान किए और उदारतापूर्वक भूमि आबंटित की। उन्होंने विशेष रूप से छत्तीस कुलीन क्षत्रिय संघ, जिसे पंवार(पोवार) राजपूत कहा गया,

को सैन्य और प्रशासनिक कार्यों में शामिल किया। इन योद्धाओं को नगरधन, आम्बागढ़, सानगढ़ी, प्रतापगढ़, लांजी आदि प्रमुख किलों के किलेदारों के रूप में नियुक्त किया गया।

बख्त बुलंद के शासनकाल में उत्तर और उत्तर-पूर्व से विभिन्न जातियों की मध्यभारत में बसाहट हुई, जिससे वैनगंगा और कन्हान नदियों के बीच स्थित देवगढ़ क्षेत्र में निरंतर विकास हुआ। उनके प्रयासों से यह क्षेत्र समृद्ध होता गया और धीरे-धीरे विदर्भ में सत्ता और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया।

2.4 शाह चाँद सुल्तान

बुलंद बख्त की मृत्यु के बाद उसका बेटा चाँद सुल्तान नागपुर राज्य का उत्तराधिकारी बना। राजा चाँद सुल्तान के समय में इस क्षेत्र का प्रशासन पूरी तरह से देवगढ़ से नई राजधानी नागपुर स्थानांतरित हो चुका था। चाँद सुल्तान ने भी अपने पिता की तरह ही नागपुर राज्य का तेजी से विकास किया, और इस दौरान राजधानी नागपुर की जनसंख्या भी तेज़ी से बढ़ने लगी। उसने अपने पिता की तरह ही इस क्षेत्र के विकास के लिए विभिन्न वर्गों के लोगों को नागपुर राज्य में बसाना जारी रखा। यही वह समय था जब मालवा राजपुताना के राजपूतों सहित अन्य वर्गों के लोग अपने परिवारों के साथ इस क्षेत्र में आकर स्थायी रूप से बसने लगे।

जेंकिन्स के प्रतिवेदन सहित कई ऐतिहासिक दस्तावेजों में नागपुर में विभिन्न क्षेत्रों से लोगों के अपने परिवारों के साथ आकर बसने का विस्तृत उल्लेख मिलता है। नगरधन, नागपुर, पवनी, लांजी, आम्बागढ़, रामपायली, सानगढ़ी आदि प्रमुख सैन्य छावनियाँ थीं, जिन पर पोवारों यानि राजपूतों का सैन्य नियंत्रण था। पोवारों का आगमन पहले नगरधन में हुआ था, जहाँ वे अस्थाई रूप से रुकने के बाद, उन्हें दिए गए दायित्वों के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसने लगे थे।

कई परिवारों का नागपुर में आकर रुकने का उल्लेख भाट की पोथियों से मिलता है। जबकि कई परिवारों को वैनगंगा क्षेत्र में जागीरें, किले आदि प्राप्त हुए थे, और उन्होंने उस क्षेत्र में स्थायी रूप से बसना शुरू किया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य कमजोर होने लगा था, जिसका लाभ यह हुआ कि सेंट्रल प्रॉविन्सेस में मुग़ल हस्तक्षेप समाप्त हो गया। इससे शाह चाँद सुल्तान को स्थायित्व के साथ विकास करने का पूरा अवसर मिला और इस क्षेत्र के बाहर से आए लोग यहां शांत और उन्नत

परिस्थितियों में बसने लगे। यही वजह थी कि बड़ी संख्या में बाहर से आए लोगों को इस क्षेत्र में अच्छे अवसर मिले और उन्होंने विभिन्न स्थानों पर स्थायी रूप से बसना शुरू किया।

2.5 देवगढ़ और नागपुर राजाओं की शासन व्यवस्था

देवगढ़ के राजा ने प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने राज्य को विभिन्न परगनों में विभाजित किया, जिनमें स्थानीय अधिकारी नियुक्त किए गए। ये अधिकारी राजा, रईस, ठाकुर या जागीरदार कहलाते थे और अपने क्षेत्रों में स्वायत्त शासन चलाते थे। उनका मुख्य कार्य राजस्व नियंत्रण और सैनिक सेवाओं की व्यवस्था करना था। बुलंद बख्त के शासनकाल में, उसके सैन्य अभियानों में सहयोग करने वाले सरदारों को कई परगनों का प्रमुख बनाया गया। इनमें छत्तीस कुल पंवार(पोवार) राजपूतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। पंवार(पोवार) राजपूतों ने न केवल प्रशासनिक कार्यों में सहयोग दिया, बल्कि सैन्य नियंत्रण में भी प्रमुख भूमिका निभाई। वे सीमाओं की सुरक्षा, किलों की रक्षा तथा स्थानीय शासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में अग्रणी रहे।

मराठा शासनकाल में भी यही व्यवस्था कुछ बदलावों के साथ जारी रही, और छत्तीस कुल पंवार(पोवार) राजपूतों ने अपनी स्वायत्त जागीरों के माध्यम से शासन व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने में योगदान दिया। वे न केवल वीर योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित थे, बल्कि प्रशासनिक कौशल में भी निपुण थे। इस कारण, उन्हें कई महत्वपूर्ण किलों और सैन्य चौकियों का नियंत्रण सौंपा गया, जिससे क्षेत्रीय सत्ता संतुलित बनी रही।

2.6 नागपुर पर भोसले मराठा शासकों का नियंत्रण और राजपूतों की भूमिका

सन १७३९ में नागपुर नरेश शाह चांद सुल्तान की मृत्यु के बाद राज्य के उत्तराधिकार को लेकर परिवार में संघर्ष शुरू हो गया। चांद सुल्तान के पुत्र वली शाह ने नागपुर की सत्ता प्राप्त की, लेकिन उसकी सौतेली माँ, रानी रतनकुंवर को यह स्वीकार नहीं था। रानी ने अपने बेटों अकबर शाह और बुरहान शाह के हित में बरार के मराठा नेता रघुजी भोंसले से सहायता मांगी।

रघुजी भोंसले के सहयोग से वली शाह की हत्या कर दी गई, और छोटे बेटे अकबर शाह को नागपुर का राजा बना दिया गया। लेकिन कुछ ही समय बाद भाइयों के बीच पुनः उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष छिड़ गया। बड़े बेटे बुरहान शाह ने रघुजी भोंसले के सहयोग से अपने छोटे भाई अकबर शाह की हत्या करवा दी। हालांकि, इस समय तक रघुजी भोंसले की नागपुर की सत्ता पर पकड़ काफी मजबूत हो चुकी थी। उसने शासन पूरी तरह अपने हाथ में लेकर बुरहान शाह को पेंशनयाफ्ता बना दिया और सन १७४३ में स्वयं नागपुर राज्य का राजा बन बैठा। रघुजी भोसले ने शाह शासकों के समय नियुक्त सभी पदाधिकारियों को यथावत तो रखा लेकिन उसके साथ आये मराठा सरदारों और सेना को सबसे महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। हालाँकि मराठा शासन में भी राजपूतों का सैन्य नियंत्रण यथावत रहा और नागपुर की सत्ता को बंगाल और उड़ीसा सहित समूचे मध्यभारत में विस्तारित करने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गोंड राजवंश से लेकर मराठा शासनकाल तक मालवा के छत्तीस कुलीन पंवार(पोवार) राजपूत सरदारों की प्रशासनिक और सैन्य भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। ये सरदार सीमाओं की सुरक्षा, किलों के प्रबंधन और राजस्व प्रशासन में प्रमुख रहे। गोंड शासकों के अधीन पंवार(पोवार) राजपूतों को कई परगनों और किलों की जिम्मेदारी सौंपी गई थी, जहाँ उन्होंने न केवल सैन्य संगठन को मजबूत किया, बल्कि कर वसूली और न्यायिक प्रशासन को भी सुव्यवस्थित रखा। मराठा सत्ता स्थापित होने के बाद भी यही व्यवस्था बनी रही। रघुजी भोंसले और अन्य मराठा सरदारों ने पंवार(पोवार) राजपूतों की क्षत्रिय परंपरा, युद्धकौशल और प्रशासनिक क्षमता को देखते हुए उन्हें प्रमुख सैन्य और प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया। विशेष रूप से नागपुर और वैनगंगा क्षेत्र में कई किलों और चौकियों पर पंवार(पोवार) सरदारों का प्रभाव बना रहा। उनकी जागीरदारी व्यवस्था न केवल सैनिक सुरक्षा का आधार बनी, बल्कि शासन व्यवस्था को भी संगठित बनाए रखने में सहायक रही।

ब्रिटिश शासन के आरंभिक दौर तक पंवार(पोवार) राजपूतों का प्रभाव किसी न किसी रूप में बना रहा, लेकिन जैसे ही ब्रिटिश नियंत्रण पूर्ण रूप से स्थापित हुआ, भारतीय राजाओं की स्वायत्तता समाप्त हो गई और पंवार(पोवार) सरदारों की भूमिका धीरे-धीरे सीमित होती चली गई। मराठा कालीन इतिहास में मुख्य रूप से राजाओं और उनके निकटस्थ मराठा सहयोगियों को अधिक महत्व दिया गया, जबकि छत्तीस कुल पंवार(पोवार) सरदारों की प्रशासनिक और सैन्य सेवाओं को अपेक्षित मान्यता नहीं

मिली। इसके विपरीत, ब्रिटिश लिखित इतिहास में शाह शासकों और मराठा प्रशासन में पंवार(पोवार) राजपूतों की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख प्रमुखता से किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि गोंड और मराठा शासनकाल में मालवा के छत्तीस कुलीन पंवार(पोवार) राजपूतों की प्रशासनिक और सैन्य शक्ति शासन की स्थिरता बनाए रखने में केंद्रीय रही, जिसे मराठा इतिहास लेखन में अपेक्षित मान्यता नहीं मिली, लेकिन ब्रिटिश अभिलेखों में उनके योगदान को स्वीकार किया गया।

2.7 पोवारों का नगरधन से नागपुर स्थानांतरण

नगरधन एक प्राचीन नगर था, जिस पर मालवा के छत्तीस कुलीन पंवार(पोवार) राजपूतों का लम्बे समय तक शासन रहा। देवगढ़ राज्य की सत्ता मजबूत होने के साथ नगरधन का प्रभाव कुछ कम हुआ, लेकिन यह एक महत्वपूर्ण सैन्य नगर के रूप में सदैव बना रहा। इसी कारण, बुलंद शाह ने अपनी संयुक्त सेना का गठन यहीं किया था। उस समय नगरधन के प्रमुख पारदी शिवराम सिंह थे, जिन्होंने नगरधन में आए सैन्यबल को आसपास व्यवस्थित रूप से बसाने का कार्य किया।

सन १७०१ के युद्ध में बुलंद शाह ने मुग़ल सरदारों पर निर्णायक विजय प्राप्त की, जिसके पश्चात् उसने अपनी राजधानी नगरधन से नागपुर स्थानांतरित कर दी। नागपुर नगर की स्थापना में पंवार(पोवार) राजपूतों का महत्वपूर्ण योगदान था, जिन्होंने न केवल सैन्य समर्थन प्रदान किया, बल्कि शासन व्यवस्था को भी संगठित करने में सहायता की। इसी कारण, नगरधन से अनेक पंवार(पोवार) परिवार नागपुर चले गए। भाटों की पोथियों में नगरधन और नागपुर में तीन से चार पीढ़ियों के बसने का उल्लेख मिलता है। उज्जैन से आए श्री दिगपालसिंह बिसेन सर्वप्रथम नगरधन पहुँचे थे। पोथियों में "७१३" शब्द लिखा है, जो संभवतः सन १७१३ का संकेत करता है, जब उनका संपूर्ण परिवार नगरधन आया। उनके पुत्र श्री सिरीराज और लक्ष्मणदेव बिसेन के नागपुर में बसने का उल्लेख भी पोथी में दिया गया है।

मराठा काल में भी पंवार(पोवार) राजपूतों का इस क्षेत्र में आना-जाना और सैन्य भागीदारी जारी रही। इसी क्रम में मेहरानगढ़ से आए राजसिंह राठौड़ (राहंगडाले) सर्वप्रथम नगरधन आए। उनके पुत्र भूपसिंह ने एक बड़े सैन्य जत्थे का नेतृत्व किया था। इसके अतिरिक्त, मेघराज सिंह राहंगडाले, कुंजराज सिंह कटरे, अंताजी पटले, सहदेव सिंह बघेले, सुमेरसिंह पटले, तोमरसिंह टेंभरे, धीरसिंह तूरकर, ठाकुर मोतीप्रताप सिंह,

किशोरसिंह पारदी, शंकर सिंह पटले आदि अनेक राजपूत सेनानायकों ने अपनी वीरता और नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया।

इन सेनानायकों के नेतृत्व में भोंसले राजाओं ने कटक से लेकर बंगाल तक विजय प्राप्त की और नागपुर राज्य की सत्ता इन क्षेत्रों में स्थापित हुई। पंवार(पोवार) राजपूतों के इस योगदान ने नागपुर राज्य के सैन्य और राजनीतिक प्रभुत्व को सुदृढ़ किया, जिससे यह संपूर्ण क्षेत्र एक संगठित शासन व्यवस्था के अंतर्गत आया।

अध्याय ३

पंवार(पोवार) समाज की वैनगंगा क्षेत्र में स्थाई बसाहट

अध्याय ३

पंवार(पोवार) समाज की वैनगंगा क्षेत्र में स्थाई बसाहट

नगरधन-नागपुर के उपरांत, मध्य भारत में पंवार (पोवार) राजपूतों का अगला और स्थायी पड़ाव वैनगंगा क्षेत्र बना। सन १७०० से १७७५ के मध्य चले लंबे युद्धों और प्रशासनिक उथल-पुथल के पश्चात, इस क्षेत्र में पंवार (पोवार) क्षत्रियों ने एक उन्नत कृषक समुदाय के रूप में स्थायी तथा समृद्ध जीवन की शुरुआत की।

यद्यपि वैनगंगा क्षेत्र में उन्होंने समय-समय पर विभिन्न गाँवों और क्षेत्रों में निवास किया, फिर भी वे एक संगठित सामाजिक-सांस्कृतिक समुदाय के रूप में सदैव परस्पर जुड़े रहे। इस संगठितता और सांस्कृतिक एकरूपता ने उन्हें इस क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान प्रदान की। फलस्वरूप, मालवा-राजपुताना के इस प्राचीन छत्तीस कुलीन क्षत्रिय समुदाय को अब "वैनगंगा क्षेत्र के क्षत्रिय पंवार (पोवार)" के नाम से भी जाना जाने लगा।

वैनगंगा नदी का उद्गम मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के मुंडारा नामक स्थान पर एक पवित्र कुंड से होता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, भांडक (वर्तमान भंडारा) के नरेश ने माँ गंगा का आह्वान कर उन्हें इस क्षेत्र में वैनगंगा के रूप में स्थापित किया था। इसी कारण यह नदी माँ गंगा के समान ही पूजनीय मानी जाती है।

वैनगंगा नदी सिवनी जिले से निकलकर बालाघाट, गोंदिया और भंडारा जिलों से होती हुई दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है और अंततः गोदावरी नदी में मिल जाती है। ये चारों जिले कभी प्राचीन वैनगंगा जनपद का हिस्सा थे, जहाँ नगरधन-नागपुर से आगमन के पश्चात पंवार (पोवार) राजपूतों ने स्थायी रूप से निवास करना आरंभ किया।

वैनगंगा की पावन भूमि मालवा-राजपुताना से आए इन पंवार (पोवार) क्षत्रियों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। यहाँ उन्होंने न केवल स्थायित्व प्राप्त किया, बल्कि उन्नत कृषि का विकास कर इस क्षेत्र को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। इसीलिए माँ वैनगंगा को पंवार (पोवार) क्षत्रिय समुदाय द्वारा जीवनदायिनी तथा अत्यंत पूजनीय माना जाता है।

3.1 पोवारों को प्राप्त पदवियाँ और इसके अनुरूप समुदाय का स्थानांतरण

बुलंद शाह और पंवार(पोवार) राजपूतों के बीच हुए समझौते के तहत, विदर्भ की प्राचीन राजधानी नगरधन का शासन पंवार(पोवार) क्षत्रियों के अधीन बना रहा। इसके साथ ही, उन्हें उनकी योग्यता और क्षमता के आधार पर जागीरदार, किलेदार, सेनानायक, ग्राम प्रमुख और प्रशासनिक अधिकारी जैसे महत्वपूर्ण शासकीय और सैन्य पद भी प्रदान किए गए। स्थायी रूप से बसने और कृषि को विकसित करने हेतु इन्हें भूमि भी आबंटित की गई। इस प्रकार, नगरधन और उसके आसपास के क्षेत्रों में पंवार(पोवार) सरदारों की प्रशासनिक और सैन्य शक्ति सुदृढ़ होती गई।

"द गज़ेटियर ऑफ़ द सेंट्रल प्रोविंसेस ऑफ़ इंडिया-१८७०" में यह उल्लेख मिलता है कि देवगढ़ के राजा ने पोवार राजपूतों को कई एस्टेट की जमींदारी प्रदान की थी। इसी प्रकार, "महाराष्ट्र स्टेट गैज़ेटियर" के पृष्ठ क्रमांक ७३० में भी देवगढ़ नरेश के शासनकाल में पोवार सरदारों को कई जागीरें दिए जाने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न गैज़ेटियर अभिलेखों में यह भी प्रमाणित होता है कि पंवार(पोवार) राजपूतों ने कई क्षेत्रों में स्वयं जमींदारी खरीदी और इसे विकसित किया। ये सभी ऐतिहासिक प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि नगरधन-विदर्भ क्षेत्र में पोवार राजपूतों की प्रशासनिक, सैन्य और सामाजिक स्थिति अत्यंत प्रभावशाली थी।

सन १७४३ में रघुजी भोसले के नागपुर पर नियंत्रण स्थापित करने के साथ ही देवगढ़ रियासत और वैनगंगा क्षेत्र पर भी उनका आधिपत्य हो गया। हालाँकि, मराठा शासन आने के बाद भी स्थानीय सैन्य और प्रशासनिक नियंत्रण मुख्यतः पंवार किलेदारों और जागीरदारों के हाथों में ही रहा। वैनगंगा क्षेत्र में नियंत्रण बनाए रखने के लिए कई नई सैनिक छावनियों का निर्माण किया गया, जिनका नेतृत्व भी प्रमुख पंवार(पोवार) सैन्य अधिकारियों को सौंपा गया। इसी क्रम में सिवनी जिले के उमरगढ़, बैसनगढ़, प्रतापगढ़ और कन्हानगढ़ किलों पर समय-समय पर पोवार राजपूतों का अधिकार रहा। इसके अतिरिक्त, बंगाल और कटक सहित मध्य एवं पूर्वी भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर भोसले राजाओं की विजय में पंवार(पोवार) सेनानायकों के महत्वपूर्ण योगदान के कारण, उन्हें इस क्षेत्र में कई नई जागीरें और भूखंड प्राप्त हुए। भोसले शासन के उत्तरार्ध तक, पोवार परिवारों की स्थायी बसाहट वैनगंगा जिले में हो चुकी थी, जिससे इस क्षेत्र में उनका प्रभाव और अधिक सुदृढ़ हुआ।

सन १७७५ के आसपास तक अधिकांश पोवार परिवार वैनगंगा जिले के विभिन्न गाँवों में स्थायी रूप से बस गए थे। सेंट्रल डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१८७२) के अनुसार, उस समय नागपुर जिले में पोवार समाज की जनसंख्या मात्र १००० के आसपास थी, जो इस तथ्य की पुष्टि करती है कि अधिकांश पंवार(पोवार) नगरधन-नागपुर से वैनगंगा क्षेत्र की ओर स्थानांतरित हो चुके थे। कुछ पोवार सरदारों ने नए गाँवों की स्थापना भी की। सन १८६७ में जब भंडारा और मंडला जिलों के कुछ क्षेत्रों को मिलाकर बालाघाट जिला बनाया गया, तब ब्रिटिश अधिकारियों ने पोवार परिवारों को सुदूर क्षेत्रों में ज़मीनें देकर बसाया और जमींदारी प्रदान की। इन सरदारों ने इस क्षेत्र में कृषि भूमि का विस्तार किया, सिंचाई हेतु तालाबों का निर्माण करवाया और क्षेत्र की समृद्धि में योगदान दिया।

लेखक शेरिंग के अध्ययन के अनुसार, पंवार समाज के पास ३२६ गाँवों का अधिकार था। तिरखेडी, कामठा, तिरोड़ा, तुमसर, ऊगली, केवलारी, महगांव, लांजी, रामपायली, चंदनपुर, रुमाल, रोशना, कोथुरना और चिचगाँव जैसे कई प्रमुख ठिकाने/जागीरें पोवार सरदारों को प्राप्त थीं। इसी प्रकार, बुलंद बख्त से लेकर भोसले मराठाओं के शासनकाल तक नगरधन, आम्बागढ़, सानगढ़ी, प्रतापगढ़, सौंदड़, लांजी, रामपायली और पौनी सहित कई महत्वपूर्ण किलों पर भी पंवार राजपूतों का आधिपत्य बना रहा। विशेष रूप से नगरधन पर राजा भोज के कार्यकाल से ही पंवार(पोवार) राजाओं का प्रभाव और नियंत्रण स्थापित था, जो कालांतर में भी निरंतर बना रहा।

3.2. ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों से पोवार समाज का इतिहास

मध्यभारत में पंवार (पोवार) समाज के इतिहास एवं उनकी सामाजिक-राजनीतिक स्थिति के प्रमुख प्रमाण ब्रिटिश कालीन अभिलेखों में प्राप्त होते हैं। इन स्रोतों में विभिन्न सरकारी प्रतिवेदन, जिला एवं प्रांतीय गजेटियर, जनगणना रिपोर्टें, भाषाई सर्वेक्षण, ब्रिटिश अधिकारियों एवं इतिहासकारों द्वारा रचित ग्रंथ तथा अन्य शोधात्मक दस्तावेज शामिल हैं।

इन अभिलेखों में पंवार समाज की बसाहट, उनका राजनीतिक योगदान, प्रशासनिक भूमिका और सामाजिक संरचना का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उक्त स्रोतों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि पंवार (पोवार) समाज की

मध्यभारत में, विशेष रूप से वैनगंगा क्षेत्र में, एक संगठित, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध और राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली उपस्थिति रही है।

इन विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों में उपलब्ध महत्वपूर्ण अंशों का संदर्भों सहित निम्नलिखित अनुच्छेदों में विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है। इनमें पंवार समाज के इतिहास, उनके स्थानांतरण की प्रक्रियाएँ, प्रशासनिक पदों पर उनके अधिकार, सैन्य सेवाओं में योगदान, कृषि विकास एवं जमींदारी व्यवस्थाओं से संबंधित तथ्य समाहित हैं। ये समस्त विवरण समाज की मध्यभारत, विशेषकर वैनगंगा क्षेत्र में, एक संगठित, स्थायी तथा सशक्त स्थिति को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

3.2.1 रिचर्ड जेंकिन्स का प्रतिवेदन

सन १८१७ में तृतीय ब्रिटिश मराठा युद्ध में मराठाओं की पराजय के पश्चात नागपुर पर ब्रिटिश प्रभुत्व की शुरुआत हुई और इस रियासत पर उनका आंशिक नियंत्रण स्थापित हो गया। इसी समय ब्रिटिश अधिकारी रिचर्ड्स जेंकिन्स ने इस क्षेत्र का गहन अध्ययन किया और सन १८२७ में "रिपोर्ट्स ऑन द टेरिटोरीज ऑफ द राजा ऑफ नागपुर" नामक एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। यह ग्रंथ ब्रिटिश शासनकाल का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज माना जाता है, जिसमें उस समय के मध्यभारत का भूगोल, समाज, राजनीति और सांस्कृतिक जीवन का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इस भूभाग को बाद में सेंट्रल प्रोविन्सेस कहा गया।

जेंकिन्स की इस रिपोर्ट में पोवार समुदाय के आगमन, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपराओं और क्षेत्रीय योगदान का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है। यह पहला ऐसा ब्रिटिश दस्तावेज माना जाता है, जिसमें एक ब्रिटिश अधिकारी ने स्वयं इस क्षेत्र का प्रत्यक्ष अध्ययन कर पोवार समाज सहित अन्य समुदायों के इतिहास और संस्कृति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

रिचर्ड्स जेंकिन्स द्वारा प्रस्तुत "रिपोर्ट्स ऑन द टेरिटोरीज ऑफ द राजा ऑफ नागपुर" में उल्लेख है कि क्षत्रिय जातियों का नागपुर क्षेत्र में आगमन बुलंद बख्त के शासनकाल में हुआ। यह समय औरंगज़ेब के शासन का था, जब मालवा क्षेत्र से इन राजपूतों का स्थानांतरण हुआ। जेंकिन्स ने इन क्षत्रियों को स्पष्ट रूप से "पोवार" कहा है।

रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि इन पोवारों की भाषा हिंदी थी, जबकि मराठा शासक और उनके अनुयायी मराठी भाषा का प्रयोग करते थे। कालांतर

में प्रकाशित विभिन्न गज़ेटियर और जनगणना रिपोर्टों में पोवारों की भाषा को "पोवारी" अथवा "पंवारी" बोली के रूप में दर्ज किया गया है, जिसे भाषाविदों ने पूर्वी हिंदी भाषा परिवार का अंग माना है।

यह उल्लेखनीय है कि उस काल में वैनगंगा एक प्रशासनिक जिला था, जिसमें वर्तमान सिवनी, बालाघाट, गोंदिया और भंडारा जिले सम्मिलित थे। यही क्षेत्र पंवार (पोवार) समाज की स्थायी बसाहट और सांस्कृतिक उन्नति का केंद्र बना।

3.2.2 १८७२ की जनगणना रिपोर्ट

सन १८७२ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, पोवार समाज की बसाहट नगरधन से पूर्व दिशा में वैनगंगा नदी के किनारे स्थित आम्बागढ़ और चांदपुर क्षेत्रों तक फैल चुकी थी। यह भी उल्लेख मिलता है कि पंवार (पोवार) योद्धाओं ने मराठा सेनानायक श्री चिमाजी भोसले के नेतृत्व में कटक विजय अभियान में सहभागिता की थी। इस युद्ध में उनके पराक्रम और सैन्य योगदान को देखते हुए उन्हें इनामस्वरूप वैनगंगा के पश्चिमी भाग, विशेषकर लांजी और बालाघाट जिलों में विस्तृत भूमि प्रदान की गई।

सिवनी जिले में पंवार सर्वप्रथम सांगड़ी और प्रतापगढ़ क्षेत्रों में बसे। वहाँ से उनका विस्तार बालाघाट जिले के कटंगी क्षेत्र की ओर हुआ। १८७२ की जनगणना रिपोर्ट में समाज को एक उद्यमशील जाति और उन्नत कृषक समुदाय के रूप में वर्णित किया गया है। जनसंख्या आँकड़ों के अनुसार, भंडारा जिले में ४५,४०४ सिवनी जिले में ३०,३०५ और बालाघाट जिले में १३,९०६ पोवार दर्ज किए गए थे।

इससे पहले, सन १८६८ की जनगणना रिपोर्ट में भी इस तथ्य की पुष्टि हुई थी कि पोवार राजपूतों का मूल स्थान मालवा प्रांत था, जहाँ से वे नगरधन आए और फिर नागपुर होते हुए वैनगंगा क्षेत्र की ओर प्रवास कर स्थायी रूप से बस गए। ये ऐतिहासिक अभिलेख यह प्रमाणित करते हैं कि समाज ने न केवल इस क्षेत्र में स्थायी निवास स्थापित किया, बल्कि कृषि, सिंचाई और प्रशासनिक योगदान के माध्यम से इस भूभाग को समृद्ध भी बनाया।

3.2.3 द गज़ेटियर ऑफ़ द सेंट्रल प्रॉविन्सेस ऑफ़ इंडिया-१८७०

इस गैजेट के पृष्ठ क्रमांक CXXVI में यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि राजपूतों का नागपुर क्षेत्र में स्थायी बसाव सोलहवीं सदी के बाद ही हुआ। इसके

अनुसार, हिंदुओं का उत्तर से मध्य भारत में बड़े पैमाने पर स्थानांतरण औरंगजेब के समय में हुआ।

इस दस्तावेज में यह भी बताया गया है कि पोंवार और लोधी समुदाय उत्तर भारत से आए, जबकि मराठा पश्चिम से इस क्षेत्र में आकर लगभग एक ही समय में स्थायी रूप से बस गए। इसके अतिरिक्त, रिपोर्ट में यह तथ्य भी दर्ज है कि इन समुदायों ने स्वयं को स्थानीय निवासियों से अलग रखा।

भंडारा जिले में पंवार(पोवार) समाज की पहली स्थायी बसाहट बुलंद बख्त के काल में हुई थी, इसका भी इस गैजेट में उल्लेख मिलता है। इसके अलावा, देवगढ़ के राजा द्वारा पोवार राजपूतों को कई एस्टेट की जमींदारी प्रदान की गई थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पोवार समुदाय को न केवल सैन्य बल्कि प्रशासनिक और कृषि व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण भूमिका मिली थी।

3.2.4 सेंट्रल प्रॉविन्सेस सेन्सस, १८७२

सेंट्रल प्रॉविन्सेस सेन्सस, १८७२ के अनुसार, वैनगंगा क्षेत्र के पोवार मूलतः मालवा के प्रमार (Pramars) हैं, जो सर्वप्रथम नगरधन (जो कि वर्तमान नागपुर जिले के रामटेक के पास स्थित है) में आकर बसे। इस रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि पोवार समाज का मालवा से इन क्षेत्रों में आगमन, इस जनगणना के लगभग सौ वर्ष पूर्व हुआ, जिसका अर्थ यह है कि सन् १७७० के आसपास वैनगंगा क्षेत्र में पंवार स्थायी रूप से बस चुके थे। रिपोर्ट में यह महत्वपूर्ण तथ्य भी दर्ज है कि नगरधन में स्थित किले का निर्माण पोवारों के द्वारा किया गया था।

3.1.5 द गज़ेटियर ऑफ़ द सेंट्रल प्रॉविन्सेस ऑफ़ इंडिया-१८७०

इस गैजेट से भी पोवारों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। सन् १८७० में प्रकाशित "द गज़ेटियर ऑफ़ द सेंट्रल प्रॉविन्सेस ऑफ़ इंडिया" में वैनगंगा क्षेत्र में पोवार समाज की उपस्थिति और उनकी मालवा से नगरधन होते हुए इस क्षेत्र में स्थायी बसाहट का उल्लेख मिलता है।

इस गज़ेटियर में पंवार(पोवार) राजपूतों को इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण कृषक एवं जागीरदार के रूप में दर्शाया गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि इनका आगमन मराठों के साथ हुआ था और इनका मुख्य केंद्र पहले नगरधन था।

3.1.6 सेन्सस ऑफ़ इंडिया, १९०१

१९०१ की जनगणना दस्तावेज, "सेन्सस ऑफ़ इंडिया, १९०१" वोल XIII: सेंट्रल प्रॉविन्सेस रिपोर्ट, के पृष्ठ क्रमांक ६० में लिखा है कि पोवारी बोली सिवनी, भंडारा एवं बालाघाट जिलों में बोली जाती है। पोवारों का वास्तविक घर पश्चिमी राजपुताना है और उनकी बोली पर बघेली तथा मराठी का प्रभाव दिखता है। इस दस्तावेज में यह भी लिखा है कि इन क्षेत्रों में पोवारों का आगमन पश्चिमी राजपुताना से बघेली बोली बोले जाने वाले क्षेत्रों से हुआ होगा, और शायद इसी कारण पोवारी बोली पर बघेली का प्रभाव पड़ा होगा।

इस रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक १६३ में उल्लेखित है कि भंडारा जिले में बसने के बाद अनेक राजपूतों का यह संघ "पोंवार जाति" में परिवर्तित हो गया। इस रिपोर्ट से दो महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। पहला, पोवार समाज विभिन्न राजपूत कुलों का संघ है, जिसका विस्तृत उल्लेख अध्याय एक में किया गया है। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पोवारों का वास्तविक घर पश्चिमी राजपुताना है।

पश्चिमी राजपुताना में आज के राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, पंजाब सहित सिंध प्रांत के क्षेत्र आते हैं, जो प्राचीन अवन्ति राज्य का ही हिस्सा थे। प्रथम अध्याय में पोवारों के कुलों के मूल स्थानों का भी उल्लेख किया गया है, जो पश्चिमी राजपुताना और उसके आसपास के ही क्षेत्र हैं। इन्हीं के संघ को १९०१ की जनगणना प्रतिवेदन में "पोंवार जाति" कहा गया है।

3.1.7 हिन्दू ट्राइब्स एंड कास्टस (१८७९)

इस पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक ९३ में शेरिंग ने लिखा है कि पोवार, वैनगंगा घाटी में बसे थे और औरंगजेब के समय इस क्षेत्र में आए थे। मराठा काल में कटक युद्ध अभियान में भोसले शासकों को दिए सहयोग के बदले उन्हें वैनगंगा घाटी के पश्चिमी क्षेत्र मिले। बाद में उनका विस्तार तिरोड़ा, कामठा, रामपायली और लांजी की ओर हुआ।

शेरिंग के अध्ययन के समय पोवारों के पास ३२६ गांव थे। उन्होंने लिखा कि पोवार, राजपूत हैं और उस समय भंडारा में लगभग ४५,०००, सिवनी में ३०,००० और बालाघाट में १४,००० की जनसंख्या थी। बाकी जिलों में पोवारों की संख्या बहुत कम

थी। उन्होंने आगे लिखा की मालवा से पोवार सबसे पहले नगरधन आए थे और वहां से आम्बागढ़ और चांदपुर की ओर बढ़े थे।

3.3 अलग अलग रिपोर्ट्स से राजपूतों/पोवारों के आगमन संबधित तथ्य

'नागपुर एंटीक्वेरियन सोसाइटी' की रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक ९७ में उल्लेख है कि १७०० के आसपास अलग-अलग क्षेत्रों से विभिन्न समाज के लोग नागपुर आए, जिन्होंने गोंड शासकों और बाद में मराठा शासकों के शासन को स्थापित करने और उसके विस्तार में सहायक भूमिका निभाई। एशियाटिक रिसर्च रिपोर्ट में भी राजपूतों द्वारा बुलंद बख्त को दिए गए सैन्य सहयोग का उल्लेख किया गया है।

'ए कॉम्पेंडियम ऑफ द कास्ट एंड ट्राइब्स फाउंड इन इंडिया, कॉम्प फ्रॉम द (१८८१) सेन्सस रिपोर्ट्स फॉर द वेरियस प्रॉविन्सेस' में, सेंट्रल प्रॉविन्सेस में १८८१ की जनगणना के अनुसार, पोवारों की बालाघाट और भंडारा जिलों में जनसंख्या १,०६,०८९ थी। इसमें आज के सिवनी और गोंदिया जिले भी शामिल थे।

'एनुअल रिपोर्ट ऑफ द मिशनरी सोसाइटी ऑफ द मेथोडिस्ट एपिस्कोपल चर्च', वॉल्यूम १०५ (१९२३) के पृष्ठ क्रमांक ३०६ में लिखा है कि पोवार एक अच्छी जाति है और वे अधिकतर उन्नत कृषक हैं। पोवार बहुत अच्छे चावल उत्पादक हैं और उनके पास तालाब बनाने का अद्भुत कौशल है। इस रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि बालाघाट जिले में अधिकतर उपनिवेशीकरण पोवारों के द्वारा ही किया गया है।

'द नेशनल इनसाइक्लोपीडिया', वॉल्यूम II, लंदन (१८५५) के दूसरे अंक (पृष्ठ ४४५) में भंडारा जिले के विवरण में पोवारों को मेहनतकश कृषक बताया गया है।

'अन्थ्रोपोमेट्रिक मेज़रमेंट ऑफ महाराष्ट्र', १९५१ के पृष्ठ क्रमांक ३७ में सुश्री इरावती कर्वे ने लिखा है कि पोवार या परमार, सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध राजपूत वंशों में से एक हैं। इसकी एक शाखा नागपुर आकर पूर्वी महाराष्ट्र की वैनगंगा घाटी में बस गई थी।

3.4 विभिन्न जिला गज़ेटियर में पोवार(पंवार) समाज का विवरण

नगरधन और नागपुर क्षेत्र में बसने के बाद पोवारों की अगली और स्थायी बसाहट वैनगंगा क्षेत्र में हुई, जिसमें वर्तमान के भंडारा (गोंदिया सहित), सिवनी और बालाघाट जिले शामिल हैं। ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार, सन १८२४ से लेकर

भारत की स्वतंत्रता तक यह स्पष्ट रूप से मिलता है कि पोवार समाज मालवा और धारानगरी से नगरधन आया, जहां उन्होंने कुछ दशक बिताए। इसके बाद वे वैनगंगा क्षेत्र की ओर बढ़े और स्थायी रूप से बस गए।

ब्रिटिश अधिकारी आर. वी. रसेल ने अपने अध्ययन में इन्हें 'नागपुर पंवार' कहा और इनके इस क्षेत्र में बसने का उल्लेख किया है। इन जिलों के गज़ेटियर और जनगणना रिपोर्टों में भी पोवार समाज की बसाहट, उनकी सामाजिक स्थिति और उनके कृषि कार्यों की जानकारी मिलती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि नगरधन के बाद वैनगंगा क्षेत्र ही पोवारों की स्थायी भूमि बनी, जहां उन्होंने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक आधार को मजबूत किया।

3.4.1 सिवनी जिले में पोवार(पंवार) समाज का इतिहास

सिवनी जिले के सेंट्रल प्रॉविनसेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, १९०७ के पृष्ठ क्रमांक ४५ में उल्लेख है कि उस समय जिले में लगभग १७,००० पोवार निवास करते थे, जो अपनी मातृभाषा पोवारी (पूर्वी हिंदी) बोलते थे। समय के साथ इस भाषा पर मराठी का प्रभाव पड़ा, जिसका मुख्य कारण १७५० के आसपास नगरधन और वैनगंगा क्षेत्र में पोवारों का मराठी भाषियों के साथ सह-अस्तित्व था। इसी कारण, आज भी पोवारी बोली में मराठी के कुछ तत्व दिखाई देते हैं।

इस गज़ेट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि पोवार समाज पश्चिमी राजपुताना से आया था। पृष्ठ क्रमांक ५३ के अनुसार, इस क्षेत्र में बसने के बाद पोवार राजपूत महत्वपूर्ण कृषक बन गए। वैनगंगा क्षेत्र में ३६ क्षत्रिय कुलों के ये पोवार (पंवार) सबसे उन्नत कृषकों में गिने जाते थे। पृष्ठ क्रमांक ५४ में दर्ज जानकारी के अनुसार, सिवनी जिले में पोवार मुख्यतः उगली और बरघाट के चावल उत्पादक क्षेत्रों में बसे थे और धीरे-धीरे अन्य गांवों में भी फैल गए। आज भी ये क्षेत्र पोवार बहुल क्षेत्र माने जाते हैं।

यह समाज बहुत पहले से वैनगंगा क्षेत्र में बस चुका था और उसे खेती का गहरा ज्ञान था। पोवारों ने सिंचाई के लिए कई टैंक भी बनाए, जिससे उनकी कृषि व्यवस्था उन्नत हुई। इसके अतिरिक्त, गज़ेट में समाज की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि पोवार ऊँचे कद, गोरे और आकर्षक होते हैं।

पृष्ठ क्रमांक ४७ में पोवारों द्वारा बाघ देव की पूजा किए जाने का उल्लेख है। अंतिम संस्कार के समय गुड़ और पोहा खाने की परंपरा का भी उल्लेख किया गया है, जो आज भी जारी है। सामाजिक और आर्थिक स्थिति के संदर्भ में, गज़ेट में उल्लेखित है कि सिवनी जिले में कई मालगुजारियां पोवारों को मिली थीं। मोहबर्रा की मालगुजारी पोवार राजपूतों को दी गई थी, जो उगली एस्टेट के १२ गांवों के भी स्वामी थे।

गज़ेट में पोवार समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का विस्तृत वर्णन है। वर्तमान में, बरघाट, उगली और केवलारी, पोवार बहुल क्षेत्र हैं, और सिवनी जिले सहित आसपास के क्षेत्रों में भी बड़ी संख्या में पोवार समाज निवास कर रहा है। १८८१ की जनगणना में सिवनी जिले में पोवारों की जनसंख्या १५,०७१ दर्ज की गई थी, जबकि वर्तमान में जिले में अनुमानित रूप से दो लाख से अधिक पोवार समाज के लोग निवास कर रहे हैं।

3.4.2 भंडारा जिले में पोवार(पंवार) समाज का इतिहास

वैनगंगा नदी के तट पर स्थित भंडारा, विदर्भ क्षेत्र का एक प्राचीन नगर है। नगरधन पर परमार राजवंश के शासन से लेकर अठारवी सदी में आये छत्तीस कुल पोवार समुदाय की स्थाई बसाहट तक, यह प्राचीन भाण्डक देश इस समाज से ऐतिहासिक रूप से जुड़ा रहा है। कई ब्रिटिशकालीन दस्तावेजों में भंडारा जिले में पोवारों को मिली जागीरों का विशेष उल्लेख मिलता है। तिरखेड़ी, साकोली, तुमसर, वरड़, पांचगांव, आमगांव, मलपुरी, फुक्कीमेटा आदि अनेक जागीरों की जागीरदारी/जमींदारी पोवारों को दिए जाने का लिखित इतिहास मिलता है।

सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर्स, भंडारा, वॉल्यूम अ, १९०८ में उल्लेखित है कि साकोली तहसील के महागांव एस्टेट की जमींदारी पोवार राजपूत को दी गई थी। यह परिवार अपने २००० घोड़ों के साथ १७०० ईस्वी में राजा बुलंद बख्त की सहायता के लिए मालवा से नगरधन आया था। बाद में इसे तिरोड़ा और लांजी की जमींदारी भी प्रदान की गई। सन १८१५ में श्रीमान पांडु पोवार को मराठा शासन के समय मलपुरी की जमींदारी प्राप्त हुई थी। तिरखेड़ी और फुक्कीमेटा की जमींदारी भी पोवार राजपूतों को मिली थी। सन १७०० से १८१५ तक वरड़ की जागीरदारी भी पोवारों के पास ही थी।

इस गज़ेट में उल्लेखित है कि तुमसर कस्बे में पोवार प्रमुख थे और उनका काफी प्रभाव था। उस समय भंडारा जिले की कुल पोवार जनसंख्या ६३,००० थी, जो जिले की कुल जनसंख्या का दस प्रतिशत से भी अधिक थी, और वे इस जिले के लगभग ३०० गांवों में निवासरत थे। बाद में भंडारा जिले के कुछ क्षेत्र बालाघाट जिले में शामिल हो गए और गोंदिया एक पृथक जिला बन चुका है।

3.4.3 बालाघाट जिले में पोवार(पंवार) समाज का इतिहास

फिलिप फ्रेडरिक एल्दौनेय द्वारा लिखित पुस्तक 'कोलोनियल एडमिनिस्ट्रेशन एंड सोशल डेवलपमेंट्स इन मिडिल इंडिया, द सेंट्रल प्रॉविन्सेस', १८६१-१९२१ में सेंट्रल प्रॉविन्सेस में पोवारों की बसाहट और विस्तार का उल्लेख किया गया है। इसमें देवगढ़ के शासक बुलंद बख्त द्वारा मालवा और उत्तर भारत से अनेक जातियों को बुलाकर बसाने का विस्तृत विवरण दिया गया है।

पृष्ठ क्रमांक ३५ में यह उल्लेख मिलता है कि अठारहवीं सदी में ही बालाघाट और आसपास के क्षेत्रों में पोवारों की स्थायी बसाहट हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त, १८६० के बाद सेंट्रल प्रॉविन्सेस प्रशासन ने भी बालाघाट तथा वैनगंगा-सतपुड़ा की घाटियों में पोवारों को बसाया। इस क्षेत्र में उन्होंने सिंचाई के लिए तालाब बनाए और रहने के लिए उन्नत बस्तियाँ बसाईं।

पोवार समुदाय ने अपने परिश्रम से इस क्षेत्र को चावल उत्पादन का प्रमुख केंद्र बना दिया। १९०१ में, बालाघाट जिले की कुल जनसंख्या का १२ प्रतिशत से भी अधिक भाग पोवार समुदाय का था। महाराष्ट्र के गठन के बाद, भंडारा जिले के रामपायली से लेकर लांजी तक का क्षेत्र बालाघाट जिले में सम्मिलित हो गया, जो पहले से ही पोवार बहुल क्षेत्र थे। वर्तमान में, पोवारों की संख्या जिले की कुल जनसंख्या के लगभग एक चौथाई भाग के बराबर है।

इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया (१९०७) और बालाघाट डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१९०७) में भी बालाघाट जिले में पोवारों की जनसंख्या और उनकी बसाहट का विस्तृत उल्लेख मिलता है। ब्रिटिश भारत में, कृषि के साथ-साथ गांवों की शासन व्यवस्था में भी पोवारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

थॉमसन की रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक १३४-१३५ और सी.पी. गज़ेटियर (१८७०) के पृष्ठ क्रमांक २३ में उल्लेख मिलता है कि मराठा अधिकारी श्री लक्ष्मण नाइक ने

१८२० में सतपुड़ा की घाटियों में सड़कों का विकास किया और मालवा से आए पोवारों को बसाने में सहायता की। १८६७ में बालाघाट जिले का गठन हुआ था।

मराठा काल में, वैनगंगा क्षेत्र में प्रशासन, सुरक्षा और कृषि कार्यों में पोवार समाज को अत्यधिक अनुभव था। ब्रिटिश प्रशासन, पोवार समाज के कौशल और परिश्रम से भली-भांति परिचित था। इसी कारण नवनिर्मित बालाघाट जिले के स्थानीय प्रशासन में पोवार समाज को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई।

बालाघाट के तत्कालीन उपायुक्त, कर्नल ब्लूमफील्ड, ने परसवाड़ा और बैहर क्षेत्र में भी पोवारों को बसाने का प्रयास किया। ब्लूमफील्ड की 'प्रोग्रेस रिपोर्ट्स' के पृष्ठ क्रमांक ९९ में उल्लेख है कि ब्रिटिश अधिकारी कर्नल ब्लूमफील्ड ने पोवार समाज को सबसे विश्वसनीय और मेहनतकश समुदाय माना। इसी कारण उन्होंने सुदूर क्षेत्रों में नई बस्तियों के विकास हेतु पोवारों को प्रोत्साहित किया और अनेक गाँवों की जमींदारी भी प्रदान की।

2.5 बैहर-परसवाड़ा क्षेत्र में पंवार(पोवार)

सतपुड़ा की घनी वादियों में स्थित बैहर क्षेत्र, प्राकृतिक संसाधनों और अद्भुत सौंदर्य से परिपूर्ण है। ब्रिटिश सरकार ने सतपुड़ा की पहाड़ियों को चीरती हुई सड़कों का विकास किया ताकि वे इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग कर सकें। पूर्व में यह क्षेत्र गोंड राजाओं के अधीन था, बाद में मराठाओं ने इस पर नियंत्रण स्थापित किया। मराठाओं ने पंवारों को कटंगी, बालाघाट, वारासिवनी और लांजी क्षेत्रों में बसाया। मराठाओं के बाद इन क्षेत्रों पर ब्रिटिश शासन का नियंत्रण हो गया।

बालाघाट जिले के तत्कालीन उपायुक्त कर्नल ब्लूमफील्ड ने १८७० के आसपास सर्वप्रथम पंवार राजपूतों को बैहर क्षेत्र में बसने के लिए प्रेरित किया। सबसे पहले श्री लक्ष्मण पंवार परसवाड़ा क्षेत्र में बसे। इसके बाद बैहर क्षेत्र में पंवारों को कई गांवों/जागीरों की पटेली, मुक्कदमी और जमींदारी प्रदान की गई, जो मुख्य रूप से कृषि प्रधान ग्राम थे।

२५ जनवरी १९०९ को सिहारपाठ, बैहर, जिला-बालाघाट में श्री गोपाल पटेल ने पंवार समाज की बैठक बुलाई थी। इस बैठक में सिहारपाठ पहाड़ी पर समाज द्वारा अपने आराध्य प्रभु श्रीराम का मंदिर बनाने का निश्चय हुआ। छत्तीस कुल पंवारों के प्राचीन संगठन "पंवार जाति सुधारणी सभा" के सदस्य और अन्य लोगों के सहयोग

से "पंवार राम मंदिर निर्माण समिति" का गठन किया गया। इस समिति के नेतृत्व में सन १९११ में सिहारपाठ पहाड़ी, बैहर पर राम मंदिर का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। आज यह क्षत्रिय पंवारों की तीर्थस्थली के रूप में जाना जाता है।

आसपास के कई पंवारों ने बैहर को अपना मूल निवास भी बना लिया है। धीरे-धीरे बैहर-परसवाड़ा क्षेत्र में पंवारों का विस्तार होता रहा। वर्तमान में बैहर नगर के आसपास करेली, खोलवा, गुराखरी, नेवरगांव, जत्ता, शेरपार, कोहका, केवलारी, गोवारी, गोहरा, भंडेरी आदि गांवों में पंवार समाज के लोग निवास करते हैं।

बैहर से पूर्व की ओर बढ़ने पर मोहगांव, मलाजखंड से लेकर सालटेकरी तक कई पंवार बस्तियां हैं, जहां बड़ी संख्या में पंवार समाज के लोग निवास करते हैं। इनमें दूधी, बिरसा, बाहकल, सारसडोल, सुंदरवाही, टिंगीपुर, भंडेरी, बिसतवाही आदि प्रमुख हैं। बैहर से गढ़ी की तरफ पंवारों का बसाव अपेक्षाकृत कम है।

परसवाड़ा क्षेत्र सबसे अधिक कृषि प्रधान है, इसलिए परसवाड़ा से लेकर लामता और चरेगांव तक वैनगंगा नदी के पूर्वी क्षेत्रों में पंवारों का विस्तार हुआ। वैनगंगा नदी के पश्चिमी क्षेत्रों में पोवारों की स्थायी बसाहट मराठा काल में ही हो चुकी थी, जो कटंगी और बरघाट के पोवारों के विस्तार का ही हिस्सा थी।

लामता से परसवाड़ा के बीच सतपुड़ा की पर्वतमाला का भाग आता है, जिसके बाद पुनः परसवाड़ा का समतल पठार है, जो कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होने के कारण पंवार बहुल बस्तियों के विकास में सहायक बना। इनमें लिंगा, पोंडी, बघोली, चीनी, भीड़ी, भोरवाही आदि प्रमुख हैं। परसवाड़ा विकासखंड में डोरा के आसपास भी कुछ पोवारों के गांव हैं, जिनमें अमवाई, केशा, डोहरा, फंडकी आदि प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त, अरंडिया, बड़गांव, भादुकोटा, भमोड़ी, भिड़ी, भीकेवाड़ा, चनई, चंदना, दलवाड़ा, धुरवा, दिनाटोला, जगनटोला, जैतपुरी, झिरिया, कलेगांव, कतलबोडी, लत्ता, लीलमेटा, मजगांव, मानपुर, मोहगांव, पिंडकापार, सलघट, सरेखा, सिंघई, सुकड़ी, खापा, खर्रा, खुरमुण्डी, कोसमी, कुमनगांव आदि परसवाड़ा क्षेत्र के ऐसे प्रमुख गांव हैं, जहां पंवार समाज के लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं।

बालाघाट की सतपुड़ा की घाटियों को पार करने पर सर्वप्रथम उकवा क्षेत्र आता है, जहां पोवारों की बड़ी-बड़ी बस्तियां हैं। इनमें समनापुर, रूपझर, पोंडी, सोनपुरी, दलदला आदि प्रमुख गांव हैं।

बैहर तहसील में पोवारों के बसने के बाद उन्हें सर्वप्रथम स्थानीय समुदायों के साथ सामंजस्य स्थापित करना पड़ा। धीरे-धीरे, वे बैहर तहसील की छत्तीसगढ़ी-गोंडी संस्कृति के साथ घुल-मिल गए। इस क्षेत्र के पंवारों की मायबोली पोवारी में भी छत्तीसगढ़ी भाषा के कई शब्दों का मिश्रण हो गया, जिससे बैहर क्षेत्र की पोवारी बोली का स्वरूप अन्य क्षेत्रों से थोड़ा भिन्न हो गया। समय के साथ, सतपुड़ा पर्वत ने बैहर और बालाघाट क्षेत्र के पोवारों के बीच कुछ दूरियां भी बढ़ा दीं, परंतु सामाजिक एकीकरण के दौर में क्षत्रिय पंवार तीर्थस्थल सिहारपाठ, बैहर ने सभी को पुनः जोड़ने का कार्य किया।

2.6 पंवार समाज: एक उन्नत कृषक समुदाय

वैनगंगा क्षेत्र के पंवार हमेशा से मेहनती रहे हैं, और उनकी अथक मेहनत के चर्चे विदेशों तक लिखे गए हैं। नगरधन से वैनगंगा क्षेत्र में बसने के बाद पंवारों ने अपनी कठिन परिश्रम से इस क्षेत्र को धान उत्पादन में अग्रणी बना दिया। साथ ही, उन्होंने रबी की फसलों का भी उत्कृष्ट उत्पादन किया।

ब्रिटिश काल में प्रकाशित कई रिपोर्टों में मालवा और राजपुताना से आए इन योद्धाओं के विभिन्न कौशलों का वर्णन मिलता है। "सेंसस ऑफ इंडिया १९११, सेंट्रल प्रॉविंस और बेरार" में उल्लेखित है कि पोवारों ने वैनगंगा क्षेत्र में अपने कौशल से तालाबों का निर्माण कर जल संचयन की एक प्रभावी प्रणाली विकसित की थी, जिससे इस क्षेत्र को धान उत्पादन में अग्रणी स्थान प्राप्त हुआ। यहां निवास कर रहे अन्य समुदायों ने भी पोवारों के कृषि अनुभव और ज्ञान से लाभ उठाया।

अध्याय ४

पोवारी संस्कृति और रीति-रिवाज

अध्याय ४

पोवारी संस्कृति और रीति-रिवाज

किसी भी समुदाय की संस्कृति में उसके सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंड, पर्व-त्यौहार, परंपराएँ, भाषा, आचार-विचार, आहार-विहार तथा व्यवहार के विविध पक्ष समाहित होते हैं। छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज एक संगठित जातीय समुदाय के रूप में विगत अनेक शताब्दियों से विद्यमान है। दीर्घकालीन सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक निरंतरता के कारण इस समाज की एक विशिष्ट संस्कृति विकसित हुई, जिसे 'पोवारी संस्कृति' कहा जाता है।

इस पोवारी संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और पहचानकारी तत्त्व इसकी मौलिक भाषा है, जिसे 'पोवारी भाषा' के नाम से जाना जाता है। यह भाषा पंवार(पोवार) समाज के ऐतिहासिक स्थानांतरण और भौगोलिक विस्तार के साथ विभिन्न क्षेत्रीय शब्दों और भावों को आत्मसात करते हुए वर्तमान स्वरूप तक विकसित हुई है। अतः पोवारी भाषा का स्वरूप न केवल भाषाई विविधता का द्योतक है, अपितु समाज के इतिहास और सांस्कृतिक विकास की जीवंत अभिव्यक्ति भी है।

मालवा और राजपुताना से मध्यभारत की ओर हुए स्थानांतरण में पंवार(पोवार) समाज द्वारा वह राजपूत वैभव और मराठा शौर्य आत्मसात किया गया, जो पोवारी संस्कृति की भावभूमि में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। साथ ही, वैनगंगा अंचल की स्थानीय संस्कृतियों के साथ हुआ समन्वय भी इस संस्कृति में समरस रूप से परिलक्षित होता है। यही समन्वयात्मकता पोवारी संस्कृति को अद्वितीय और जीवंत बनाती है।

पोवारी भाषा राजस्थानी, मालवी, गुजराती, बुंदेलखंडी और मराठी की सप्तरंगी चुनरी ओढ़े हुए है। इसी प्रकार, पंवार (पोवार) समाज के खानपान में भी इन क्षेत्रों का समन्वय स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। उदाहरण स्वरूप, पूरन रोटी पंवार (पोवार) समाज का एक विशिष्ट पकवान है, जो मराठी संस्कृति से लिया गया एक विशेष तत्व है।

ब्रिटिश इतिहासकारों के अनुसार, पोवारों का प्राचीन पहनावा मालवा के पारंपरिक वस्त्रों के समान था, किंतु समय के साथ स्थानीय संस्कृतियों के प्रभाव और समन्वय के कारण उसमें परिवर्तन होते गए। पोवारों के नगरधन-नागपुर क्षेत्र में आगमन

से लेकर वर्ष उन्नीस सौ छप्पन तक वैनगंगा क्षेत्र (सिवनी, भंडारा, बालाघाट) एक ही प्रांत में सम्मिलित था और इसकी राजधानी नागपुर थी। इसी कारण संपूर्ण समाज इस क्षेत्र में संगठित रहकर सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से जुड़ा रहा तथा अपनी संस्कृति, भाषा और पहचान को बनाए रखा।

वर्ष उन्नीस सौ छप्पन में भाषाओं के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप पोवार बहुल बालाघाट और सिवनी जिले मध्यप्रदेश में चले गए, जबकि भंडारा जिला महाराष्ट्र में सम्मिलित हुआ। बाद में भंडारा से अलग होकर गोंदिया एक स्वतंत्र जिला बना। इस पुनर्गठन के कारण पोवार बहुल क्षेत्र दो राज्यों में विभाजित हो गया। महाराष्ट्र में मराठी भाषा-संस्कृति का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया, जबकि सिवनी और बालाघाट जिलों में हिंदी भाषा का प्रभाव अधिक होता गया। परिणामस्वरूप, पोवारी भाषा पर क्षेत्रीय हिंदी और मराठी का प्रभाव पड़ने लगा, जिससे इसकी मूल भाषा संरचना में भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगे।

आधुनिकीकरण की तीव्र गति और रोजगार की खोज में निरंतर हो रहे स्थानांतरण के कारण, समाज के अनेक वर्गों में पोवारी भाषा का प्रयोग शनैः शनैः कम होता गया है। तथापि, वैनगंगा नदी ने सिवनी, बालाघाट, गोंदिया और भंडारा इन चारों जिलों को भौगोलिक तथा सांस्कृतिक रूप से ऐसे सूत्र में बाँधे रखा है कि समाज के लिए यह सम्पूर्ण क्षेत्र एक एकीकृत सांस्कृतिक परिक्षेत्र के रूप में विकसित हो गया है।

आपसी सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों की गहनता के कारण, पोवार समाज ने अपनी मूल पोवारी संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों को आज भी सुरक्षित रखा है। सिवनी से साकोली तक, सालेकसा से सालेटेकरी तक, बिरसा से नगरवाड़ा तथा लामता तक, ऊगली-केवलारी से बरघाट और लालबर्रा तक, वारासिवनी से तिरोड़ा और किरनापुर से गोरेगांव तक, हर स्थान पर छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की पोवारी संस्कृति समरूपता के साथ विद्यमान है।

यद्यपि संसार निरंतर परिवर्तनशील है, तथापि छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज जहाँ कहीं भी गया, वहाँ भी उसने अपनी पोवारी संस्कृति, पारंपरिक आहार-विहार एवं शास्त्रीय रीति-रिवाजों को कभी विस्मृत नहीं किया। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम चाहे जितने भी आधुनिक बन जाएं, तथापि अपने मूल सांस्कृतिक मूल्यों, गौरवशाली इतिहास, जातीय पहचान और सनातन परंपराओं का पालन यथाशक्ति करते रहें।

मालवा के महान सम्राट महाराज भोज ने न केवल चारों धामों के प्राचीन मंदिरों का पुनरुद्धार कराया, अपितु विदेशी आक्रमणकारियों के प्रभाव को भी दृढ़तापूर्वक रोका। वे समाज के आदर्श नरेश माने जाते हैं, जिनका जीवन सनातनी संस्कृति के आदर्शों का प्रतीक रहा है। इसीलिए पोवार समाज को वैदिक संस्कृति का ध्वजवाहक कहा जाता है।

स्थानीय शासन व्यवस्था में सक्रिय भागीदारी के कारण, मालवा-राजपुताना क्षेत्र के पंवार योद्धाओं को विविध सभ्यताओं से संपर्क का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी संभव हुआ, किन्तु उन्होंने अपनी मूल संस्कृति को सदैव अक्षुण्ण रखा।

मराठा राजवंश और राजपूतों के समन्वय के कारण, पोवार आज महाराजा भोज के साथ-साथ छत्रपति शिवाजी महाराज का भी उतना ही सम्मान करते हैं। इन दोनों महान विभूतियों की सनातन धर्म के प्रति आस्था हमारी पोवारी विचारधारा में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

4.1 वैनगंगा क्षेत्र के पोवार(पंवार) क्षत्रियों के ऐतिहासिक नाम

वैदिक ग्रंथों में "प्रवर", "पौर" और "पुरु" जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है, जो उस काल में किसी कुल, जाति अथवा किसी विशेष क्षेत्र को दर्शाने के लिए प्रयुक्त होते थे। "पुरु" अथवा "पौरववंशी" एक प्रतिष्ठित वंश माना गया है, जिसमें महान राजा पोरस (पुरु) उत्पन्न हुए थे। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि "पुरु" या "पौरववंशी" ही आगे चलकर "पोवार" के नाम से पहचाने गए। संभवतः पौर प्रमुखों अथवा विभिन्न कुलों के संघ को ही "पोवार" या "पंवार" कहा जाने लगा।

पोवार, पंवार, पंमार जैसे शब्द प्राचीन काल से ही कुल, जाति या समुदाय के अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं, जबकि 'परमार' शब्द का प्रयोग मुख्यतः मध्यकाल में अधिक स्पष्ट रूप से मिलता है। ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि 'परमार' नाम संस्कृत ग्रंथों में विशेष रूप से समाज के लिए प्रयुक्त हुआ, किंतु इसका आधारवृत्त पोवार, पंवार या पंमार जैसे प्राचीन शब्दों में ही निहित था। इस विषय से संबंधित ऐतिहासिक प्रमाण पूर्ववर्ती अध्यायों में दिए जा चुके हैं, जहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि 'परमार' शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में किस प्रकार और किस संदर्भ में मिलता है।

प्राचीन रासो ग्रंथों तथा मुग़ल कालीन साहित्य में भी पोवार, पंवार और परमार जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन्हीं नामों के साथ पोवार समाज के लोग मध्यभारत में स्थानांतरित हुए थे। मराठा शासन, ब्रिटिश काल और स्वतंत्र भारत के विभिन्न ग्रंथों एवं शासकीय दस्तावेजों में समाज का उल्लेख पोवार/पंवार (Powar/Ponwar /Panwar) नामों से मिलता है। इसी प्रकार, समाज की मातृभाषा के लिए पोवारी (Powari/Ponwari) शब्द का प्रयोग किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शासकीय अभिलेखों में व्यक्तियों के नाम के साथ जातिनाम लिखने की परंपरा रही। उस समय कुलनाम लिखने का चलन नहीं था। भूमि संबंधी दस्तावेजों, विशेषतः 'लाल पट्टिका' (भूमि अधिकार पत्र) के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उस काल में व्यक्ति के नाम के साथ जातिनाम ही अंकित किया जाता था।

वैनगंगा क्षेत्र के समस्त जिलों में समाज के व्यक्तियों के नामों के साथ पोवार या पंवार जातिनाम का ही प्रयोग पाया गया। उदाहरणस्वरूप पोंडी, तहसील लालबर्रा निवासी श्री रामचंद्र जी बिसेन के परिवार के पूर्वजों के भूमि दस्तावेजों में भी उनके नामों के साथ पोवार अथवा पंवार जातिनाम ही अंकित मिला।

इसी प्रकार, ग्राम जयराम टोला (मांगेझरी), तहसील वारासिवनी निवासी श्री प्रवीण पारधी जी के घर में सुरक्षित सौ वर्ष से भी अधिक पुराने दस्तावेजों में भी समाज का उल्लेख पोवार और पंवार नामों से ही मिलता है। गोंदिया और बालाघाट जिलों में अनेक परिवारों के ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों के अवलोकन से भी समाज का नाम पोवार और पंवार ही प्राप्त हुआ है। स्वतंत्रता के बाद के दस्तावेजों में भी यही तथ्य दोहराया गया है।

इन्हीं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर शासन द्वारा समाज के शासकीय प्रयोजन हेतु प्रकाशित गैजट में भी समाज का उल्लेख पोवार और पंवार नामों से ही किया गया है। अतः यह स्पष्ट होता है कि पोवार और पंवार नाम प्राचीन काल से ही समाज के लिए उपयोग में आते रहे हैं, और हमारे पूर्वज भी स्वयं को इन्हीं नामों से अभिव्यक्त करते थे।

समाज की प्रथम ज्ञात संस्था का नाम "पंवार जाति सुधारिणी सभा" था, जिसमें पंवार शब्द स्पष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ। इसी प्रकार, सन १८९२ में स्व. लखाराम जी द्वारा लिखित पुस्तक का नाम "पँवार धर्मोपदेश" था। सन १९११ में बैहर के

सिहारपाठ पहाड़ी पर निर्मित राम मंदिर का नाम "पंवार राम मंदिर" रखा गया था, जो आज भी उसी नाम से विद्यमान है।

इतिहास में अनेक स्थानों पर पंवार शब्द के ऊपर लगने वाली बिंदी या चंद्रबिंदु के छूट जाने के कारण कुछ लोगों ने इसे त्रुटिपूर्वक पवार लिखना प्रारंभ किया, परंतु यह स्वरूप शासकीय दस्तावेजों में मान्य नहीं है। समाज की सभी पुरातन संस्थाओं में केवल पंवार अथवा पोवार नामों का ही प्रयोग हुआ है।

सन २००० के आसपास कुछ लोगों ने भ्रमवश समाज का नाम "पवार" (Pawar) करने का प्रयास किया था, किंतु यह नाम समाज के पुरातन दस्तावेजों, शासकीय अभिलेखों और सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप न होने के कारण समाज के अनेक जागरूक लोगों ने इसके विरोध में प्रयास किए।

सदियों से हमारा समाज "पोवार" और "पंवार" नामों से ही जाना जाता रहा है। इतिहास लेखन करने वाले भाटों ने इन्हें मालवा के परमार भी कहा है। इन्हीं ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर कुछ वादों में न्यायालयों ने भी वैनगंगा क्षेत्र के पोवार समाज के इतिहास का उल्लेख किया है, जिससे समाज के प्राचीन नामों की पुष्टि होती है।

ऐसा ही एक वाद नाथूलाल सालिकराम बनाम रंगोबा नरबद में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने दिनांक २६ नवम्बर १९५१ को समाज के इतिहास पर विस्तार से चर्चा की थी। इस वाद में न्यायालय ने वैनगंगा क्षेत्र के पंवारों को क्षत्रिय माना और पोवार तथा पंवार शब्दों का प्रयोग किया।

इस निर्णय में शेरिंग द्वारा रचित पुस्तक "हिंदू ट्राइब्स एंड कास्ट्स" में उल्लिखित तथ्य को स्वीकार किया गया कि पोवार, औरंगज़ेब के समय मालवा से आकर वैनगंगा जिले के तिरोड़ा, कामठा, लांजी और रामपायली परगनों में बसे थे। आगे यह भी उल्लेख किया गया कि पोवार, राजपूत प्रजाति के हैं, जो मूलतः बालाघाट, भंडारा और सिवनी जिलों में बसे थे तथा अन्य जिलों में उनकी संख्या बहुत कम है। इस आदेश में यह तथ्य भी स्वीकार किया गया कि पोवार सर्वप्रथम मालवा से नगरधन (रामटेक के समीप) आए थे, और वहाँ से आम्बागढ़ तथा चांदपुर की ओर आगे बढ़े।

रसेल द्वारा उल्लिखित तथ्य, कि "पंवार" अथवा "परमार" एक प्राचीन और प्रसिद्ध राजपूत वंश है, को भी न्यायालय ने मान्यता दी। इस प्रकार, न्यायालय ने स्पष्ट

किया कि बालाघाट जिले के पोवार, क्षत्रिय हैं और इनके लिए पंवार तथा पोवार नामों का ही उपयोग किया गया है।

4.2 क्या पोवार(पंवार) समाज राजपूत है?

सभी ऐतिहासिक संदर्भों में समाज को मालवा के पंवार/पोवार/परमार राजपूत ही लिखा गया है। ब्रिटिश कालीन गैजेट्स और जनगणना के दस्तावेजों में कई जगह राजपूत और पंवार समाज को एक साथ रखा गया है, जबकि कुछ स्थानों पर इन्हें अलग-अलग दर्शाया गया है। १८९१ की जनगणना में इसका एक स्पष्टीकरण भी मिलता है कि इससे पूर्व की जनगणनाओं में पोवारों को राजपूतों से अलग रखना एक त्रुटि थी, जिसे इस वर्ष सुधार लिया गया था।

सभी इतिहासकारों ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि पोवारों का राजपूत होना आज भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनका गोरा रंग, ऊँचा माथा और गहरी नीली आँखें हैं। पोवार मेहनती होते हैं और शारीरिक रूप से हष्ट-पुष्ट तथा बलशाली होते हैं। उन्होंने अपनी मेहनत से वैनगंगा क्षेत्र को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया है।

एथनोलॉजिकल रिपोर्ट, नागपुर (१८६८) के पृष्ठ क्रमांक २ में पोवारों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि पोवार, धारानगर के राजपूतों के ही वंशज हैं। इस रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक ५० में पोवारों के बारे में लिखा गया है कि वे राजपूत हैं और जनेऊ धारण करते हैं। पुरातन क्षत्रिय, छत्तीस कुल के माने गए थे, और यह राजपूत जत्था उसी का प्रतिनिधित्व करता है जो मालवा से ही पंवार या पोवार कहे जाते रहे हैं।

रसेल ने अपनी किताब और प्रतिवेदनों में पोवारों को मालवा के परमार राजपूतों की एक शाखा लिखा है, जबकि कुछ अन्य लेखकों ने इन्हें अलग-अलग कुलों के राजपूतों का संघ माना है, जो मध्यभारत में आकर एक जाति में परिवर्तित हो गया। छत्तीस कुल पंवार समाज की उत्पत्ति पर प्रथम अध्याय में विस्तृत चर्चा की गई है, जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि पोवार समाज, प्राचीन क्षत्रिय कुलों का एक संघ है। इनके सभी कुल, मूल या अपभ्रंशित अथवा परिवर्तित नामों के साथ, राजपूत जाति के कुल भी हैं। इसलिए पोवार (पंवार) जाति को परमार राजपूत कुल या वंश की केवल एक शाखा न मानकर सम्पूर्ण राजपूत समाज का एक लघु प्रतिरूप मानना अधिक उपयुक्त है।

सभी इतिहासकार पोवारों को राजपूत ही मानते हैं, लेकिन यह भी उल्लेखित करते हैं कि उन्होंने कई राजपूत रीति-रिवाजों को त्याग दिया है। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखित करना आवश्यक है कि पोवार अपने क्षेत्र में साथ-साथ आकर बसने वाले कुलों में ही विवाह करते हैं और इसके अतिरिक्त अन्य राजपूतों से वैवाहिक संबंध नहीं रखते।

इसका मुख्य कारण यह है कि छत्तीस कुल पंवार समाज, इधर आने के पूर्व से ही लम्बे समय तक एक समुदाय के रूप में साथ-साथ रहता आया है। नए क्षेत्र में आने के बाद, उन्होंने अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को बनाए रखने के लिए, साथ-साथ आए कुलों के बीच ही संबंध बनाए रखे। कई दस्तावेजों में भी इसका उल्लेख है कि पोवारों ने अन्य समाजों से सांस्कृतिक दूरियाँ बनाए रखीं। यही कारण है कि इनका छत्तीस कुलीन प्राचीन अस्तित्व आज भी बरकरार है।

4.3 पोवारों के कुल और गोत्र

पोवार समाज के कुल और गोत्र की उत्पत्ति की सैद्धांतिक व्याख्या प्रथम अध्याय में की गई है। पोवार समाज को छत्तीस कुलों का संघ माना गया है। ये सभी कुल प्राचीन काल से ही अस्तित्व में हैं। हर कुल की अपनी कुलदेवी, प्रवर, गोत्र आदि थे, जिनके सिंधु-सरस्वती से लेकर नर्मदा के क्षेत्र तक अलग-अलग क्षेत्रों या राज्यों पर शासन रहा था। विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों के सन्दर्भ में प्राचीन अवन्ति राज्य को ही छत्तीस कुल पंवार संघ की उत्पत्ति का मूल स्थान माना जाना चाहिए। पहले उज्जैन, फिर धार और अंत में नगरधन-नागपुर इनके एक साथ होने तथा संगठित अभियान के केंद्र रहे थे। वैनगंगा क्षेत्र इनकी लम्बी यात्रा का एक स्थायी पड़ाव कहा जा सकता है, जहाँ इन्होंने बहुत सा समय साथ बिताया है। इसी संघ को पोवार या पंवार माना जा सकता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार, मालवा और बुंदेलखंड से नगरधन आई राजपूत (पोवार) सेना में लगभग पाँच हजार सैन्यबल शामिल थे। ये सभी अपने परिवारों के साथ इस क्षेत्र में आ गए थे। उस समय समाज की अनुमानित जनसंख्या लगभग तीस हजार रही होगी। इस जत्थे में बिसेन, रहाँगडाले, पटले, ठाकुर जैसे कुल बहुतायत में थे, जबकि भोयेर, पुंड, जैतवार, रिनायत, भैरम, कोल्हे आदि कुल के लोग बहुत कम संख्या में थे।

4.3.1 "पँवार धर्मोपदेश" (१८९२) किताब में छतीस कुल का उल्लेख

स्व. श्री लखाराम पंवार तुरकर जी, राजस्व निरीक्षक, ग्राम दौंदीवाड़ा, ज़िला सिवनी द्वारा आज से लगभग १३० वर्ष पहले पंवार समाज पर "पंवार धर्मोपदेश" नामक पुस्तक लिखी गई थी। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १८९२ में हुआ था। इस पुस्तक में पोवार (पंवार) समाज के विषय में बहुत सी ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। इसमें एक दोहा भी लिखा गया है, जिससे पोवारों के छत्तीस कुलों के नामों का उल्लेख मिलता है। इसमें उन्होंने हर कुल को एक "धाम" की तरह मानते हुए समाज से आग्रह किया है कि —

"निज जातिन की कुरी सबे निकसी छतिसि धाम,
जो इनसे ज्यादा कहे, सो लिखे अपनो नाम।"

"पंवार धर्मोपदेश" में लिखा सम्पूर्ण दोहा निम्नलिखित है-

***गौतम**, **रावत**, **पारधी**, **बीसन** है धनवान।*
***ठाकुर**, **पटल्या**, **चौधरी**, **राणा**, **डाला**, **चौहान**।।*
***पुन्ड**, **बघेला**, **बोपच्या**, **कटरा** सेंड्या जान।*
***रनमत**, **हनवत**, **टेम्भरया**, **क्षीरसागर** पहचान।।*
***अम्बुलिया**, **कोल्ह्या**, **साहरया**, **परहार**।*
***भैरों**, **भोयर**, **भगत**, **तुरूश**, **येडा**, **जैयतवार**।।*
***रंजाहड**, **रंदीवा** कहूं, **फरीदाले**, **रिन्हायत** मान।*
***राहंगडाला**, **सरनागत**, **सोनवान्या** शान।।*
***हरिनखेडिया** जान लो, **छतीस कुरी** बखान।*
लखाराम ऐसी कहें, राखो इनसे ध्यान।।
*निज जातिन की कुरी सबे निकसी **छतिसि धाम।***
जो इनसे ज्यादा कहे, सो लिखे अपनो नाम।।

इस दोहे में कुलों को उनकी मातृभाषा, पोवारी भाषा-शैली में लिखा गया है। वर्तमान में कुलनामों के लिखने में कुछ बदलाव देखने को मिलते हैं, लेकिन आज भी यह सर्वमान्य तथ्य है कि पंवार (पोवार) समाज, छत्तीस कुल समाज के रूप में अपने अस्तित्व को बनाए हुए है, जिसका उल्लेख आज से एक सौ तीस वर्ष पहले की इस पुस्तक में किया गया था।

4.3.2 एथनोलॉजिकल रिपोर्ट नागपुर, १८६८

एथनोलॉजिकल रिपोर्ट, नागपुर, १८६८ में पोवारों की तीस शाखाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें दिए गए मूल नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:

Putuleea, 2. Rayhigdala, 3. Chowdree, 4. Pudhar, 5. Termurreea, 6. Pardhee, 7. Gotum, 8. Chohan, 9. Hurniukurria, 10. Thakoor, 11. Bhugut, 12. Cheersagur, 13. Aida, 14. Pond, 15. Rana, 16. Katra, 17. Saindhia, 18. Baisun, 19. Toork, 20. Surnagut, 21. Sonwaneea, 22. Saihur, 23. Bhugla, 24. Koleea, 25. Bobecheea, 26. Rawut, 27. Bhurum, 28. Sutteebugut, 29. Bhorbugut, 30. Jytwar.

इन नामों की पंवार धर्मोपदेश में दिए गए छत्तीस कुलों से तुलना करें, तो कई नामों में अंतर दिखाई देता है। पोथियों में भी पोवारों के केवल ३० कुलों की वंशावलियाँ ही प्राप्त हुई हैं। हाल ही के दिनों में एक तथ्य पढ़ने में आया कि परसवाड़ा क्षेत्र में डोरा गाँव के आसपास कुछ डाला कुल के पोवार परिवार भी हैं। इन्हें मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैनगंगा क्षेत्र में पंवारों के छत्तीस में से इकतीस कुलों की स्थाई रूप से बसाहट हुई थी।

4.3.3 कुल(कुर): पोवारों में विवाह का आधार

पोवार समाज में विवाह का आधार उनके कुल होते हैं। समान कुलों में विवाह वर्जित होता है। वर्तमान में वैनगंगा क्षेत्र में बसे कुलों में ही विवाह हो रहे हैं। पोवारों के छत्तीस कुलों में आपस में ही विवाह होता है। पोवार(पंवार) समाज के छत्तीस कुल माने जाते हैं, हालांकि वर्तमान में वैनगंगा क्षेत्र में केवल इकतीस कुल ही पाए गए हैं, जो आपस में सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से जुड़े हुए हैं। इस आधार पर इनके विवाह पोवारों के अपने कुलों अम्बुले, कटरे, कोल्हे, गौतम, चौहान, चौधरी, जैतवार, ठाकुर/ठाकरे, टेम्भरे, तुरकर/तुरुक, पटले, परिहार, पारधी, पुण्ड/पुंडे, बघेले/बघेल, बिसेन, बोपचे, भगत, भैरम, एडे, भोयेर, राणा, राहांगडाले, रिणायत, शरणागत, सहारे, सोनवाने, हनवत/हनवते, हरिनखेड़े, डाला और क्षीरसागर में ही होते हैं।

अनेक ब्रिटिश रिपोर्ट्स में यह तथ्य मिलता है कि पोंवार राजपूत, पश्चिमी राजपुताना से आकर इस क्षेत्र में बस गए और कुछ सैनिकों ने स्थानीय लोगों से वैवाहिक

संबंध भी स्थापित किए, जबकि उन्हीं की अनेक रिपोर्ट्स में लिखा गया है कि पोवार राजपूतों के ३६ कुल थे और वे केवल आपस में ही विवाह करते थे। इसलिए पोवारों द्वारा अन्य समाजों से वैवाहिक संबंध होने की बात निराधार सिद्ध होती है। आर. वी. रसेल द्वारा लिखित किताब, "द ट्राइब्स एंड कास्टस ऑफ द सेंट्रल प्रॉविन्सेस ऑफ इंडिया", वॉल्यूम ४ के पृष्ठ क्रमांक ३४० में पोवारों के ३६ कुल होने का उल्लेख किया गया है। उन्होंने यह तथ्य लिखा कि पंवार अपने ही कुलों में विवाह करते हैं और उनकी कोई अन्य उपजाति भी नहीं है। हमारे पुरखे भी स्वयं को ३६ कुर के पंवार कहते हैं।

4.3.4 पोवारों के कुलनाम और उनमें परिवर्तन

समय के साथ पोवारों के कुलनामों में परिवर्तन होते रहे हैं। कुलनामों में परिवर्तन के कई कारक हैं। इसमें मुख्य कारण क्षेत्रवार विस्थापन, अलग-अलग भाषाओं के अनुरूप उच्चारण और फिर लेखन में भिन्नता, मनपसंद नामों की चाहत, स्थानीय कुलनामों का प्रभाव आदि हैं। ब्रिटिशकालीन दस्तावेजों में भी नामों को अलग तरीकों से लिखा गया था, जिसे बाद में समाजजनों ने ही सही मान लिया। पहले सभी पंवार, अपनी ही सामुदायिक भाषा, पोवारी बोलते थे जिसके बोलने का अपना एक तरीका था। इसमें कुलों के उच्चारण की एक अलग शैली थी। जबकि हिंदी और मराठी भाषा में उच्चारण का तरीका अलग था। जैसे पटले कुल को पोवारी में पटल्या, कटरे को कटरया, बोपचे को बोपचया कहते थे। ब्रिटिश लोगों को जनगणना के समय शायद उच्चारण में समझ के कारण उन्होंने एक अलग ही शैली में पोवारों के कुलों को लिखा था। इन सब कारणों से कुलों के नामों में अन्तर मिलते हैं।

पोथी में एक कुल "फ़रीदाले (दहिया)" है, जिसे "फरीद" लिखने की गलती की गई। इसी प्रकार, क्षत्रिय "रणमत" को "रहमत" लिखा गया होगा। "तुरकर" को पोथी में हस्तिनापुर के "तंवर" बताया गया है, जबकि कई जगह उन्हें "तुर्क" लिखकर मुस्लिम से हिन्दू बनना जैसा गलत तथ्य प्रस्तुत किया गया। हालाँकि यह भी सच्चाई यह है कि "तुर्क" भी पहले अग्निपूजक सनातनी ही थे और इस्लाम के उदय के बाद ही मुस्लिम बने। जबकि "तुरकर पंवार" का पुरातन मूल कुल "तंवर" या "तूर" ही है, जो हमेशा से सनातनी क्षत्रिय ही रहे हैं।

पोथियों में येड़े कुल का मूल नाम हाड़ा क्षत्रिय बताया गया है, जो बूंदी के राजा थे। इनके वंशज सन १७०० के आसपास उज्जैन के सूबेदार मुकुंदसिंह हाड़ा थे,

जो औरंगज़ेब की सेना से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। इनके वंशज भी नगरधन आए सैन्य जत्थे में शामिल थे, और यही पोवारों के येड़ा या येड़े कुल हैं।

पोवारों में कई कुल ऐसे भी हैं, जो मुख्य कुल की शाखा से पृथक होकर अलग कुल बन गए। हाड़ा और सोनगरा, चौहान क्षत्रियों की शाखाएँ हैं, जबकि ये चौहान के साथ क्रमशः येड़े और सोनवाने नाम से पोवारों में पृथक-पृथक कुल के रूप में शामिल हैं।

कुछ राजपूतों की उपाधियाँ कालांतर में कुलों के रूप में विकसित हो गईं और क्षेत्र बदलने के साथ, सैकड़ों वर्षों के अंतराल के बाद ये अलग-अलग कुल बन गईं। जैसे राणा, पट्टधारी (पटले), चौधरी और ठाकुर ये राजपूतों की उपाधियाँ थीं, लेकिन ये कालांतर में पृथक-पृथक कुलों के रूप में अस्तित्व में आकर छत्तीस कुल पंवार(पोवार) संघ का हिस्सा बनीं।

बहुत से राजपूत खुद को रघुवंशियों के वंशज मानते हैं। बिसेन कुल को लक्ष्मण के वंशज, पारद (पारधी) कुल रघुवंशीय राजा दिलीप के वंशज, परमार विक्रमादित्य श्रीराम के वंशज, राजा भारत के पुत्र तक्ष के वंशज तक्षक हुए। राजा लव से राघव वंश का उदय हुआ, जिनमें बड़गूजर, जायस और सिकरवारों की शाखाएं बनीं। इनकी दूसरी शाखा सिसोदिया राजपूत वंश की, जिससे बैसला और गहलोत वंश के उदय का उल्लेख मिलता है। ऐसे ही समय के साथ कुलों से उनके वंशजों के नाम पर शाखाएं बनीं, फिर लंबे अंतराल और क्षेत्र बदल जाने से पृथक-पृथक कुल बन गए।

स्व. बाबूलाल जी भाट की पोथियों से कुछ पोवार कुलों के प्राचीन नाम भी मिलते हैं, जिनका प्राचीन छत्तीस कुलीन क्षत्रिय में उल्लेख मिलता है। जैसे, उन्होंने राहंगडाले कुल को राठौड़, शरणागत कुल को सोडा, राजहंस कुल को राजपाल, फ़रीदाले कुल को दाहिया, तुरकर कुल को तंवर, हरिनखेड़े कुल को हुन, बिसेन कुल को कोहपाल, जैतवार कुल को जेठवा, और हाड़ा को येड़े बताया है।

राणावत से रिनायत, पुंडीर/पुण्ट पंवार से पुण्ड, काठी/कटारिया से कटरे, हन से हनवत, हरिया (हरिर) पंवार/हुन से हरिनखेड़े, आबूवाले परमार से अम्बुले, डाल (डालिया) से डाला, खीर पंवार शाखा से खीरसागर (क्षीरसागर), बोरड पंवार से बोचया, पंवार से बोपचे, भायल (भामा) से भोयेर, टांक से ठाकुर, फिर ठाकरे, कोहिला से कोल्हे, हरिर/हुन से हरिनखेड़े, तुर (तंवर) से तुरकर, जेठवा से जैतवार, हाड़ा से येड़े, पाटला/पटलिया से पटले, सहोर (सियोर) से सहारे।

इन सभी नामों का थोड़ा-थोड़ा अलग नाम, अलग-अलग संदर्भों से मिलता है। इस प्रकार, छत्तीस कुल पोवारों में शामिल सभी कुल पुरातन क्षत्रिय कुल हैं, जो या तो प्राचीन छत्तीस कुलीन क्षत्रियों की शाखा या उपशाखा में शामिल थे, या फिर परमार वंश में शाखा के रूप में सम्मिलित किए गए थे। इन पर बहुत अधिक विस्तृत इतिहास उपलब्ध न होने के कारण, इनमें अलग-अलग लेखकों के अलग-अलग विचार देखने में आते हैं।

कुछ कुलनाम उनके भक्त होने के कारण बनने का उल्लेख पोथियों से मिला। जैसे राजा जगदेव पंवार माँ काली के भक्त थे। इनके वंशज भगत कुलनाम से पोवारों में शामिल हैं। इसी प्रकार कालभैरव के भक्त भैरम पंवार हो सकते हैं। प्राचीन इतिहास के अनुसार मुंजाजी सोढा परमार के वंशज, जिन्होंने शरणागत तीतर को बचाने के लिये शहीद हुए। शंभवतया इनके वंशजों को शरणागत पंवार कहा गया। इन्हे मूली परमार भी कहा गया हैं। इस पर एक दोहा भी हैं।

शरणागत तीतर साटे , जुड़े चभाड़ां जंग !
वीर मुंजा पकमार वर , रतन सु नंदन रंग !!
जुने शरणे राखयो जीहि , जुड़े सुमरां जंग !
लड़या हालो लगधीर सुं , राजन मुळी रंग !!

कुछ परमार कुल की सांखें भी सैकड़ों वर्षों में क्षेत्र बदलने के बाद अलग-अलग कुल के रूप में अस्तित्व में आ गई और बहिर्विवाही से अंतर्विवाही कुलों में बदल गई। जैसे सोडा परमार से शरणागत कुल के पोवार, कोहिला परमार से कोल्हे कुल के पोवार, भायल परमार से भोयेर कुल के पोवार, हरिर या हुन परमार से हरिनखेड़े कुल के पोवार, हन परमार से हनवत कुल के पोवार, आबूवाले परमार से अम्बुले (अमुले) कुल के पोवार, सहोर (सोरहिया) परमार से सहारे कुल के पोवार, डालिया/डाल पंवार से डाला कुल के पोवार छत्तीस कुल संघ में शामिल हैं।

कुछ पंवारों(पोवारों) के कुल उनके प्राचीन पूर्वजों के नाम पर स्थापित हुए हैं, जैसे तोमर सिंह राजपूत के वंशज टेम्भरे पंवार, राणा रतनसिंह के वंशज राणा कुल, तथा राजा हंस परमार के वंशज राजहंस शाखा के रूप में प्रसिद्ध हुए और समय के साथ ये छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के अंग बन गए। इसी प्रकार, राणावत (सिसोदिया) राजपूत वंश, जो बीजापुर ठिकाने से संबंधित है और जिन्हें हिन्दुआ सूरज महाराणा

प्रताप सिंह जी के चौथे पुत्र शेखा जी का वंशज माना जाता है, "राजपूताना इतिहास और रजवाड़े" में वर्णित है। यही राणावत वंश पंवार(पोवार) समाज में रिनायित/रिनायत कुल नाम से सम्मिलित होकर यह दर्शाता है कि छत्तीस कुलों में कई प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों की शाखाएँ भी समाहित हैं। कई क्षत्रिय कुल जैसे बघेल (बघेले), चौहान, परिहार, गौतम, रावत, बिसेन अपने मूल नाम के साथ ही छत्तीस कुल पोवार में शामिल हैं।

महाराष्ट्र के स्थानीय कुलों में "कर" लगाने की परंपरा रही है। इसलिए इसका प्रभाव प्राचीन कुलों पर भी पड़ा और उन्हें भी "कर" लगाकर लिखा जाने लगा, जैसे एडेकर, पारधीकर, तुरकर। वैनगंगा क्षेत्र में बसने के बाद भी कुलनामों को लिखने में बदलाव देखने में आ रहे हैं। इन बदलावों को जानना सभी पोवारों के लिए बहुत आवश्यक है, ताकि भविष्य में सामाजिक कार्यों, विशेषकर वैवाहिक संबंधों में कोई भ्रम या कठिनाई न हो।

जैसे कुछ क्षेत्रों में पटले और कटरे कुल, अपनी मराठा कालीन उपाधि देशमुख को सरनेम के रूप में लिखने लगे हैं। जबकि पटले और कटरे पोवारों के अलग-अलग कुल हैं, और देशमुख केवल एक उपाधि है, कुल नहीं। अतः पटले देशमुख और कटरे देशमुख में विवाह हो सकते हैं, क्योंकि उनका मूल कुल अलग-अलग है।

इसी प्रकार कुछ कटरे परिवार अपनी सरनेम शेंडे लिखने लगे हैं। ऐसे शेंडे पंवार और कटरे पंवार एक ही कुल माने जाएंगे, और उनके बीच वैवाहिक संबंध मान्य नहीं होंगे। चंद्रपुर जिले में कुछ पटले पंवारों द्वारा वडस्कर सरनेम लिखने की जानकारी भी प्राप्त हुई है। वर्तमान में जिन कुलों में इस प्रकार के नाम परिवर्तन देखे जा रहे हैं, वे निम्नलिखित हैं:

१. बिसेन – बिसने (भंडारा ज़िला)
२. पारधी – पारधीकर (गोंदिया / भंडारा ज़िला)
३. भगत – भक्तवर्ती (गोंदिया / भंडारा ज़िला)
४. पटले – पटेल, पाटिल (कुछ क्षेत्रों में), देशमुख (सिवनी / बालाघाट ज़िला)
५. राणा – राणे (गोंदिया ज़िला)
६. तुरकर – तुरके (कुछ लोग)
७. येड़े – येड़ेकर, येले (भंडारा ज़िला)

८. टेम्भरे – टेमरे (कई क्षेत्रों में)
९. अम्बुले – अमुले (बालाघाट ज़िला)
१०. हनवत – हनवते (गोंदिया ज़िला)
११. बघेल – बघेले (बालाघाट / गोंदिया)
१२. ठाकुर – ठाकरे (गोंदिया / बालाघाट / भंडारा)
१३. कटरे – देशमुख (गोंदिया ज़िला), शेंडे (चंद्रपुर / भंडारा में कुछ लोग)
१४. पुंड – पूंडे (गोंदिया ज़िला)

4.3.5 पोवार(पंवार) समाज में उनके कुलों का महत्व

पंवार(पोवार) समाज में कुल को 'कुर' भी कहा जाता है। यह कुर प्रणाली समाज रूपी शरीर की रक्तवाहिनियों के समान है, जो सामाजिक जीवन में संस्कृति, परंपरा और नियमों का प्रवाह करती है। कुल केवल वंश या पहचान का प्रतीक नहीं, बल्कि पंवार समाज की मूल सामाजिक संरचना का आधार है। इसका महत्व सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से अत्यंत गहरा है। लगभग १३५ वर्ष पूर्व, स्व. लखाराम जी तुरकर ने अपने ग्रंथ "पंवार धर्मोपदेश (१८९२)" में छत्तीस कुलों की महत्ता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए लिखा,

"जान लो छतीस कुरी बखान,
लखाराम ऐसी कहें, राखो इनसे ध्यान।।
निज जातिन की कुरी, सबे निकसी छतिसि धाम,
जो इनसे ज्यादा कहे, सो लिखे अपनो नाम।।"

"पंवार धर्मोपदेश (१८९२)"

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि पंवार समाज की कुल व्यवस्था समय-सिद्ध, प्रमाणित और मर्यादित है। छत्तीस कुलों से बाहर कोई अन्य कुल नहीं माना जाता, और यदि कोई अन्य कुल जोड़ता है तो वह स्वीकृत है, प्राचीन परंपरा से नहीं।

पंवार(पोवार) समाज में विवाह-संस्कार पूरी तरह इन्हीं ३६ कुलों के आधार पर निर्धारित होते हैं। समान कुल में विवाह वर्जित है, क्योंकि यह परस्पर भाई-बहन का संबंध माना जाता है। प्रत्येक कुल की पहचान, इतिहास और वंश परंपरा होती है, जो उसे विशेष बनाती है। धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में कुलों की विशेष भूमिका

होती है। छठी के दस्तूर में नवजात शिशु का पिता पाँच या सात कुर के बच्चों के साथ भोजन करता है। विशेष रूप से कटरे (कटरा) कुर का बच्चा शामिल हो, तो इसे अति शुभ माना जाता है। आखातीज पर्व पर करसा भरने की रस्म में पाँच कुर के पंवारों को आमंत्रित किया जाता है। नेग-दस्तूर और पूजा-पाठ जैसे आयोजनों में भी अपने कुल के लोगों की भागीदारी विशेष रूप से होती है। दशहरे पर, देवघर में पूजा के बाद बड़ी-मयरी में भी अपने कुल के लोग ही भोजन करते हैं।

उदाहरण के रूप में रिनायित कुर को देखा जा सकता है, जिसके अंतर्गत आने वाले सभी व्यक्ति एक ही कुल के माने जाते हैं और उनके बीच वैवाहिक संबंध वर्जित होते हैं। यह परंपरा समाज में नैतिकता, आत्मीयता और आत्म-नियंत्रण की भावना को बनाए रखती है। कुल की परंपरा केवल वैवाहिक नियमों का समूह नहीं है, बल्कि यह पंवार(पोवार) समाज की सांस्कृतिक रीढ़ है। यह व्यवस्था न केवल सामाजिक संतुलन बनाए रखती है, बल्कि पीढ़ियों से चली आ रही सनातनी पोवारी संस्कृति को भी सहेजती है। आज के आधुनिक दौर में भी यह व्यवस्था जीवंत है और समाज के भीतर आत्मीयता और अनुशासन का आधार बनी हुई है।

4.3.6 पोवार समाज के पारधी या पारदी कुल का इतिहास

पारधी, जिसे पारदी भी कहा जाता है, छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज का एक कुल है। यह नाम प्राचीन क्षत्रिय कुल पारद का अपभ्रंश है, जिसका उल्लेख महाभारत से लेकर अन्य प्राचीन ग्रंथों तक एक क्षत्रिय जाति के रूप में मिलता है। महाभारत, मनुस्मृति, बृहत्संहिता आदि में पारद जाति और पारद देश का वर्णन मिलता है। मनुस्मृति (१०.४४) में लिखा है:

"पौंड्र-काश्चौंखूद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥"

इसी प्रकार, बृहत्संहिता में पश्चिम दिशा में बसने वाली जातियों में 'पारत' और उनके देश का उल्लेख है:

"पंचनद रमठ पारत तारक्षिति श्रृंग वैश्य कनक शकाः।"

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के प्राचीन भाट स्व. बाबूलाल जी की पोथियों के अनुसार, पारधी मूलतः गुजरात से नगरधन आए थे। श्री शिवराम पारधी को

नगरधन का किला प्राप्त हुआ था। बाद में यह राज्य नागपुर के भोंसले मराठा शासन में सम्मिलित हो गया।

नगरधन (या प्राचीन नन्दिवर्धन) विदर्भ की प्राचीन राजधानी थी, जहाँ दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक मालवा के पंवार राजाओं का शासन रहा। देवगढ़ के शासकों ने अठारहवीं सदी की शुरुआत में एक समझौते के तहत मालवा-राजपुताना से आए छत्तीस कुल पंवार(पोवार) राजपूतों को नगरधन का शासन सौंपा था। ऐतिहासिक दस्तावेजों और भाट परंपरा में इन पंवारों द्वारा नगरधन में एक किले के निर्माण का भी उल्लेख मिलता है। भाट पोथियों में 'पारदी' कुल के लिए 'पारसी' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। यह या तो अपभ्रंशित हो सकता है। लेकिन इसके रधुवंशीय पारद के वंशज होना अधिक तार्किक लगता है।

त्रिभुवन दास की पुस्तक "Ancient India" में पारस के राजा दरभाविसर और उनके भाई का उल्लेख है। पारद लोगों की भाषा पल्लव मानी गई है। मत्स्य पुराण में अर्जुन को पार्थिव कहा गया है और प्रभु श्रीराम के पूर्वज राजा दिलीप को पारसिया का शासक बताया गया है। उनके वंशजों के नाम आनामित्र (या शासन), कान्हामित्र और हटभुज आदि बताए गए हैं। शान वंश के लोग स्वयं को पल्लव कहते थे। उस काल में एशियाई और भारतीय साम्राज्य एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे।

पारद या पल्लव क्षत्रियों को सूर्यवंशी माना गया है। इस्लामिक आक्रमणों के समय पारस क्षेत्र के अनेक पारसी गुजरात और आसपास के क्षेत्रों में आकर बस गए। कालांतर में वे स्थानीय लोगों से घुलमिल गए और कई समूहों में समाहित हो गए। गुजरात के वलसाड ज़िले के उदवाड़ा नगर में स्थित पारसी तीर्थस्थल इस ऐतिहासिक संबंध का प्रमाण है। समीप स्थित किला पारदी नगर का नाम भी संभवतः पारसी/पारदी समुदाय पर आधारित है।

नागपुर शहर में स्थित पारडी नामक नगर का इतिहास यह दर्शाता है कि यहाँ सबसे पहले नौ पोवार परिवार आकर बसे थे। उनके कुलनाम 'पारदी' पर ही नगर का नाम पड़ा, जो अपभ्रंशित होकर 'पारडी' कहलाने लगा। स्व. बाबूलाल जी की पोथियों में यह उल्लेख भी मिलता है कि शिवराम पारधी को नगरधन दिया गया था और उनके वंशजों ने गोंड राजाओं और बाद में मराठा शासन के अंतर्गत सैन्य जिम्मेदारियाँ निभाईं। नागपुर और नगरधन में उनका निवास ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है। इससे यह सिद्ध होता है कि पारडी नगर की स्थापना पारधी पंवारों द्वारा की गई थी।

सम्राट विक्रमादित्य स्वयं को श्रीराम का वंशज मानते थे और गुजरात आए पारधी भी इसी परंपरा के अनुसार रघुवंश से अपना संबंध जोड़ते हैं। संभवतः यही कारण रहा होगा कि गुजरात और राजपुताना में आकर ये छत्तीस कुल पंवार संघ में एक कुल के रूप में सम्मिलित हुए।१८२९ में प्रकाशित एक ऐतिहासिक पुस्तक में भी परमार और पारदी के संबंध का उल्लेख मिलता है, जिसमें तेजा सिंह पारदी और देवल सिंह पारदी का नाम परमार वंश के इतिहास में दर्ज है।

मत्स्य पुराण के अनुसार, रघुवंश के कुलगुरु वशिष्ठ का मूल स्थान भी पारस बताया गया है। मालवा के पंवारों का गोत्र 'वशिष्ठ' ही माना गया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पारद क्षत्रिय, प्राचीन सूर्यवंशी या रघुवंशीय क्षत्रिय थे, और इनके वंशज ही आज के छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज में पारधी नाम से एक कुल के रूप में सम्मिलित हैं।

4.4 युद्ध, सहयोग और स्थानांतरण के साथ पोवारी संस्कृति का विकास

पंवार(पोवार) समाज, छत्तीस कुलीन राजपूत सैन्य संघ का एक सशक्त रूप है, जो एक गौरवशाली इतिहास और परंपराओं को अपने साथ लेकर समय-समय पर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की ओर स्थानांतरित होता रहा है। मालवा पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित होने के पश्चात्, इन क्षत्रिय कुलों का अधिकांश जीवन युद्धों और संघर्षों में व्यतीत हुआ। प्रत्येक कुल का अपना एक विशिष्ट इतिहास है, जो उन्हें किसी न किसी प्राचीन शासकीय व्यवस्था से जोड़ता है। ये कुल या तो स्वयं शासक रहे, या किसी शक्तिशाली राजवंश के सहयोगी सेनापति, जागीरदार अथवा सामंत के रूप में राजकीय और सैन्य व्यवस्था में भागीदार बने।

मध्य भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मालवा में परमार राजाओं के धर्मयुद्धों से लेकर पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, छत्रसाल बुंदेला, शाह बुलंद बख्त और मराठाओं के अनेक सैन्य अभियानों तक, राजपूतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हर युग में छत्तीस कुलीन क्षत्रियों का आव्हान हुआ और इन्हीं अभियानों तथा राजकीय सहयोग की परंपरा से मालवा के पंवार राजाओं के नेतृत्व में छत्तीस कुलीन क्षत्रियों के सहयोग से छत्तीस कुलीन पंवार(पोवार) समाज का उदय हुआ। इन कुलों के नामों में समय, क्षेत्र, उपाधि और वंश परंपरा के अनुसार विविध परिवर्तन हुए, जिनका विस्तार पूर्ववर्ती अध्याय में किया गया है।

आज से लगभग ३२५ वर्ष पूर्व, जब एक बार फिर मध्य भारत के राजाओं द्वारा इस क्षत्रिय सैन्य शक्ति का आह्वान हुआ, तब छत्तीस कुलों की यह सेना पुनः एकत्र होकर इसी क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गई। यही वह क्षण था जब एक संगठित जाति के रूप में इस समाज का विकास हुआ, जिसकी सांस्कृतिक धारा, रीति-नीति और सामाजिक संरचना आज तक निरंतर प्रवाहित होती रही है।

इनकी यह राजनैतिक और सैन्य भागीदारी ही कालांतर में एक साझा संस्कृति और सामूहिक विरासत के रूप में विकसित हुई। हर कुल की पहचान केवल वंश परंपरा से नहीं, बल्कि उनके योगदान से भी बनती रही। इतिहास में बार-बार यह प्रमाणित हुआ है कि जब-जब आवश्यकता पड़ी, विभिन्न शासकों ने इन्हीं छत्तीस कुलीन क्षत्रियों का आव्हान किया, जिनकी वीरता और निष्ठा पहले से ही प्रमाणित थी।

पूर्ववर्ती अध्यायों में इस तथ्य का विस्तृत उल्लेख मिलता है। जब कोई शासक इन्हें आमंत्रित करता, तो साथ में न केवल उनका सैन्य सहयोग आता, बल्कि सांस्कृतिक परंपराएँ, रीति-रिवाज, भाषा और सामाजिक व्यवहार भी स्थानांतरित होते, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन गई। यही परंपरा आगे चलकर पंवार समाज की पहचान बनी, जो आज भी अपनी ऐतिहासिक भूमिका और सांस्कृतिक गरिमा को बनाए हुए है।

4.4.1 बुंदेलखंड में पंवार राजपूत

बुंदेलखंड क्षेत्र के महान योद्धा और स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत राजा छत्रसाल बुंदेला का विवाह छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के प्रतिष्ठित पंवार कुल में हुआ था। यह संबंध केवल पारिवारिक न होकर राजनीतिक और सैन्य दृष्टि से भी अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। इस विवाह के पश्चात राजा छत्रसाल ने एक संगठित और शक्तिशाली क्षत्रिय सेना का निर्माण किया, जिसमें बुंदेला योद्धाओं के साथ-साथ मालवा के पंवार और अन्य क्षत्रिय कुलों के योद्धा भी सम्मिलित थे। यह सेना मूलतः प्राचीन छत्तीस कुलीन क्षत्रियों की ही थी, जिसने राजा छत्रसाल को मुगलों से उनका खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इतिहास में यह भी वर्णन मिलता है कि इसी सेना ने बाद में शाह बुलंद को भी उसका राज्य पुनः दिलाया। यह घटना दर्शाती है कि उस कालखंड में छत्तीस कुल के पंवार राजपूतों की सैन्य शक्ति और संगठनात्मक एकता अत्यंत प्रभावी थी। आज भी

छत्तीस कुल में शामिल लगभग आधे कुल बुंदेलखंड में पाए जाते हैं। इसी निरंतर उपस्थिति और ऐतिहासिक सहभागिता के कारण भाषाविद मानते हैं कि छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की मातृभाषा 'पोवारी (पंवारी)' पर बुंदेली भाषा का प्रभाव पड़ा है। इस क्षेत्र में १९०१ की जनगणना में भी पंवार राजपूतों की भाषा 'पंवारी' के रूप में उल्लेखित है।

यद्यपि मध्यभारत में बोली जाने वाली पंवारों की पारंपरिक 'पोवारी (पंवारी)' भाषा और बुंदेलखंड क्षेत्र की 'बुंदेली पंवारी' में पर्याप्त अंतर पाया जाता है, फिर भी यह सामाजिक साम्यता छत्तीस कुल पंवार(पोवार) राजपूतों को आपस में जोड़ने वाली एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कड़ी के रूप में मानी जाती है।

4.4.2 बघेलखण्ड और बघेल पंवार

कुछ भाषाविद पोवारी को बघेली भाषा परिवार से भी जोड़ते हैं। बघेल या बघेले कुल, छत्तीस कुल पंवार(पोवार) संघ में भी शामिल है, इसलिए उनकी भाषा और संस्कृति का पोवारी संस्कृति में दिखाई देना स्वाभाविक है। जैसे पोवारों के दशहरा पर्व के अवसर पर देवघर में खाया जाने वाला देव भोग 'मयरी' है, जिसे रीवा के बघेल राजघराने में भी दशहरे के अवसर पर चढ़ाए जाने का उल्लेख मिलता है।

बघेलों को कुछ स्थानों पर सोलंकी राजपूतों की और कुछ स्थानों पर पंवार राजपूतों की शाखा माना गया है। लेकिन इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे प्राचीन अग्निवंशीय क्षत्रिय हैं।

4.4.3 गुजराती संस्कृति का प्रभाव

दशहरे का पर्व पोवार समाज में विशेष धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखता है। इस अवसर पर देवघर में चढ़ाया जाने वाला पारंपरिक देव भोग ‘मयरी’ न केवल एक विशिष्ट व्यंजन है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी माना जाता है। इसके साथ ही ‘घुय्या’ अर्थात कोचई तथा ‘बरमारकस’ अर्थात ब्रह्मराक्षस की बड़ी भी देवताओं को अर्पित की जाती है, जिसे पूजा के पश्चात प्रसाद रूप में सभी ग्रहण करते हैं। यह परंपरा विशेष रूप से गुजरात क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय रही है, जहाँ यह रीति आज भी सामाजिक एकता, पारिवारिक सामूहिकता और धार्मिक श्रद्धा की प्रतीक बनी हुई है।

इतिहास के अनुसार, पोवार समाज के कई प्रमुख कुल जैसे पटले, कटरे, पारधी, जैतवार आदि का मूलस्थान गुजरात के विभिन्न क्षेत्र माने जाते हैं। इन कुलों का स्थानांतरण नगरधन, विदर्भ और बुंदेलखंड की ओर एक ऐतिहासिक प्रक्रिया रही, जो तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित थी। समय के साथ यह स्थानांतरण स्थायी बसाहट में बदल गया। इसी कारण गुजरात की भाषा, भोजन, वेशभूषा और पूजा-पद्धति का प्रभाव पोवारी संस्कृति में आज भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन कुलों के स्थानांतरण से जुड़े प्रमाण भाटों की पोथियों, स्थानीय किलों के इतिहास और लोकपरंपराओं में आज भी सुरक्षित रूप से मिलते हैं, जो इस समाज की ऐतिहासिक जड़ों और सांस्कृतिक यात्रा को दर्शाते हैं।

इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संपर्क का प्रभाव पोवारी भाषा के स्वरूप में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पोवारी भाषा का ध्वनि-विन्यास, शब्द-संरचना और अनेक बोलचाल के शब्द गुजराती भाषा से गहरी समानता रखते हैं। यह भाषिक साम्य केवल शब्दों का मेल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समावेश और ऐतिहासिक संबंधों का जीवंत प्रमाण है, जो पंवार समाज की ऐतिहासिक यात्रा के साथ जुड़ा रहा है।

इस प्रकार, समाज की धार्मिक परंपराएँ, भाषा और भोजन संस्कृति, विशेषकर दशहरे के अवसर पर संपन्न होने वाले अनुष्ठान, गुजरात की ऐतिहासिक उपस्थिति और पोवारी संस्कृति पर पड़े उसके प्रभाव को प्रमाणित करते हैं। यह सांस्कृतिक समरसता छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की एकता, मूल उद्गम और ऐतिहासिक यात्रा का एक प्राचीन, सजीव और आत्मीय मानचित्र प्रस्तुत करती है।

4.4.4 महाकाली और मातामाय की पूजा

पंवार समाज की धार्मिक परंपराओं में माँ काली और माँ दुर्गा के रूपों की पूजा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन देवियों की पूजा 'मातामाय' के रूप में की जाती है, जहाँ इन्हें ग्राम-रक्षक और संकटमोचक देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। गाँव में स्थित देवस्थलों पर इनकी सामूहिक आराधना समाज की एकजुटता, सामूहिक चेतना और संरक्षण भावना का प्रतीक बनकर उभरती है।

घर-परिवारों में, विशेष रूप से देवघर में, इन शक्तिस्वरूपा देवियों की अर्चना श्रद्धा और पारिवारिक परंपरा के रूप में होती है। यह परंपरा केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि पंवार समाज के ऐतिहासिक वीरत्व, आत्मबल और शक्ति-

संस्कृति की गहराई से जुड़ी हुई है, जिसने पीढ़ियों तक समाज की सांस्कृतिक चेतना को दिशा और प्रेरणा प्रदान की है।

इतिहास में प्रसिद्ध राजा जगदेव पंवार, माँ कंकाली (काली) के परम भक्त माने गए हैं। उनकी शक्ति-भक्ति इतनी गहन थी कि उन्होंने माता के समक्ष शीशदान जैसी परंपरा को निभाया, जिससे जुड़ी वीरगाथाएँ और लोकगीत आज भी पोवार समाज की लोकवाणी में जीवंत हैं। ये गीत समाज की शौर्यपरंपरा, आत्मबल और देवी के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना को अभिव्यक्त करते हैं।

राजा जगदेव पंवार ने अपने दक्षिण भारत अभियान के दौरान मध्यभारत में अनेक देवी मंदिरों का निर्माण कराया, जो आज भी धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके वंशज 'भगत' कुल के नाम से पहचाने जाते हैं, जो आज भी शक्ति-आराधना और भक्ति परंपरा को समाज में संजीव बनाए हुए हैं।

इतिहास के दस्तावेजों में यह भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि नगरधन पर सैकड़ों वर्षों तक पंवारों का शासन रहा। इस शासनकाल में नगरधन किले में काली माता के मंदिर का निर्माण कराया गया, जो कालांतर में माँ तुलजा भवानी के रूप में विख्यात हुआ। यह मंदिर आज भी पोवार समाज की शक्ति-संस्कृति, श्रद्धा और सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक है, जहाँ आज भी भक्ति और गौरव के साथ पूजा-अर्चना होती है।

4.4.5 मध्यभारत में माँ गढ़कालिका पूजा और राजा भोज प्रतिमा स्थापना की शुरुवात

छत्तीस क्षत्रिय कुलों का यह संघ, जिसे छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के नाम से जाना जाता है, विभिन्न वंशों के क्षत्रियों से मिलकर बना है। हालांकि इन कुलों के उत्थान और विकास के अलग-अलग स्थल रहे हैं, लेकिन उज्जैन और धार जैसे अवन्ति-मालवा के सांस्कृतिक केंद्रों में एकत्रित होने के कारण इनमें एक गहरी सांस्कृतिक एकता देखी जाती है। इस एकता का मूल कारण है इन कुलों का साझा इतिहास और वह सम्मान जो वे मालवा के महान नरेशों जैसे राजा भरथरी, विक्रमादित्य, राजा भोज, राजा मुंज और राजा जगदेव को अपने आदर्श रूप में मानते हैं। इन महान नरेशों की वीरता और कर्तव्यनिष्ठा ने इन कुलों को एक दिशा दी और इनकी पूजा-

पद्धतियों में राजा-महाराजाओं के कुलदेव और कुलदेवियों की पूजा-अर्चना की परंपरा को आगे बढ़ाया।

मालवा से मध्यभारत स्थानांतरित हुए पंवार(पोवार) समाज के लोग धीरे-धीरे अपने इतिहास से पुनः परिचित हो रहे हैं। समाज के लोग अब अपने पुरखों और राजाओं को सम्मान देते हुए मध्यभारत के विभिन्न स्थानों पर राजा भोज की प्रतिमाएँ स्थापित कर रहे हैं। यह प्रक्रिया विशेष रूप से १९९० के दशक से आरंभ हुई, जब समाज में अपने मूल और मालवा की स्मृति को सहेजने का अभियान प्रारंभ हुआ।

राजा भोज केवल पंवार समाज के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारत के लिए सनातन धर्म के पुरोधा और आदर्श राजा माने जाते हैं। उन्होंने धर्म को शासन का आधार बनाकर उसे सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग बनाया। उनके शासनकाल को धर्म, विद्या, वास्तु और न्याय के स्वर्ण युग के रूप में देखा जाता है। इस कारण, न केवल पंवार समाज, बल्कि मालवा से आए अन्य समुदाय भी राजा भोज को अपना आदर्श मानते हैं और उनके मूल्यों के प्रचार-प्रसार में सक्रिय रूप से संलग्न हैं।

पंवार समाज की आराध्य देवियाँ भी इसी सांस्कृतिक मूल से जुड़ी हुई हैं। उज्जैन की माँ हरसिद्धि, धार की माँ गढ़कालिका, और भोजशाला की माता वाग्देवी सरस्वती, आज भी पूरे छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की सामूहिक आराध्य देवियाँ मानी जाती हैं। समाज के प्रत्येक सामाजिक और धार्मिक आयोजन में इन देवी शक्तियों की जय-जयकार की जाती है, जो समाज की सामूहिक श्रद्धा और एकता को प्रदर्शित करता है।

विशेष रूप से गढ़कालिका की पूजा को समाज में पुनः प्रतिष्ठा दी जा रही है। माँ गढ़कालिका का मंदिर उज्जैन में राजा भरथरी के समय का माना जाता है, जबकि धार स्थित गढ़कालिका मंदिर का निर्माण राजा भोज द्वारा कराया गया था। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, अठारहवीं सदी में जब मराठा पवारों को धार की सत्ता प्राप्त हुई, तब उन्होंने भी गढ़कालिका मंदिर की स्थापना की और पूजा परंपरा को निरंतरता प्रदान की।

उल्लेखनीय है कि ये मराठा पवार, राजस्थान के बिजोलिया के परमार कुल के वंशज माने जाते हैं। उन्होंने भी अपने पूर्वजों की परमारकालीन परंपराओं को सम्मानपूर्वक अपनाया और समाज में शक्ति पूजा, राजा भोज की स्मृति, और मालवा की सांस्कृतिक धारा को जीवित रखा।

4.4.6 पोवारों की पदवियाँ और और उपसमूहों का विकास

गोंड राजवंश से लेकर ब्रिटिश शासन तक के कालखंड में, मालवा राजपुताना से आए अनेक राजपुत्र कुलों को उनके शौर्य, क्षात्रधर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर सैन्य और प्रशासनिक पद प्रदान किए गए। इन कुलों ने न केवल क्षेत्रीय राजनीति और सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया, बल्कि वे समाज में अपनी सैन्य दक्षता और वीरता के लिए भी प्रसिद्ध हुए। इनमें प्रमुख रूप से पटेली, जागीरदारी, जमींदारी, मोकासी, मालगुज़ारी आदि की व्यवस्था को महत्वपूर्ण माना गया।

ये पद समाज के उच्च वर्गों को अपने सामरिक कौशल और प्रशासनिक क्षमता के बल पर प्राप्त होते थे, और इनका चयन उनकी जनसेवा, शौर्य, और क्षत्रिय धर्म के अनुरूप किया जाता था। इन कुलों का प्रभाव और महत्व, विशेष रूप से उनके शासनकाल के दौरान, क्षेत्रीय राजनीति और प्रशासनिक संरचनाओं में देखा जा सकता है।

विशेष रूप से जिन पंवार(पोवार) कुलों को किसी क्षेत्र में पटेली, मोकासी या जमींदारी जैसी जिम्मेदारियाँ प्रदान की गई थीं, उनके साथ उनके नातेदार और संबंधी कुल भी इन क्षेत्रों में आकर बस गए। इन कुलों के लोग समय के साथ समाज के भीतर एक विशिष्ट स्थान बना गए। इसके परिणामस्वरूप, इन्हें अन्य प्रभावों के कारण "महाजन" की संज्ञा दी जाने लगी। हालाँकि, ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो मराठा काल में "महाजन" कार्य मुख्य रूप से अन्य समाजों को सौंपा गया था, पंवार(पोवार) समाज को नहीं। इसके कारण, एक ही कुल या परिवार के सदस्य, जो मूलतः एक समान सामाजिक स्तर के थे, सामाजिक संरचना के बदलाव के कारण कृत्रिम रूप से "पटेल" और "महाजन" जैसे वर्गों में विभाजित हो गए।

इस वर्गीकरण ने समाज में एक नई सामाजिक परत बना दी, जबकि इसके मूल में पंवार(पोवार) समाज की समानता और भाईचारे का स्वरूप था। यह परिवर्तन एक सामाजिक और ऐतिहासिक परिवर्तन को दर्शाता है, जिसने पंवारों के सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप को प्रभावित किया।

इस कृत्रिम विभाजन का दीर्घकालिक प्रभाव यह हुआ कि जिन परिवारों को पटेली या जमींदारी का कार्य सौंपा गया था, उनके वंशजों को यह कार्य वंशानुगत रूप से मिलने लगा, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति अन्य स्वजातीय लोगों की तुलना में बेहतर होती चली गई। इस प्रकार, समाज में आर्थिक विषमता ने जन्म लिया और साथ

ही पटेली-महाजनी के आधार पर भेदभाव जैसी सामाजिक कुरुतियाँ पनपने लगीं। यह भेदभाव पंवार समाज की प्राचीन सामाजिक समरसता और भाईचारे के विरुद्ध था, जो समाज में एकता और सहयोग का प्रतीक था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, जब देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई, तो पटेली, जमींदारी, मोकासी जैसी व्यवस्थाओं का भी अंत हो गया। बावजूद इसके, दुर्भाग्यवश आज भी कुछ परिवार अपने पूर्वजों के प्रशासनिक पदों को विशेष उपाधि मानकर समाज में भेदभाव करने का प्रयास करते हैं, जो पूरी तरह अनुचित और ऐतिहासिक सत्य के विरुद्ध है। यह समाज की समानता और न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है।

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की मूल संरचना में ऐसा कोई आंतरिक विभाजन नहीं था। समाज के सभी कुल परंपरागत रूप से समदर्शी और परस्पर समान माने जाते रहे हैं। इस तथ्य की पुष्टि प्रसिद्ध समाजशास्त्री आर. वी. रसेल ने भी अपनी पुस्तक Tribes and Castes of the Central Provinces of India में की है। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि "नागपुर के पंवारों की छत्तीस शाखाएँ हैं, परंतु कोई उपजाति नहीं है।" यह कथन पंवार समाज की एकता, अखंडता और ऐतिहासिक समरसता का सटीक प्रमाण है।

4.5 पोवार समाज और प्राचीन बैनगंगा ज़िला तथा वैनगंगा नदी

ब्रिटिश शासनकाल में जब नागपुर राज्य को औपनिवेशिक प्रशासन में शामिल किया गया, तब उसका नाम "सेंट्रल प्रोविन्सेस" रखा गया और नागपुर को उसकी राजधानी घोषित किया गया। इसी प्रशासनिक पुनर्गठन के अंतर्गत वैनगंगा नदी के आसपास के क्षेत्रों को मिलाकर वैनगंगा जिले का निर्माण किया गया। बाद में इस वैनगंगा जिले से पृथक होकर क्रमशः भंडारा और फिर बालाघाट जिले बनाए गए। वैनगंगा जिले का एक हिस्सा सिवनी और छिंदवाड़ा जिलों से भी जुड़ा रहा, जो आगे चलकर छिंदवाड़ा से अलग होकर स्वतंत्र जिले के रूप में विकसित हुआ। कुछ वर्ष पूर्व, भंडारा जिले से गोंदिया जिला पृथक होकर एक स्वतंत्र प्रशासनिक इकाई के रूप में अस्तित्व में आया।

वैनगंगा नदी की उत्पत्ति सिवनी जिले के मुंडारा ग्राम से होती है और यह वहीं से बालाघाट जिले में प्रवेश करती है। इसके पश्चात यह नदी गोंदिया और भंडारा जिलों

से होकर मुख्यतः दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती हुई आगे जाकर गोदावरी नदी में मिल जाती है।

देवगढ़ राजाओं के काल में पंवार समाज की बसाहट नगरधन से लेकर वैनगंगा नदी के पश्चिमी तट तक हो चुकी थी। इसके बाद, जब भोसले शासकों का प्रभाव उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और बंगाल तक फैला, तब पंवार क्षत्रिय सेना ने उनके अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके योगदान के प्रतिफलस्वरूप, पंवारों को वैनगंगा नदी के दक्षिण और पूर्वी क्षेत्रों जैसे लांजी, गोंदिया, आमगांव, कटंगी, लामता आदि में भूमि और प्रशासनिक अधिकार प्रदान किए गए।

इस प्रकार, नगरधन से आरंभ होकर छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की बस्तियाँ वैनगंगा के दोनों तटों पर, विशेषकर दक्षिण दिशा की ओर प्रवाहित क्षेत्रों में फैलती गईं। यह विस्तार केवल राजनीतिक या सैन्य दृष्टि से नहीं था, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और भाषाई प्रभाव का भी परिचायक बना, जिसका प्रतिबिंब आज भी पोवारी भाषा-संस्कृति में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

4.5.1 क्षत्रिय पंवार और खेती किसानी

पंवार क्षत्रिय सदैव अपने कर्तव्यों और धर्म के प्रति समर्पित रहे हैं। क्षत्रिय धर्म केवल शासन और युद्ध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें समाज की रक्षा, सांस्कृतिक उत्तरदायित्व और प्रकृति के संरक्षण का भी विशेष स्थान रहा है। पंवार राजवंश के विघटन के पश्चात, इन क्षत्रियों ने जहाँ जहाँ शरण ली, वहाँ के राजाओं के साथ रक्षा भागीदारी निभाई, और साथ ही कृषि को भी जीवन का आधार बनाया।

विशेष रूप से पोवारों ने अपने शस्त्रों को देवघर में स्थापित कर खेतों की ओर रुख किया और कृषि कार्य में अद्वितीय दक्षता प्राप्त की। जब नगरधन और नागपुर क्षेत्र के पंवार योद्धाओं को वैनगंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र प्रदान किए गए, तब उन्होंने इस भूमि को अपनी मेहनत से समृद्ध बना दिया। उनकी कुशल कृषि परंपरा के कारण यह क्षेत्र कालांतर में धान का कटोरा कहलाने लगा।

आज भी पोवार समाज द्वारा उत्पादित धान की अनेक श्रेष्ठ किस्में, जैसे चिन्नोर, जिराशंकर और लुचई, देश विदेश में अपनी सुगंध और गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं।

रबी फसलों में भी पंवार कृषकों ने उन्नत तकनीकों और पारंपरिक ज्ञान का संतुलित प्रयोग कर उत्कृष्ट उत्पादन प्राप्त किया है। हालाँकि भूमि की जोत कम होने, खेतिहर मजदूरों की घटती संख्या और मौसमीय अस्थिरताओं जैसे कारणों से पारंपरिक खेती में चुनौतियाँ अवश्य आई हैं, फिर भी समाज के कृषकों ने कभी हार नहीं मानी। उन्होंने आधुनिक कृषि यंत्रों को अपनाकर गहानी जैसी कठिन प्रक्रियाओं को भी सरल और सुलभ बना दिया है।

आज का पंवार पोवार किसान अपने पूर्वजों की परंपरा का निर्वाह करते हुए, धरती को मातृरूप में पूजता है और उसमें अन्न उपजाना केवल आर्थिक क्रिया नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और धार्मिक कर्तव्य मानता है। यह कृषि कार्य पोवारी संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो समाज की आत्मनिर्भरता, श्रमशीलता और प्रकृति प्रेम का जीवंत प्रतीक है।

4.6 पोवारी संस्कृति पँवारी वैभव

क्षत्रिय पंवार पोवार समाज, अपनी सनातनी पोवारी संस्कृति के साथ सभी समाजों से समरस होकर, देश की एकता और अखंडता के लिए निरंतर कार्य करता आया है। साथ ही यह समाज अपनी ऐतिहासिक पहचान, सांस्कृतिक विरासत और मूल संस्कृति के संरक्षण हेतु सतत प्रयासरत है।

वैनगंगा क्षेत्र में बसने के पश्चात इन क्षत्रियों ने कृषि को अपना मूल व्यवसाय बना लिया और गांवों में स्थायी रूप से निवास आरंभ किया। गांव की जीवनशैली में ही हमारी ऐतिहासिक सनातनी पोवारी संस्कृति जीवंत रूप में देखने को मिलती है। पोवारी संस्कृति के छोटे-छोटे रीति रिवाज, उत्सव और परंपराएँ समाज के प्रत्येक सदस्य के हृदय को स्पर्श करती हैं और यही कारण है कि हर पोवार, समय मिलने पर अपने मूल गांव लौटने की चाह रखता है।

छत्तीस कुल के पंवार समाज में कुर का विशेष महत्व है। "तुम्ही कोन कुरया आव रे भाऊ" जैसे वाक्य समाज में आपसी परिचय और आत्मीयता को दर्शाते हैं। हर कुर का अपना इतिहास, महत्व और सामाजिक मर्यादा है। छठी, बारसा, करसा भरना, हल्दी, अहेर, दसरे में महरी-बड़ी का दस्तूर, देव उतारने से लेकर विवाह जैसे संस्कारों तक हर परंपरा में कुरों की महत्ता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी अपने मूल स्वरूप में आगे बढ़नी चाहिए।

देवघर की चौरी प्रत्येक पोवार परिवार की श्रद्धा का केंद्र होती है, वहीं शस्त्र पूजा पंवारों के वीरत्व और आत्मगौरव की प्रतीक है। हमारे हर रीति रिवाज के पीछे वैज्ञानिक तर्क और ऐतिहासिक अनुभव छिपे हैं, जो हमारी हजारों वर्षों पुरानी परंपरा को मजबूती प्रदान करते हैं। आज समय की मांग है कि समाजजन इस विरासत को सहेजें, संजोएं और अगली पीढ़ियों को गर्व के साथ सौंपें।

पोवारी बोली और संस्कृति छत्तीस कुल पंवारों की पहचान हैं। यह केवल एक भाषा नहीं, बल्कि हमारी चेतना, भावनाओं और सामाजिक बंधन की भाषा है। पंवार समाज हमेशा एक परिवार की तरह एकजुट रहा है। सम्राट विक्रमादित्य, महाराज भोज, राजा जगदेव पंवार को समाज अपने पूर्वज और आदर्श मानता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पंवारों के रक्त संबंध मालवा के परमार पंवार वंश से जुड़े हैं।

सुदूर वैनगंगा क्षेत्र में बसने के बाद भी समाज अपने गौरवशाली इतिहास को नहीं भूला है। पुरातन पोवारी गीतों और लोककथाओं में यह इतिहास जीवंत रूप में सुनने को मिलता है। यह गर्व की बात है कि समाज की अपनी भाषा है और समाज के अनेक साहित्यकारों ने पोवारी भाषा में समृद्ध साहित्य सृजन कर इसे एक गौरवशाली स्वरूप प्रदान किया है।

हालाँकि वर्तमान में समाज में पोवारी में बोलचाल कम हो गई है, फिर भी यह आवश्यक है कि सभी पोवारजन हर संभव स्थान पर पोवारी भाषा में संवाद करें। यह भाषा हमारे पूर्वजों की अमूल्य धरोहर है, जिसे बचाना हम सभी की सामूहिक जिम्मेदारी है। समाज के सभी संगठनों को भी इस दिशा में एकजुट होकर प्रयास करना चाहिए।

छत्तीस कुल का पंवार पोवार समाज आज मुख्यतः बालाघाट, भंडारा, सिवनी और गोंदिया जिलों में केंद्रित है, किंतु शिक्षा और रोजगार के लिए बड़ी संख्या में नागपुर, रायपुर, जबलपुर, भोपाल, दुर्ग भिलाई जैसे नगरों की ओर स्थानांतरित हो चुका है।

मालवा राजपुताना से वैनगंगा क्षेत्र में आगमन के पश्चात पंवारों ने सबसे पहले अपने शस्त्रों को देवघर में रखकर कृषि को अपना मूल व्यवसाय बनाया था। आज समय के साथ भूमि जोत का आकार घटने और मजदूरों की कमी जैसी समस्याओं के चलते केवल कृषि पर निर्भर रहना कठिन हो गया है। ऐसे में यह आवश्यक है कि समाज अपने युवाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करें और मिलकर उनके उज्ज्वल भविष्य की राह बनाए।

4.7 पंवार(पोवार) समाज की सामाजिक परम्परायें और रीति-रिवाज

पोवार समाज की परंपराएँ और रीति-रिवाज अपने पारंपरिक वैभव के साथ साथ सनातनी संस्कृति के समन्वय का एक उत्कृष्ट प्रतिरूप हैं। पिछले अध्यायों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पोवारों को अपने क्षत्रिय कर्तव्यों के पालन हेतु अनेक बार स्थानांतरित होना पड़ा, जिसके कारण इनकी राजपुताना संस्कृति में विभिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक तत्व भी समाहित हो गए।

समाज में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने अपनी संस्कृति के मूल तत्वों को अत्यंत सजगता और श्रद्धा के साथ सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि इतने स्थानांतरणों के बावजूद भी समाज ने अपनी समृद्ध संस्कृति और उच्च सामाजिक मानदंडों को सुरक्षित और जीवंत बनाए रखा है। वास्तव में, पोवारी संस्कार अत्यंत सुसंस्कृत हैं और समाजजन सदैव इस भावना को चरितार्थ करते हैं कि, “पृथ्वी की शोभा पंवारों से है”।

पोवार समाज सनातन धर्म का अनुयायी है। इनके रीति रिवाजों में कुछ परंपराएँ ऐसी भी हैं जो अन्य हिंदू समाजों में देखने को नहीं मिलतीं। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में अनेक संस्कारों का विधिवत पालन किया जाता है। यद्यपि समय के साथ कुछ परंपराएँ बदली हैं, फिर भी आज के संचार क्रांति के युग में, समयाभाव के बावजूद, कई पुरातन रीति रिवाज आज भी श्रद्धापूर्वक निभाए जा रहे हैं।

पोवार समाज के सभी छत्तीस कुलों का अपना इतिहास है। जाति की एक सामुदायिक भाषा, पोवारी का होना और एक समान सांस्कृतिक धारा में बहना, यह सिद्ध करता है कि समाज का संगठित रूप प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रहा है।

हालाँकि, समाज के इतिहास का समग्र और शोधपूर्ण अध्ययन अभी पूर्ण नहीं हो पाया है, इसलिए हर कुल के विशिष्ट इतिहास को सामने लाना शेष है। समाज में कुछ रीति रिवाज ऐसे हैं जो कुल विशेष से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए बिसेन कुल के पंवारों में विवाह के दौरान वर पक्ष वधु पक्ष के घर से पीढ़ा चुराकर लाते हैं और फिर उसकी पूजा करते हैं। यह रिवाज अन्य कुलों या समाजों में नहीं पाया जाता।

ऐसी कई विशिष्ट परंपराएँ हैं जो प्रत्येक कुल की अपनी विशेष पहचान थीं परंतु आज वे धीरे-धीरे विस्मृत हो रही हैं। वहीं कुछ परंपराएँ ऐसी भी हैं जो पूरे समाज में समान रूप से निभाई जाती हैं। हर परंपरा का विकास समय और पीढ़ियों के पालन से होता है। कुछ परंपराएँ समय के साथ बनती हैं तो कुछ लुप्त हो जाती हैं, यह एक

स्वाभाविक सामाजिक प्रक्रिया है। इसलिए पोवारों की सम्पूर्ण संस्कृति को समझने के लिए प्रत्येक कुल के अपने इतिहास, रीति-रिवाज और मान्यताओं का अध्ययन आवश्यक है। तभी समाज की बाह्य और आंतरिक संरचना को समझते हुए उसकी सम्पूर्णता का समुचित आकलन किया जा सकता है।

ब्रिटिश शासनकाल के विभिन्न दस्तावेजों में समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत के प्राचीन स्वरूप का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, समाज के विचारकों एवं साहित्यकारों ने भी अनेक ग्रंथों की रचना कर समाज के सामाजिक सांस्कृतिक ताने बाने को संरक्षित और प्रकट किया है।

4.7.1 देवघर

देवघर, पोवारों का मुख्य पूजा स्थल होता है, और हमारे सभी संस्कारों की शुरुआत यहीं से होती है। प्रत्येक परिवार में देवघर में प्रतिदिन दिया जलाया जाता है। देवघर में एक चौरी होती है, जिस पर यह दिया रखा जाता है। यह मान्यता है कि चौरी पर कुल के पूर्वज निवास करते हैं और पाट (पूजा की चौकी) में देवताओं का वास होता है।

प्रत्येक गांव में प्रायः एक कुल का एक देवघर होता है, जो उस कुल के सबसे पुराने घर में स्थित होता है। किंतु परिवार के बटवारे की स्थिति में चौरी की मिट्टी को साथ लाकर विधिपूर्वक नए घर में नए देवघर की स्थापना की जाती है।

कुछ परिवारों में महादेव की चौरी भी स्थापित की जाती है और प्रतिदिन, मुख्य देवघर के साथ-साथ महादेव की चौरी में भी संध्या के समय दिया जलाया जाता है। जिन परिवारों में बच्चों के भार रखने की प्रथा है, वहाँ बाल मुंडन (प्रथम बाल काटने) का संस्कार महादेव के समीप किया जाता है। इस अवसर पर प्रथम बाल बुआ और बहनों द्वारा झेले जाते हैं। इस संस्कार में परिवार की सभी बेटियों के लिए नए वस्त्र लिए जाते हैं, जबकि बच्चे के लिए नए वस्त्र उसके मामा के घर से लाए जाते हैं।

पंवार समाज में देवघर ही मुख्य पूजाघर होता है। हरियाली अमावस्या (जिसे जीवती भी कहा जाता है) के दिन देव उतारे जाते हैं, और उन्हें अठाई, पूड़ी, सुकुड़ा और खीर का भोग अर्पित किया जाता है।

प्राचीन काल से ही समाज में मूर्तियों की पूजा कम होती रही है। देवताओं को मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि आस्था और प्रतीक रूप में पूजने की परंपरा रही है। परंतु

वर्तमान समय में, सामाजिक माध्यमों से अन्य समाजों के संपर्क और प्रभाव के कारण परंपरागत पूजा-पद्धतियों में कुछ परिवर्तन हुए हैं। अब कई पोवार परिवारों में मूर्तियों और तस्वीरों के रूप में भी अपने आराध्य देवताओं की पूजा की जाने लगी है।

4.7.2 बेटियों का पोवार समाज में महत्व

हमारे समाज में पुत्री को सदा से सर्वोच्च स्थान प्राप्त रहा है। यह परंपरा केवल सामाजिक औपचारिकता नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक सोच का मूल आधार है। बेटी का सम्मान घर के हर सदस्य के मन में होता है। विवाह के उपरांत भी उसका मायके से संबंध कभी विच्छिन्न नहीं होता। बेटी चाहे किसी भी समृद्ध परिवार में चली जाए, मायके का एक वस्त्र, एक स्मृति, उसके लिए सबसे प्रिय रहता है। हर पर्व और संस्कार में बेटी, बहन या बुआ के रूप में समाज की परंपराओं में विशेष स्थान रखती है।

विवाह समारोहों में 'काकन बांधना', 'धुर पकड़ना', 'दरवाजा पकड़ना', और 'खाजा बटाई' जैसे रीति-रिवाजों में बुआ और बेटी की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है। यह केवल एक परंपरा नहीं, बल्कि उस भाव का प्रतीक है कि बेटी जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़ पर अपने मायके के साथ जुड़ी हुई है। मृत्यु संस्कारों में भी बेटियाँ, भाइयों को कमर पर कपड़ा बाँधकर मृतक को अंतिम यात्रा के लिए तैयार करती हैं। अग्नि-संस्कार के बाद हल्दी डालकर, पैरों को धुंआ देकर पुत्रों को घर में प्रवेश कराती हैं, जिससे यह दर्शाया जाता है कि स्त्री भी इन कर्मों में सहभागी होती है।

छठी और भार के संस्कारों में भी बेटी/बुआ की भूमिका विशेष होती है। प्रथम बाल झेलने की परंपरा केवल बुआ और बहनों को सौंपी जाती है। परिवार की बेटियों के लिए नए वस्त्रों की व्यवस्था की जाती है, जबकि बच्चे के लिए वस्त्र मामा के परिवार से आते हैं। यह सब रिश्तों की गहराई और सम्मान को दर्शाते हैं।

इन परंपराओं के मूल में हमारे पूर्वजों का दूरदर्शी चिंतन रहा है। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि यदि कभी बेटी को ससुराल में किसी प्रकार की कठिनाई आए, तो मायका उसका सुरक्षित आश्रय बना रहे। यही कारण है कि हमारी परंपराएँ विवाह के बाद भी बेटी को परिवार से जोड़े रखती हैं।

आज के समय में जब कुछ लोग इन परंपराओं को मात्र रूढ़ियाँ मानकर अस्वीकार करते हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनके मूल उद्देश्य को समझें। ये रीति-रिवाज न केवल भावनात्मक संबंधों को मजबूती प्रदान करते हैं, बल्कि सामाजिक

और आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहे हैं। हजारों वर्षों से चली आ रही ये परंपराएँ हमारे पारिवारिक ढांचे की रीढ़ हैं। इन्हें केवल "ढकोसला" कहकर नकारना हमारी सांस्कृतिक विरासत को ठेस पहुँचाना होगा। आवश्यकता है कि हम इन परंपराओं को यथावत सहेजें, समझें और अगली पीढ़ी तक गर्व के साथ पहुँचाएँ।

4.7.3. नाम के साथ सिंह लगाना

पंवारों की वंशावली संबंधी पोथियों के अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि जब यह क्षत्रिय समाज नगरधन क्षेत्र में आकर बसा, तब उन्होंने अपने नामों के साथ "सिंह" उपसर्ग का प्रयोग करना जारी रखा था। यह परंपरा लगभग चार से पाँच पीढ़ियों तक निर्बाध रूप से चलती रही, जो उनके राजपुताना क्षत्रिय मूल की पहचान थी। "सिंह" उपसर्ग, विशेषतः उत्तर और पश्चिम भारत के क्षत्रिय समुदायों की एक प्रमुख पहचानों में से एक रहा है, जो शौर्य, कुलगौरव और सैन्य परंपरा का प्रतीक माना जाता था।

किन्तु १८वीं शताब्दी के मध्य आते-आते, विशेषकर सन् १७३९ में नागपुर में मराठा शासन की स्थापना के बाद, जब यह क्षेत्र भोसले मराठों के प्रभाव में आया, तो यहाँ की सांस्कृतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन होने लगे। मराठा परंपरा में "सिंह" का प्रयोग सामान्य नहीं था, और वे प्रायः अपने नामों के साथ पिता का नाम लिखते थे। इसके प्रभाव स्वरूप, वैनगंगा क्षेत्र में बसे पंवार(पोवार) क्षत्रियों ने भी धीरे-धीरे अपने नामों के साथ सिंह का प्रयोग करना कम कर दिया और मराठा शैली में नाम लिखने की परंपरा को अपनाया।

एक अन्य संभावित कारण यह भी हो सकता है कि इस क्षेत्र में गोंड समाज के लोग भी अपने नामों के साथ "सिंह" उपसर्ग का प्रयोग करते थे। संभवतः पंवारों ने अपनी पहचान को विशिष्ट बनाए रखने हेतु यह उपसर्ग छोड़ना प्रारंभ किया हो। सामाजिक अंतर बनाए रखने और अपनी अलग पहचान स्थापित करने की यह प्रवृत्ति लोक संस्कृति में आम रही है।

हालाँकि, वर्तमान समय में समाज में एक बार फिर से जागरूकता का संचार हो रहा है। पंवार(पोवार) समाज के अनेक युवक अब पुनः अपने राजपुताना मूल की पहचान को सजीव करने हेतु अपने नामों के साथ "सिंह" लगाने लगे हैं। यह न केवल ऐतिहासिक परंपराओं की पुनर्स्थापना का प्रतीक है, बल्कि यह समाज में अपने गौरवपूर्ण अतीत के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता और सम्मान का भी परिचायक है।

4.7.4 पंवारों का जनेऊ धारण करना

वैनगंगा क्षेत्र में बसे छत्तीस कुल पोवार समाज में आज भी कुछ परिवारों में यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण की परंपरा जीवित है। सनातन धर्म की मूल मान्यता यह है कि हर द्विज को उपनयन संस्कार के पश्चात जनेऊ धारण करना चाहिए। यह संस्कार न केवल धार्मिक अनुशासन का प्रतीक है, बल्कि आत्मिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर भी संकेत करता है। किंतु इसके साथ जुड़े कठोर आचार-विचार और नियमों के कारण, समय के साथ समाज के कुछ वर्गों में जनेऊ धारण की परंपरा कमजोर पड़ती गई।

कुछ स्थानों पर यह मत भी प्रचलित है कि पंवार समाज ने इस क्षेत्र में आने के बाद अपनी पहचान छुपाने हेतु यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया था। परन्तु यह धारणा ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा पुष्ट नहीं होती। ब्रिटिश काल में प्रकाशित, 'एथनोलॉजिकल रिपोर्ट, नागपुर', १८६८ में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि पोवार, धारानगर (धार) के क्षत्रिय राजपूतों के वंशज हैं और वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में बसे पंवार क्षत्रियों ने अपनी परंपराओं का त्याग नहीं किया था, बल्कि इसे यथासंभव संरक्षित रखा।

वास्तविकता यह है कि कुछ अन्य समाज, जो किसी आपदा, संघर्ष अथवा सामाजिक कारणों से मालवा या राजपूताना से विस्थापित होकर मध्य भारत में आए थे, उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार अपनी पहचान छुपाने के लिए जनेऊ जैसे संस्कारों का परित्याग किया। वहीं पोवार समाज के नगरधन क्षेत्र में स्थानांतरण का उद्देश्य भिन्न था। वे स्थानीय राजाओं के आह्वान पर सैन्य सहायता हेतु संगठित रूप में आए थे, न कि छिपकर बसने के लिए।

इतिहास में पंवार क्षत्रियों को "ब्रह्मक्षत्रिय" कहा गया है, अर्थात वे क्षत्रिय जो ब्राह्मणों की भांति वेदाध्ययन, संस्कार और यज्ञों में संलग्न रहते थे, किन्तु शासन और युद्ध भी करते थे। इस परंपरा की पुष्टि 'उदयपुर प्रशस्ति' से भी होती है, जिसमें प्रसिद्ध राजा मुंज ने स्वयं को 'ब्रह्मक्षत्रिय' घोषित किया है। अतः ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में भी यह उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है कि पंवार(पोवार) समाज जनेऊ धारण करता था, इसका त्याग उन्होंने नहीं किया था।

4.7.5 नवजात बच्चों के लिए पोवारी संस्कार

बच्चे के जन्म से ही पंवार समाज में संस्कारों की श्रृंखला आरंभ हो जाती है। समाज में पुत्र और पुत्री के बीच कोई भेद नहीं किया जाता, अपितु पुत्री के जन्म को विशेष सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। यह प्रचलन है कि जब कन्या जन्म लेती है, तो कहा जाता है "लक्ष्मी आयी है", जो यह दर्शाता है कि घर में देवी का आगमन हुआ है।

जन्म के साथ ही घर में सूतक की मान्यता मानी जाती है, जो छठी संस्कार तक रहती है। इस अवधि में कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं किया जाता और घर को अपवित्र प्रभावों से सुरक्षित रखने के लिए मुख्य द्वार पर तेंदू की लकड़ी बाँधी जाती है, जिससे बुरी शक्तियों के प्रवेश को रोका जा सके।

छठी के दिन नवजात शिशु के पहले बाल काटने की परंपरा निभाई जाती है। इस अवसर पर विवाहित बुआ और बहनें विशेष रूप से घर आती हैं। नाई द्वारा बाल काटे जाते हैं, जिन्हें बहन या बुआ अपने आँचल में झेलती हैं। बुआ और बहनों को नए वस्त्र भेंट कर उनका सम्मान किया जाता है। इसके पश्चात माँ बच्चे को स्नान कराकर उसकी गोद भरती है और समाज की महिलाएँ नवजात को नेग देती हैं तथा उसके चरणों में प्रणाम करती हैं।

छठी तक नवजात के पिता भी दाढ़ी या बाल नहीं कटवाते, किंतु इसी दिन नाई उनका श्रृंगार करता है, जो शुद्धिकरण और सामाजिक जीवन में पुनः प्रवेश का प्रतीक माना जाता है।

इस संस्कार में 'कुरों' की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। छठी के दिन भोज के समय नवजात का पिता कम से कम पाँच कुर के बच्चों के साथ बैठकर भोजन करता है। विशेष रूप से कटरे कुर (निकट संबंधी गोत्र) के किसी बालक की उपस्थिति को अत्यंत शुभ माना जाता है, क्योंकि मान्यता है कि "कटरे कुर के होने से सारी बाधाएँ कट जाती हैं।"

पूर्वकाल में इस अवसर पर 'बारसा' नामक संस्कार भी होता था, जिसमें बच्चे का नामकरण, कुल, गोत्र और संस्कारानुसार आशीर्वाद दिया जाता था। हालाँकि आज यह परंपरा धीरे-धीरे कम प्रचलन में आ गई है, फिर भी छठी संस्कार समाज में एक जीवंत और भावनात्मक रूप से समृद्ध परंपरा के रूप में आज भी सुरक्षित है।

दीपावली के अवसर पर, लक्ष्मी पूजन के अगले दिन पोवार समाज में एक विशिष्ट परंपरा का निर्वाह किया जाता है। इस दिन क्षत्रिय माता, जिन्हें डोकरी कहा जाता है, की पूजा की जाती है। वे देवी के स्वरूप में प्रतिष्ठित होती हैं और समाज उन्हें शक्ति, शौर्य और समृद्धि की प्रतीक मानता है।

इसी अवसर पर एक और महत्वपूर्ण संस्कार संपन्न होता है। परिवार में नवजात शिशु होने पर, दादा-दादी के हाथों उसे चावल की खीर खिलाई जाती है। यह अन्नप्राशन संस्कार का प्रतीक होता है, जो बच्चे के जीवन में अन्न ग्रहण की पहली विधि के रूप में अत्यंत श्रद्धा और उल्लास के साथ संपन्न किया जाता है। यह परंपरा केवल एक धार्मिक अनुष्ठान न होकर पीढ़ियों के भावनात्मक जुड़ाव और सनातन मूल्यों के हस्तांतरण का माध्यम भी है।

4.7.6 पोवारों के देवी-देवता

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज मूलतः सनातन हिंदू धर्म को मानने वाला एक प्राचीन और अनुशासित क्षत्रिय समाज है। इसकी धार्मिक परंपराओं, पूजा-पद्धतियों और आराध्य देवताओं का उल्लेख ब्रिटिश कालीन गजेटियरों और जातीय विवरणों में स्पष्ट रूप से मिलता है, जो इसकी ऐतिहासिक गहराई और सांस्कृतिक स्थायित्व का प्रमाण है।

समाज के पुरखों की आराधना भगवान शिव के 'दूल्हा देव' रूप तथा भगवान विष्णु के 'नारायण देव' रूप में की जाती रही है, जो इसकी वैदिक परंपरा के प्रति गहरी आस्था को दर्शाता है। यह पूजा-पद्धति केवल धार्मिक श्रद्धा नहीं, बल्कि पूर्वजों द्वारा स्थापित धर्मशास्त्रीय ज्ञान और प्रकृति से सामंजस्य की अनुभूति भी है।

यद्यपि यह समाज छत्तीस प्राचीन क्षत्रिय कुलों का संगठित संघ है, फिर भी मालवा की परमार परंपरा से प्रभावित होकर सम्पूर्ण समाज ने एक समान कुलदेव, कुलदेवी तथा गोत्र की परंपराओं को अपनाया। यह सांस्कृतिक समरसता और संगठन की भावना का परिचायक है। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक उल्लेख पूर्व अध्याय में किया गया है, जो समाज के संगठित स्वरूप की नींव को स्पष्ट करता है।

समाज की कुलदेवी के रूप में माता कालिका, जिन्हें 'महामाया' भी कहा जाता है, को सार्वभौमिक रूप से पूजा जाता है। धार स्थित 'माता गढ़कालिका' का मंदिर, पंवारों के आराध्य राजा भोजदेव की कुलदेवी का मंदिर माना जाता है, और यही

कारण है कि सम्पूर्ण छत्तीस कुल पंवार समाज आज भी माँ गढ़कालिका को अपनी कुलदेवी के रूप में मानता है।

मध्यभारत में स्थानांतरित होने के पश्चात जब पंवार पूर्वज नगरधन (महाराष्ट्र) पहुंचे, तो उन्होंने वहाँ अपनी कुलदेवी माँ काली का एक मंदिर स्थापित किया, जो आज भी नगरधन के किले में पूर्ण रूप से विद्यमान है। कालांतर में जब नागपुर क्षेत्र में मराठों का शासन स्थापित हुआ, तो इस मंदिर को 'माँ तुलजा भवानी' का मंदिर कहा जाने लगा। संभवतः यह नाम परिवर्तन मराठा संस्कृति तथा देवी तुलजा भवानी की प्रतिष्ठा के प्रभाव स्वरूप हुआ हो, किंतु ऐतिहासिक रूप से यह मंदिर मूलतः पंवारों की कुलदेवी माँ काली को ही समर्पित है।

इसके अतिरिक्त, पंवार समाज में कुछ क्षेत्रीय और पारंपरिक देवताओं की पूजा भी की जाती है, जैसे बाघदेव, नागदेव, खरियान देव आदि। ये सभी देवी-देवता ग्रामीण जीवन, कृषि, सामाजिक संरचना और सुरक्षा से जुड़ी आस्थाओं के प्रतीक हैं, और आज भी समाज की पूजा-पद्धति का एक अभिन्न अंग बने हुए हैं।

मध्यभारत में पंवार समाज के विस्तार के साथ-साथ समाज का विभिन्न स्थानीय समुदायों से संपर्क हुआ, जिससे क्षेत्रीय संस्कृतियों का प्रभाव भी पड़ा। इस प्रभाव के कारण समाज के कुछ वर्गों ने स्थानीय देवी-देवताओं की भी पूजा करना आरंभ किया। यद्यपि यह पूजा-पद्धति उस क्षेत्र विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुई, फिर भी यह प्राचीन पोवारी संस्कृति का मूल भाग नहीं मानी जा सकती। अतः यह स्पष्ट है कि इन पूजाओं का उद्भव सांस्कृतिक समायोजन का परिणाम है, न कि छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज की मूल पहचान का प्रतीक।

अध्याय ५

पोवारी : छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की मातृभाषा

अध्याय ५
पोवारी : छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की मातृभाषा

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की मातृभाषा पोवारी है, जो समाज की सांस्कृतिक अस्मिता और ऐतिहासिक यात्रा की सजीव अभिव्यक्ति है। इस भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन मानी जाती है। समाज के ऐतिहासिक स्थानांतरण विशेषकर सिंधु क्षेत्र से लेकर वैनगंगा क्षेत्र तक की यात्रा ने पोवारी भाषा को क्षेत्रीय विशेषताओं से युक्त एक विशिष्ट भाषिक रूप प्रदान किया।

समय के साथ-साथ पोवारी भाषा ने जिन-जिन क्षेत्रों में समाज की बसाहट हुई, वहाँ की स्थानीय भाषाओं से अनेक शब्द और ध्वनियाँ आत्मसात कीं, जिससे इसका स्वरूप समृद्ध और विविधतापूर्ण होता गया। भाषाविदों ने पोवारी भाषा को राजस्थानी या पूर्वी हिंदी भाषा-परिवार से संबंधित माना है। कुछ विद्वान इसे बुंदेली या बघेली की उपभाषा के रूप में देखते हैं, जबकि कुछ अन्य इसे मराठी के प्रभाव क्षेत्र में रखते हैं, विशेषतः महाराष्ट्र सीमा से लगे क्षेत्रों में समाज की स्थायी बसाहट के कारण।

मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज की प्रमुख बसाहट नागपुर, भंडारा और सिवनी जिलों में हुई। समय के साथ जब इन क्षेत्रों का प्रशासनिक पुनर्गठन हुआ, तो बालाघाट और अंततः गोंदिया जैसे जिले अस्तित्व में आए, जहाँ आज भी समाज की बड़ी संख्या निवास करती है। यही क्षेत्र वर्तमान में पोवारी भाषा और संस्कृति के जीवंत केंद्र हैं, जहाँ पारिवारिक संवाद, लोकगीत, सामाजिक व्यवहार और पारंपरिक ज्ञान पोवारी भाषा में ही संरक्षित है।

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व तक, लगभग सभी स्वजातीय सदस्य आपस में पोवारी भाषा में ही संवाद करते थे। किंतु अब इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया है। बालाघाट और सिवनी जिलों में पोवारी बोलने वालों की संख्या तेजी से घट रही है, और भंडारा तथा गोंदिया जिलों में भी इसका प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। शुद्ध पोवारी, जिसे हमारे बुज़ुर्ग बोला करते थे, अब बहुत कम सुनने को मिलती है।

वर्तमान समय की पोवारी में हिंदी और मराठी के अनेक शब्दों का समावेश हो गया है। यह बोली हमारे पुरखों की सामान्य दैनिक भाषा रही है। यद्यपि अतीत में इसमें साहित्यिक सृजन बहुत कम हुआ।

हाल के वर्षों में पोवारी पर लेखन का कार्य अवश्य बढ़ा है, परंतु हिंदी और मराठी साहित्य की भांति विभिन्न विधाओं में अभी भी अपेक्षाकृत कम लेखन हुआ है। सौभाग्यवश, वर्तमान में पचास से भी अधिक लेखक पोवारी लेखन में सक्रिय हैं, और निश्चित रूप से अब विभिन्न साहित्यिक विधाओं में पोवारी बोली में सृजन कार्य होगा, जिससे यह बोली और अधिक समृद्ध होगी।

5.1 भारत की जनगणना में पोवारी भाषा का उल्लेख

भारत में भाषाई विविधता को समझने और संरक्षित करने की दिशा में जनगणना एक अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम रही है। भारतीय जनगणना की शुरुआत सन १८६८ में हुई थी, जिसे भारत की पहली संगठित जनगणना माना जाता है। हालांकि यह जनगणना पूरी तरह से संगठित नहीं थी, फिर भी इसके माध्यम से भारत की जनसंख्या, सामाजिक संरचना और भाषाई स्थिति का आरंभिक स्वरूप सामने आया। इसके बाद, सन १८८१ से प्रत्येक दस वर्षों में जनगणना की प्रक्रिया को औपचारिक रूप से नियमित किया गया, जिसमें भाषाओं का सर्वेक्षण भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा।

इस सर्वेक्षण में विभिन्न क्षेत्रीय, जनजातीय और उपभाषाओं को दर्ज किया गया। पोवारी भाषा का भी यथासंभव उल्लेख होता आया, हालांकि कुछ दशकों तक इसे स्वतंत्र भाषा के रूप में दर्ज नहीं किया गया। यह भाषा राजस्थानी, बुंदेली या बघेली जैसी अन्य भाषाओं के अंतर्गत उपभाषा के रूप में दिखाई देती रही। लेकिन बाद में पोवारी को स्पष्ट रूप से हिंदी परिवार की एक भाषा के रूप में मान्यता दी गई। २०११ तक, यह भाषा जनगणना में शमिल होती रही है और अब इसे हिंदी परिवार की एक उपभाषा के रूप में पहचान मिली है। इस बदलाव के बाद, पोवारी को भारतीय भाषाओं के संरचनात्मक दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना गया और इसे औपचारिक रूप से हिंदी की उपभाषा के रूप में दर्ज किया गया। हालांकि, इसके बावजूद पोवारी भाषा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व रहा है और इसका सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व बनी हुई है, और यह अब भी समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है।

पोवारी, सांस्कृतिक जागरूकता के कारण अब एक विशिष्ट भाषाई पहचान के रूप में उभर रही है। वर्तमान में जनगणना में इस बोली को स्वतंत्र रूप से मान्यता दिलाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि पोवारी भाषा और उससे जुड़ी सांस्कृतिक विरासत को औपचारिक पहचान मिल सके।

5.1.1 सेंट्रल प्रॉविन्सेस एथनोलॉजिकल कमिटी का प्रतिवेदन (१८६६–६७)

सेंट्रल प्रॉविन्सेस एथनोलॉजिकल कमिटी की रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक ५१ में यह उल्लेख किया गया है कि पोवारी भाषा, पंवारों की विशिष्ट भाषा है। हालांकि, यह भाषा अन्य भाषाओं के प्रभाव से भी प्रभावित रही है। दीर्घकाल तक विभिन्न भाषी समुदायों के साथ संपर्क में रहने के कारण पोवारी भाषा में स्थानीय भाषाओं जैसे मराठी और गोंडी के शब्दों का समावेश हुआ। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, क्योंकि भाषाओं का आपस में आदान-प्रदान होता रहता है जब समुदाय एक दूसरे के संपर्क में आते हैं।

जब पंवार समुदाय विदर्भ क्षेत्र में आया, तो स्थानीय भाषाओं का प्रभाव पाकर पोवारी भाषा का स्वरूप थोड़ा परिवर्तित हुआ। मराठी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के संपर्क में आने के कारण इसमें कुछ नए शब्दों का समावेश हुआ, जिससे इसकी संरचना में बदलाव आया। पहले यह भाषा मालवी, निमाड़ी और गुजराती जैसी भाषाओं से मिलती-जुलती थी, लेकिन अब यह अपने आप में एक विशिष्ट और स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। आजकल पोवारी भाषा मुख्यतः बालाघाट, गोंदिया, भंडारा और सिवनी जिलों में रहने वाले पंवार समुदाय द्वारा बोली जाती है।

5.1.2 भारत की जनगणना, १८७२

सेंट्रल प्रॉविन्सेस की १८७२ की जनगणना के पृष्ठ क्रमांक ३८ में यह उल्लेख किया गया है कि बालाघाट, भंडारा और सिवनी जिलों में पंवार समाज की कुल जनसंख्या ९२,९५३ थी। उस समय, यह अनुमान स्वाभाविक था कि समाज के लगभग सभी सदस्य पोवारी भाषा का प्रयोग करते थे। इस आधार पर, यह कहा जा सकता है कि १८७२ में पोवारी बोलने वालों की संख्या भी ९२,९५३ ही रही होगी, जो उस समय के पंवार समाज में पोवारी भाषा की प्रमुखता और व्यापकता को दर्शाता है।

5.1.3 भारत **की जनगणना, १८८१**

१८८१ की जनगणना के अनुसार सेंट्रल प्रॉविन्सेस प्रान्त में पोवारी भाषा बोलने वाले छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की कुल जनसंख्या १,०६,०८१ थी। यह समाज मुख्यतः वर्तमान भंडारा (जिसमें आज के बालाघाट और गोंदिया जिले सम्मिलित हैं) तथा सिवनी जिलों में निवास करता था, जहाँ इन्होंने पोवारी भाषा-संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए स्थायी बसाहट स्थापित की।

5.1.4 भारत की जनगणना, १८९१

भारत की जनगणना, १८९१ में यह उल्लेख किया गया था कि पोवारी, हिंदी भाषा-परिवार की एक बोली है। कई अन्य बोलियाँ, जैसे भोयरी, गोवारी, कटियाई आदि, उनके बोलने वाली जातियों के नाम पर आधारित हैं। इसी पृष्ठ पर यह भी लिखा गया है कि ये जातियाँ स्थायी निवासियों के संपर्क में आईं, जिससे उन पर स्थानीय भाषाओं का प्रभाव पड़ा, जैसे कि भंडारा जिले की पोवारी।

सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर्स, बालाघाट डिस्ट्रिक्ट (१८९१–१९०१) के पृष्ठ क्रमांक १३ पर पोवार समाज की बोली पोवारी का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, तथा पोवारी बोलने वालों की संख्या ४१,०४५ दर्ज की गई है।

5.1.5 भारत की जनगणना १९०१

भारत की जनगणना १९०१, सेंट्रल प्रोविन्सेस (खंड तीन) के पृष्ठ क्रमांक १७३ की तालिका में हिंदी समूह की पूर्वी हिंदी बोली समूह के अंतर्गत बोली बघेली की एक उपबोली के रूप में पोंवारी को दर्शाया गया है, जिसे १,२१,८४४ लोगों द्वारा बोले जाने का उल्लेख किया गया है। इसी १९०१ की जनगणना में पंवारी भाषा को पश्चिमी हिंदी की उपभाषा बुंदेली में सम्मिलित किया गया था। ग्वालियर ज़िले के पंवार राजपूतों द्वारा बोले जाने वाली भाषा को पंवारी भाषा कहा गया था।

जॉर्ज अब्राहम गियरसन के भारत के भाषाई सर्वेक्षण में इस भाषा को पवारी (Pawari) लिखा गया है। हालांकि यह भाषा केंद्रीय प्रांत के पोवार या पंवार जाति द्वारा बोली जाने वाली पोवारी भाषा से पूरी तरह भिन्न है। किंतु मध्यभारत में समाज के दो नाम, पोवार और पंवार, प्रचलित होने के कारण समाज की भाषा को पोवारी के साथ-साथ पंवारी भी कहा जाता है।

१९०१ की जनगणना के दस्तावेज, भारत की जनगणना १९०१, खंड तेरह, केंद्रीय प्रांत, भाग एक, रिपोर्ट, के पृष्ठ क्रमांक ६० में उल्लेख है कि पोवारी बोली सिवनी, भंडारा तथा बालाघाट जिलों में बोली जाती है। इसमें यह भी कहा गया है कि पोवारों का वास्तविक घर पश्चिमी राजपुताना है, और उनकी बोली पर बघेली तथा मराठी का प्रभाव देखा जा सकता है। इस दस्तावेज में यह भी लिखा गया है कि इन क्षेत्रों में पोवारों का आगमन पश्चिमी राजपुताना से बघेली बोली बोले जाने वाले क्षेत्रों से हुआ होगा, और संभवतः इसी कारण पोवारी बोली पर बघेली का प्रभाव पड़ा होगा।

5.1.6 भारत की जनगणना,१९११

भारत की १९११ की जनगणना में पोवारी भाषा (जिसे पूर्वी हिंदी की एक उपश्रेणी माना गया) बोलने वालों की जनसंख्या बढ़कर १,४३,००३ हो गई थी। यह आँकड़ा यह दर्शाता है कि १९वीं शताब्दी के अंत और २०वीं शताब्दी की शुरुआत तक पोवारी बोलने वालों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई थी।

सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, वॉल्यूम ३, पार्ट २, १९२७ के पृष्ठ क्रमांक १४ में यह स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि पोवारी, पंवारों की उपबोली है। यह उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पोवारी भाषा की पहचान ऐतिहासिक रूप से पंवार समाज से जुड़ी हुई थी और इसे उनकी विशिष्ट बोली के रूप में मान्यता प्राप्त थी।

5.1.7 भारत की जनगणना, १९२१

१९२१ की जनगणना में पोवारी भाषा का स्वतंत्र रूप से कोई उल्लेख नहीं किया गया, बल्कि इसे पश्चिमी हिंदी समूह में सम्मिलित किया गया था। यह वही बोली थी जिसे उस काल में मुख्यतः भंडारा, बालाघाट और सिवनी जिलों में निवासरत छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के लोग बोलते थे।

जनगणना में इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासनिक सुविधा और भाषाई वर्गीकरण की सीमाओं के कारण पोवारी को बुंदेली या बघेली जैसी उपबोलियों के अंतर्गत ही गिना गया था, जिससे इसकी स्वतंत्र भाषाई पहचान उस समय सामने नहीं आ सकी।

5.1.8 भारत की जनगणना, १९३१

१९३१ की जनगणना के अंतर्गत प्रकाशित "सेंट्रल प्रोविन्सेस एंड बेरार" दस्तावेज में पोवारी (Powari) भाषा के संबंध में यह उल्लेख मिलता है कि यह बोली विशेष रूप से पोवारों (Powars) द्वारा बोली जाती है। भारत के जनगणना आयुक्त की इस रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि बालाघाट और भंडारा जिलों में निवासरत पोवार समाज के लोग अपनी पारंपरिक बोली के रूप में पोवारी भाषा का प्रयोग करते थे।

इस रिपोर्ट में पोवारी को पूर्वी हिंदी भाषाई समूह में शामिल किया गया है। यह उल्लेख इस तथ्य को और भी पुष्ट करता है कि इन दोनों जिलों में पोवारों द्वारा बोली

जाने वाली पारंपरिक भाषा का केवल एक ही नाम पोवारी (Powari) था, और इसकी पहचान एक विशिष्ट भाषिक रूप में उस समय तक भी बनी हुई थी।

5.1.9 भारत की जनगणना, १९५१

एंथ्रोपोलॉजिकल लिंग्विस्टिक वॉल्यूम ७, १९७८ के पृष्ठ क्रमांक २६८ में यह उल्लेख है कि १९५१ की जनगणना में बालाघाट जिले के ३५,९७९ लोगों ने पोवारी को अपनी प्रथम बोली के रूप में दर्ज किया था। यह संख्या बालाघाट जिले में निवासरत पोवार (पंवार) समाज की कुल जनसंख्या की तुलना में अपेक्षाकृत कम रही, जिसका संभावित कारण यह हो सकता है कि उस समय समाज के अनेक सदस्यों ने हिंदी को अपनी मातृभाषा के रूप में अंकित किया हो।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात १९५१ में पहली बार स्वतंत्र भारत की जनगणना संपन्न हुई। इस जनगणना के अंतर्गत भाषाई सर्वेक्षण भी किया गया, जिसके अंतर्गत जिलेवार रिपोर्टें प्रकाशित की गईं। लैंग्वेज हैंडबुक, मध्यप्रदेश सेन्सस, १९५१ (छिंदवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, निमाड़ और बालाघाट जिलों के लिए) के पृष्ठ क्रमांक ३१ पर सिवनी क्षेत्र में पोवारी बोली जाने का उल्लेख है। इसी रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक १३४, १३५ और १३६ में बालाघाट जिले के ग्रामों में पोवारी बोले जाने का ग्रामवार विवरण दिया गया है।

इसी प्रकार लैंग्वेज हैंडबुक, मध्यप्रदेश सेन्सस, १९५१ (नागपुर, चांदा, भंडारा और अमरावती जिलों के लिए) के पृष्ठ क्रमांक १०२, ११५ और ११६ आदि में भंडारा जिले में पोवार समाज द्वारा बोले जाने वाली पोवारी बोली का ग्रामवार विवरण मिलता है। इन सभी अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि पोवारी बोली सिवनी, बालाघाट, भंडारा और गोंदिया जिलों में रहने वाले पोवार (पंवार) समाज की मूल मातृभाषा, उनकी 'मायबोली', है।

5.1.10 भारत की जनगणना, १९७१

१९७१ की जनगणना पर आधारित *लैंग्वेज हैंडबुक ऑन मदर टंग इन सेन्सस,* १९७२ में श्री रमेश चंद्र निगम ने पृष्ठ क्रमांक २०६ पर पोवारी बोली का उल्लेख किया है, तथा इसे बोलने वालों की संख्या ६४,०७८ बताई है। यह संख्या वास्तव में पोवारी

बोली बोलने वाले सम्पूर्ण समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती, क्योंकि उस समय इससे कहीं अधिक जनसंख्या इस बोली का प्रयोग कर रही थी।

5.1.10 स्वतंत्र भारत में पोवारी भाषा की पहचान और अस्तित्व

भारत की स्वतंत्रता के बाद भी पोवारी भाषा को भाषाई सर्वेक्षणों और जनगणना दस्तावेजों में निरंतर दर्ज किया जाता रहा। १९५१ की जनगणना, जो स्वतंत्र भारत की प्रथम जनगणना थी, में भाषाई आंकड़े एकत्र कर जिला स्तर पर प्रस्तुत किए गए। इस जनगणना में पोवारी को एक स्वतंत्र बोली के रूप में स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया, जिससे यह प्रमाणित होता है कि यह बोली केवल मौखिक परंपरा तक सीमित नहीं रही, बल्कि स्वतंत्र भारत में इसे प्रशासनिक मान्यता भी प्राप्त हुई।

१९६१ की जनगणना तक पोवारी को केवल इसी एक नाम से दर्ज किया गया था, लेकिन इसके बाद पवारी नाम को भी तिर्यक रूप में जनगणना में सम्मिलित किया गया। यह विशेष बात है कि पवारी नाम की कोई स्वतंत्र भाषा स्वतंत्रता से पूर्व किसी भी जनगणना दस्तावेज़ में नहीं मिलती। हालांकि, इसका उल्लेख जॉर्ज गियरसन के भाषाई सर्वेक्षण में अवश्य मिलता है। गियरसन ने पवारी को ग्वालियर राज्य के पंवार (राजपूत) समुदाय द्वारा बोली जाने वाली बुंदेली की एक उपबोली के रूप में वर्णित किया है। यह स्पष्ट करता है कि यह बोली मालवा या बुंदेलखंड क्षेत्र के राजपूतों से संबंधित है, न कि सेंट्रल प्रोविन्सेस के पंवार (पोवार) समाज से, जिनकी मातृभाषा पोवारी है।

इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता के बाद कुछ जनगणनाओं में भोयरी बोली को पवारी कहा जाने लगा, जिससे भाषाई भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई और संभवतः इसी कारण पवारी को पोवारी के साथ जोड़ दिया गया। १९७१ की जनगणना में पोवारी बोलने वालों की संख्या ६४,०७८ दर्ज की गई थी, जबकि २०११ की जनगणना में यह संख्या बढ़कर ३,२५,७७२ हो गई। ये आंकड़े इस बात का प्रमाण हैं कि पोवारी भाषा आज भी महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के सीमावर्ती जिलों जैसे भंडारा, बालाघाट, गोंदिया और सिवनी में एक सजीव और प्रचलित मातृभाषा बनी हुई है। स्वतंत्रता के बाद के सभी जनगणनाओं और भाषाई अध्ययनों में पोवारी का उल्लेख एक स्वतंत्र भाषा के रूप में हुआ है।

5.2 विभिन्न दस्तावेजों में पोवारी भाषा का उल्लेख

जनगणना दस्तावेजों के अतिरिक्त, अनेक भाषाविदों ने अपने भाषाई अध्ययनों में पोवारी भाषा का उल्लेख किया है। यद्यपि इनमें से कई विद्वानों ने सर जॉर्ज अब्राहम गियरसन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में प्रस्तुत तथ्यों की पुनरावृत्ति की है, फिर भी कुछ स्वतंत्र अध्ययनों में पोवारी को एक विशिष्ट बोली के रूप में स्वीकार किया गया है। विश्व की विभिन्न संस्थाओं द्वारा भाषाओं के संबंध में किए गए कार्यों के प्रकाशित प्रतिवेदनों में पोवारी को बालाघाट, सिवनी, भंडारा और गोंदिया जिलों में बोली जाने वाली एक स्वतंत्र भाषा के रूप में दर्शाया गया है।

मैसूर स्थित भारतीय भाषा संस्थान (Central Institute of Indian Languages) ने भी पोवारी भाषा के संरक्षण को स्वीकार किया है और पोवारी साहित्यकारों द्वारा लिखित पुस्तकों को अपनी सूची में सम्मिलित किया है। यह संस्थान भारतीय भाषाओं के विकास और संरक्षण के लिए कार्यरत है, और विभिन्न भाषाओं के साहित्य को संकलित तथा संरक्षित करता है। यह सभी प्रमाण इस बात का ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि पोवारी भाषा का न केवल मौखिक, बल्कि साहित्यिक और भाषाई अध्ययन में भी एक मान्य और सजीव अस्तित्व रहा है।

5.2.1 एक्सेशन लिस्ट, इंडिया, वॉल्यूम १८, १९८०

"एक्सेशन लिस्ट, इंडिया" पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक, ४०३ में पोवारी भाषा के विषय में लिखा गया है कि यह राजस्थानी, बघेली और मराठी भाषाओं का मिश्रण है, जो महाराष्ट्र के भंडारा जिले और मध्यप्रदेश के बालाघाट जिले में बोली जाती है। हालांकि, उस समय सिवनी जिला स्वतंत्र अस्तित्व में था और वहाँ निवासरत पंवार समाज के लोग भी पोवारी भाषा बोलते थे, जिसका उल्लेख लेखक द्वारा नहीं किया गया है। उल्लेखनीय है कि सन १९९९ में भंडारा से पृथक कर गोंदिया जिला बनाया गया, जहाँ बड़ी संख्या में पोवारी भाषा बोलने वाले पोवार समुदाय के लोग रहते हैं।

5.2.2 केंद्रीय हिंदी संस्थान

केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा सन १९८९ में जारी पुस्तक, '*कोश विज्ञान: सिद्धांत एवं मूल्याङ्कन*' के पृष्ठ क्रमांक, ३४ में भाषाओं का वर्गीकरण किया गया है। इसमें भाषाओं को क्षेत्रीय बोलियों और सामाजिक बोलियों में विभाजित किया गया है। क्षेत्रीय

बोलियों के उदाहरणों में वरहाड़ी, अहिरानी, कोंकनी, डांगी आदि शामिल हैं, जबकि समाज विशेष से जुड़ी रहने के कारण पोवारी, कोष्ठी, कोली, खत्री आदि को सामाजिक भाषा के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

5.2.3 सेंट्रल प्रॉविनवेस डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटिएर, जिला सिवनी

सेंट्रल प्रॉविन्स डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जिला सिवनी, १९०७ के पृष्ठ क्रमांक, ४५ पर उल्लेखित है कि उस समय सिवनी जिले में १७,००० पोवार निवास कर रहे थे, जो अपनी मातृभाषा पोवारी (पूर्वी हिंदी) बोलते थे। इस भाषा पर कालांतर में मराठी का प्रभाव पड़ा, जो मुख्यतः मराठा शासनकाल में हुआ।

१७०० के आसपास और उसके बाद, राजपुताना और मालवा क्षेत्र से कई क्षत्रिय कुलों के लोग इस क्षेत्र में आए। उन्होंने सर्वप्रथम नगरधन में निवास करना शुरू किया और फिर धीरे-धीरे वैनगंगा क्षेत्र में बसते चले गए। संभवतः १७५० तक, अनेक क्षत्रिय परिवार नगरधन और वैनगंगा क्षेत्र में एक साथ रहने लगे थे। मराठी भाषी समुदाय के साथ लंबे समय तक संपर्क में रहने के कारण पोवारी बोली पर मराठी का प्रभाव अब भी स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

5.2.4 सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, भंडारा

सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर में भंडारा जिले के बारे में उल्लेख किया गया है कि पोवार समाज की बोली पोवारी है, जिसे वे पश्चिमी राजपुताना से अपने साथ लेकर आए थे। यह बोली उनके ऐतिहासिक स्थानांतरण की पहचान है और भंडारा जिले में निवासरत पोवार समाज के सामाजिक और भाषाई अस्तित्व को स्पष्ट करती है। सेंट्रल प्रॉविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर्स, भंडारा डिस्ट्रिक्ट, बी वॉल्यूम स्टैटिस्टिकल टेबल्स १८९१–१९२६ के पृष्ठ क्रमांक, १५ में यह उल्लेख है कि पोवारी, पोवारों की बोली है, जो आज भी उनके सांस्कृतिक और भाषाई अस्तित्व का एक अभिन्न हिस्सा बनी हुई है।

इस गज़ेटियर में भंडारा जिले में पोवार समाज के निवास, उनकी जनसंख्या और बोली के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। यह दस्तावेज़ न केवल पोवारी भाषा के ऐतिहासिक अस्तित्व को प्रमाणित करता है, बल्कि यह भी बताता है कि यह बोली उनके स्थलांतरण के साथ संबंधित है, जो पश्चिमी राजपुताना से लेकर मध्यभारत तक

फैला हुआ था। इस तरह, यह गज़ेटियर पोवारी बोली और समाज की ऐतिहासिक यात्रा का महत्वपूर्ण साक्षी बनता है।

5.2.5 नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल

नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा सन १९७१ में प्रकाशित "नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल ह्यूमेनिटीज़" (वॉल्यूम २२) में पोवारी बोली का विस्तृत विवरण प्रदान किया गया है। इस जर्नल में मराठी भाषा और अन्य क्षेत्रीय बोलियों के साथ पोवारी बोली का तुलनात्मक भाषाई अध्ययन किया गया है। शोध में इस बोली की ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक और संरचनात्मक विशेषताओं का गहन विश्लेषण किया गया, और इसे एक स्वतंत्र भाषिक स्वरूप के रूप में स्वीकार किया गया है। यह अध्ययन पोवारी बोली की अकादमिक मान्यता और इसके भाषाई महत्व को स्पष्ट करता है, जिससे यह साबित होता है कि पोवारी बोली केवल एक क्षेत्रीय बोली नहीं, बल्कि एक सुसंगत और संरचित भाषा है।

इस शोध से यह भी प्रमाणित होता है कि पोवारी बोली का अपनी विशेषताएँ और संरचनाएँ हैं, जो इसे अन्य भाषाओं और बोलियों से अलग करती हैं। इसके अकादमिक अध्ययन से यह सुनिश्चित होता है कि पोवारी बोली का न केवल सांस्कृतिक, बल्कि भाषाई दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्व है।

5.2.6 अंतरराष्ट्रीय भाषाई मानकों में पोवारी बोली का अभिलेखन

'एथनोलॉग: द लैंग्वेज ऑफ वर्ल्ड' में पोवारी बोली को "वैनगंगा पोवारी (Vyneganga Powari)" के रूप में (कोड: pwr–vyn) अभिलेखित किया गया है। इसी प्रकार, **OLAC (Open Language Archives Community)** रिकॉर्ड में भी पोवारी बोली को pwr कोड के साथ अपने भाषाई अभिलेखों में शामिल किया गया है, जो इसकी वैश्विक भाषाई पहचान का प्रमाण है।

'ग्लूटोलॉग और जॉर्ज ए. ग्रियर्सन (१९०४)' के अनुसार, पोवारी इंडो-आर्यन सेंट्रल ज़ोन की उपभाषा, विशेष रूप से ईस्टर्न हिंदी की उपभाषा मानी गई है। बोली भाषा के अध्ययन से संबंधित संस्था मल्टी ट्री में पोवारी को 'pwr' कोड के अंतर्गत ISO 639-3 तथा इंडो-यूरोपियन भाषा-परिवार की श्रेणी में रखा गया है।

'एल.सी. क्लासिफिकेशनः एडिशन्स एंड चेंजिस', पृष्ठ ८७, लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस, कैटलॉगिंग पॉलिसी एंड सपोर्ट ऑफिस, १९९६ में भी पोवारी बोली का उल्लेख मिलता है।

'इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिंग्विस्टिक' के पृष्ठ क्रमांक २९१ पर पोवारी को बघेली समूह में रखा गया है जबकि पृष्ठ क्रमांक ४७७ पर इसे बुंदेली की उपबोली के रूप में दर्शाया गया है।

5.3 भारत का प्रथम भाषाई सर्वेक्षण: "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया"

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिसे १८९४ से १९२८ के बीच सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन द्वारा संचालित किया गया, भारतवर्ष के भाषाई वैविध्य का अब तक का सबसे व्यापक और ऐतिहासिक सर्वेक्षण था। इसमें कुल ११ खंडों में १७९ भाषाओं और ५४४ बोलियों को उनके व्याकरणिक स्वरूप, शब्दकोष, ध्वनियों, प्रादेशिक प्रसार और सांस्कृतिक तत्वों सहित प्रलेखित किया गया। ग्रियर्सन ने भाषाओं को मुख्यतः तीन परिवारों, आर्य, द्रविड़ और मुण्डा-तिब्बती में वर्गीकृत किया और भाषिक सीमाओं को राजनीतिक सीमाओं से पृथक कर उनके स्वाभाविक भूगोल को रेखांकित किया।

"लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया" नाम से कई भागों में उन्होंने अपनी भाषायी अध्ययन रिपोर्ट तैयार की थी। इस सर्वे की छठवीं रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक १७८, १७९ में वैनगंगा क्षेत्र के पंवार(पोवार) समुदाय द्वारा बोली जाने वाली बोली, पोवारी के विषय में उल्लेख किया गया है।

श्री ग्रियर्सन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि पोवारी, पोवारों की भाषा है, जो मूलतः मालवा के राजपूत परमार हैं। वे उत्तर भारत की ओर स्थानांतरित हुए और बाद में वैनगंगा की घाटियों में आकर उन्होंने अपनी सघन बस्तियाँ बसाई। इस जाति का पारंपरिक घर मध्य भारत का धार है। जैसा कि विदित है, मालवा नरेश भोजदेव ने अपनी राजधानी उज्जैन से धार स्थानांतरित की थी, और तब से लेकर आज तक परमार वंशियों का इस नगरी पर शासन और प्रभाव रहा है।

हालाँकि पोवार पूरे मध्य प्रांत में फैले हैं, पर बालाघाट और आसपास के क्षेत्रों में इनके द्वारा एक अलग बोली, पोवारी, बोली जाती है। सन १८९१ की जनगणना में बालाघाट और भंडारा जिलों में पोवार समाज की जनसंख्या १,१३,६०४ थी। पश्चिमी राजपुताना से आने के बाद पोवारों की भाषा पर बघेली और मराठी का प्रभाव देखा

गया है। ग्रियर्सन ने अपनी रिपोर्ट में बालाघाट और भंडारा जिलों में बोली जाने वाली पोवारी का तुलनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है।

5.4 पोवारी और पवारी भाषा में अंतर

पोवारी और पवारी भाषाओं में अंतर है, और दोनों अलग-अलग स्वरूप तथा क्षेत्रवार भिन्न भाषाएं हैं। १८६८ से लेकर २०११ तक की सभी जनगणनाओं में पोवारी (Powari) नाम से समाज की भाषा का उल्लेख मिलता है। हालांकि १९५१ के बाद से पोवारी के साथ पवारी शब्द का भी प्रयोग होने लगा।

इसका अध्ययन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि गियर्सन ने अपने भाषाई सर्वेक्षण में ग्वालियर के पंवार राजपूतों की भाषा को पवारी (Pawari) नाम दिया था, और इसे बुंदेली भाषा समूह की उपभाषा बताया था, जबकि इसी सर्वेक्षण में गियर्सन महोदय ने वैनगंगा क्षेत्र के पोवारों की मातृभाषा पोवारी को बघेली की उपभाषा बताया है।

एक और तथ्य यह है कि मध्य भारत में बोली जाने वाली भोयरी भाषा के समुदायों ने, १९३९ में अपने संगठन के माध्यम से "पवार" उपनाम को अपनाने का प्रस्ताव पारित किया, जिसके कारण उन्होंने अपनी भाषा को पवारी लिखना शुरू किया। संभवतः इसी वजह से १९५१ से भाषाई सर्वेक्षणों में पवारी भाषा को भी पोवारी के साथ जोड़कर तिर्यक (/) के साथ लिखा जाने लगा।

हालांकि, भोयरी या भोयरी पवारी बोली, पोवारी भाषा से पूरी तरह भिन्न है, और इसे सभी भाषाई सर्वेक्षणों में मालवी भाषा की उपबोली बताया गया है।

लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस, सब्जेक्ट हैडिंग (३१वां अंक) में इन भारतीय भाषाओं के अंतर को स्पष्ट किया गया है। इस पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक ६२३५ में पोवारी भाषा को बघेली बोली में सम्मिलित करते हुए लिखा गया है कि यह पोवार परिवार की भाषा है, जबकि पृष्ठ क्रमांक ५६८० में पवारी भाषा को बुंदेली भाषा में सम्मिलित कर, इसे लोक साहित्य की भाषा बताया गया है।

१९५१ के पूर्व तक इन दोनों भाषाओं को उनकी विभिन्नता के आधार पर अलग-अलग भाषाई परिवारों में रखा गया था, हालांकि १९६१ की जनगणना में भोयरी और पोवारी को अलग-अलग क्रमांक पर रखा गया था, परंतु इस समय भोयरी मातृभाषा बताने वालों की संख्या १०,००० से कम थी, और १९७१ की जनगणना में

दस हजार से कम संख्या में बोले जाने वाली भाषाओं को सूची से हटा दिया गया, जिसके कारण भोयरी भाषा सूची से बाहर हो गई। इसके बाद भोयरी भाषी समूहों ने अपनी भाषा को पवारी बताना शुरू कर दिया, जिससे यह भाषा पवारी, पोवारी में सम्मिलित हो गई।

पवारी, भोयरी, पोवारी, ये तीनों स्वतंत्र भाषाएं रही हैं, जिन्हें गियर्सन के भाषाई सर्वेक्षण में अलग-अलग समूहों में रखा गया था, लेकिन बाद में इन्हें आपस में मिलाने के कारण इन तीनों पृथक भाषाओं के स्वतंत्र अस्तित्व के विलोपन का खतरा उत्पन्न हो गया है।

एंथ्रोपोलॉजिकल लिंग्विस्टिक्स, वॉल्यूम ७, पृष्ठ क्रमांक २६८ पर यह तथ्य उल्लिखित है कि पवारी (पोवारी) दतिया और आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है। आगे यह लिखा है कि १९५१ की जनगणना में ३५,९७९ लोगों ने, जिनमें अधिकांश बालाघाट जिले से थे, अपनी मातृभाषा पोवारी बताई थी।

गियर्सन के भाषाई सर्वे में दतिया की पवारी को बुंदेली की उपभाषा, और पोवारी भाषा को बालाघाट, सिवनी, भंडारा जिलों के पोवारों की भाषा बताया गया है। इस सर्वेक्षण में दोनों भाषाओं के नमूने (सैम्पल) भी दिए गए हैं, जिनके विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों भाषाओं में कोई समानता नहीं है, फिर भी १९५१ के भाषाई सर्वेक्षण और उसके पश्चात की जनगणनाओं में इन्हें गलती से एक साथ, और एक ही क्रमांक पर रख दिया गया है।

5.5 पोवारी बोली, उसका अस्तित्व और विकास

कई भाषाविदों द्वारा पोवारी को बघेली या बुंदेली से जोड़ने के प्रयास किए गए हैं, लेकिन यह तथ्य अब तक स्पष्ट हो चुका है कि पोवारी बोली का इन भाषाओं से कोई सीधा भाषिक साम्य नहीं है। वास्तव में, पोवारी बोली की भाषिक संरचना और शब्दावली में अधिक समानताएँ मालवी, राजस्थानी और गुजराती भाषाओं से पाई जाती हैं। इसके साथ ही, नगरधन-नागपुर क्षेत्र में लंबे समय तक निवास के कारण इस पर मराठी का भी गहरा प्रभाव पड़ा है, जो आज भी इसकी विशिष्ट पहचान को दर्शाता है। इस प्रकार, पोवारी बोली अपनी जड़ें और भाषिक पहचान में स्वतंत्र है और इसे अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से जोड़ना मात्र भ्रम उत्पन्न करता है।

इसका एक कारण यह है कि हर भाषा के समर्थक खुद को अधिक बड़ी भाषा और व्यापक बताने के लिए कई अन्य भाषाओं या बोलियों को उनकी उपबोली बता देते हैं। लेकिन इन भाषाओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। संभवतः यही कारण रहा होगा कि पोवारी को कहीं बुंदेली तो कहीं बघेली भाषाओं की उपबोली बता दी गई है, जबकि वास्तव में पोवारी इन भाषाओं के क्षेत्र से भी अलग थी और संरचना तथा प्रवाह में भी पृथक है।

इसी प्रकार, आजकल पोवारी को मराठी की भी उपबोलियों में शामिल किया जाने लगा है। यह भी ठीक वैसे ही है जैसे पहले पोवारी को हिंदी की उपबोली बताया गया था। इतना अवश्य है कि पोवारी भाषा, हिंदी और मराठी से समानता रखती है, लेकिन इसके बावजूद भी भाषा की प्राचीनता और संरचना का व्यापक विश्लेषण करने पर पोवारी का हमेशा से अपना स्वतंत्र अस्तित्व माना जाना चाहिए। भले ही इसे बोलने वाले इसकी समुदायिक प्रकृति और समुदाय की सीमित संख्या के संदर्भ में संख्या कम हो, पर इसका अस्तित्व हिंदी, मराठी, बुंदेली और बघेली जैसी भाषाओं के जैसे ही प्राचीन है और इसलिए इसे स्वतंत्र भाषा के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

मध्यभारत में पंवार (पोवार) समाज की मातृभाषा पोवारी रही है, लेकिन अब यह बोली मुख्य रूप से गाँवों तक ही सीमित रह गई है। शिक्षित वर्ग ने हिंदी, मराठी और अंग्रेज़ी का प्रयोग अधिक करना शुरू कर दिया है, जिसके कारण पोवारी बोली धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। बालाघाट, सिवनी, गोंदिया और भंडारा जिलों में पंवार (पोवार) समाज की मातृभाषा पोवारी है।

लगभग २५ वर्ष पहले तक समाज के लोग आपस में पोवारी में ही संवाद करते थे, लेकिन अब यह स्थिति काफी बदल चुकी है। बालाघाट और सिवनी जिलों में पोवारी बोलने वालों की संख्या तेजी से घट रही है, और भंडारा तथा गोंदिया जिलों में भी इसका प्रयोग कम होता जा रहा है।

शुद्ध पोवारी, जिसे हमारे बुज़ुर्ग बोला करते थे, अब कम सुनने को मिलती है। आजकल की पोवारी में हिंदी और मराठी के कई शब्दों का समावेश हो चुका है, जिससे इसकी शुद्धता में कमी आई है। पोवारी हमारे पूर्वजों की सामान्य बोलचाल की भाषा रही है, लेकिन इसमें साहित्यिक सृजन बहुत कम हुआ है। हाल के कुछ वर्षों में पोवारी पर लेखन हुआ है, परंतु हिंदी और मराठी साहित्य की तरह इसकी विभिन्न विधाओं में रचनाएँ अब भी बहुत कम हैं।

आज ५० से अधिक लेखक पोवारी लेखन में सक्रिय हैं और भविष्य में इस बोली में साहित्य सृजन की संभावना को देखते हुए यह निश्चित है कि पोवारी बोली अधिक समृद्ध होगी। समाज की प्राथमिक ज़िम्मेदारी पोवारी को बचाना अब सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है। लगभग १४-१५ लाख की जनसंख्या वाले पंवार(पोवार) समाज में २०११ की जनगणना के अनुसार केवल ४ लाख लोगों ने इसे अपनी मातृभाषा बताया। वहीं, भोयरी बोली बोलने वालों ने भी इसे "पवारी" नाम से दर्ज कराया, जिससे जनगणना अधिकारियों को भ्रम हुआ और उन्होंने इसे पवारी/पोवारी नाम से संयुक्त रूप में अंकित कर दिया। इस कारण वास्तविक पोवारी भाषियों की संख्या का सटीक आंकलन नहीं हो सका।

यह अत्यंत दुखद है कि इतनी बड़ी जनसंख्या वाला पंवार(पोवार) समाज अब पोवारी बोली का प्रयोग कम करता जा रहा है। अतः, पोवारी लेखन को प्रोत्साहित करना आवश्यक हो गया है। चाहे रचनाओं में छंद और यमक हों या न हों, हमें ऐसा साहित्य निर्माण करना चाहिए जो साधारण जनसामान्य की समझ में आए और पोवारी संस्कृति तथा मूल्यों के अनुरूप हो। साहित्य लेखन में कोई बंधन नहीं होता, इसके अनेक रूप होते हैं। कई बार नवीन शैलियों से साहित्य की नई विधाएँ जन्म लेती हैं। जैसे कि मुक्तछंद, कविता का वह रूप जो किसी विशिष्ट छंद अथवा तुकांत पर आधारित नहीं होता, बल्कि सामान्य भाषण जैसा प्रतीत होता है। हिंदी में मुक्तछंद की परंपरा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' से प्रारंभ हुई थी। इसी शैली से पोवारी लेखन को सरल और सुलभ बनाया जा सकता है, जिससे अधिक से अधिक लोग इसमें भाग ले सकें।

पोवारी बोली का साहित्य निर्माण, वीडियो, ऑडियो और उनके प्रचार-प्रसार से इस बोली का विकास संभव हो सकेगा। हालांकि मीडिया में कुछ ऐसे लेख और वीडियो आए हैं जिन्हें जनसामान्य ने पसंद किया है, परंतु उनमें समृद्ध पोवारी संस्कार और राजपुताना क्षत्रिय परंपराओं की झलक नहीं मिल पाई। हास्य-व्यंग्य की शैली भी हमारी परंपराओं और मर्यादाओं के अनुरूप सरल एवं सहज भाषा में होनी चाहिए, ताकि यह प्रचार-प्रसार हमारी सांस्कृतिक जड़ों को और मजबूत करे।

भारतवर्ष में पोवारी बोली बोलने और समझने वालों की कुल संख्या वास्तविक में लगभग १० लाख के आसपास है। मालवा से नगरधन होते हुए मध्यभारत में बसे पंवार(पोवार) समाज की वास्तविक मातृभाषा पोवारी है। यद्यपि आज लगभग पंद्रह लाख की जनसंख्या वाला यह समाज सामान्य बोलचाल में हिंदी और मराठी का

अधिक उपयोग करता है, फिर भी कुछ वर्ष पूर्व तक इस समाज में पोवारी ही संपर्क की प्रमुख भाषा थी। गाँवों में अन्य समाज के लोग भी पोवारी बोलना जानते हैं और पंवार(पोवार) समाज के लोगों से इसी बोली में संवाद करते हैं।

पंवार(पोवार) समाज के विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों में पोवारी में गीत गाए जाते हैं। समाज की महिलाएँ विवाह, त्योहार, सामाजिक आयोजन और दैनिक कार्यों के साथ-साथ पोवारी गीत गाती हैं। इन गीतों को नई पीढ़ी को सिखाना आवश्यक है, ताकि यह अमूल्य धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहे। इसके अतिरिक्त कई सामाजिक-सांस्कृतिक लोक कलाएँ जैसे ढंडियार, भजन, कीर्तन आदि भी पोवारी में प्रस्तुत किए जाते हैं। कई लोक कलाकार पोवारी नाटकों का आयोजन करते हैं। नई पीढ़ी के अनेक उत्कृष्ट गायक भी हैं जो पोवारी में गायन कर, उसकी रिकॉर्डिंग कर, सोशल मीडिया पर प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

भविष्य की दिशा में इन कार्यक्रमों और प्रयासों से पोवारी बोली का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है और कला की विभिन्न विधाओं में यह बोली जीवित बनी हुई है। अब तक अनेक लेखकों ने पोवारी बोली में साहित्य का सृजन किया है। वर्तमान में ५० से अधिक लेखक पोवारी साहित्य लेखन में संलग्न हैं और शीघ्र ही समाज के समक्ष इस बोली में अनेक पुस्तकें और रचनाएँ उपलब्ध होंगी।

आज आवश्यकता है कि समाज के संगठन, पदाधिकारी और जनसामान्य मिलकर इस अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर, पोवारी को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए संगठित प्रयास करें। तभी यह बोली और अधिक समृद्ध हो पाएगी। यदि समाज यह समझे और एकजुट होकर कार्य करें, तो पोवारी बोली का भविष्य न केवल सुरक्षित रहेगा, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के रूप में जीवित रहेगा।

अध्याय ६

पंवार समाज के अग्रदूत और प्रतिष्ठान

अध्याय ६
पंवार समाज के अग्रदूत और प्रतिष्ठान

6.1 पंवार समाज में संगठनों का विकास

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, मालवा-राजपुताना क्षेत्र से वैनगंगा घाटी की ओर क्षत्रिय पंवार(पोवार) समाज का स्थानांतरण १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रारंभ हुआ था। लगभग ईस्वी सन १७७५ तक यह समाज इस क्षेत्र में स्थायी रूप से बस चुका था। स्थानांतरण की इस प्रक्रिया के दौरान समाज ने अपने संगठन और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा और धीरे-धीरे वैनगंगा क्षेत्र में एक संगठित इकाई के रूप में उभर कर सामने आया।

इस कालावधि तक पंवार(पोवार) समाज ने छत्तीस कुलों के क्षत्रिय संघ के रूप में स्वयं को संगठित कर लिया था, जिससे समाज में एकता, सामाजिक अनुशासन और पारंपरिक मूल्यों का संरक्षण संभव हुआ। छत्तीस कुल पंवार समाज का यह स्वरूप नया नहीं था, बल्कि इसका मूल आधार मालवा और अवन्ति क्षेत्र से चला आ रहा था, जहाँ यह क्षत्रिय समाज पहले से छत्तीस कुलों के संघ के रूप में प्रतिष्ठित था।

हालांकि वर्तमान छत्तीस कुल पंवार(पोवार) संघ की ठोस और संगठित संरचना, वैनगंगा क्षेत्र में आने के पश्चात नगरधन और नागपुर के आसपास विकसित हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि नए क्षेत्र में सामाजिक संरचना की आवश्यकता को समझते हुए, पंवार(पोवार) समाज ने एक संगठित प्रणाली का निर्माण किया जिसमें रीति-रिवाज़, कुल-परंपराएं और सामाजिक व्यवस्थाएं सुनिश्चित की गईं। निश्चित रूप से, इस नए परिवेश में समाज को सुव्यवस्थित रखने हेतु उन्होंने नए विधि-विधान, सभा-व्यवस्थाएं और परंपराओं का निर्माण किया होगा।

इस आधार पर यह अनुमान अत्यंत तर्कसंगत प्रतीत होता है कि 'छत्तीस कुल क्षत्रिय पंवार(पोवार) संघ' का औपचारिक गठन, उनके वैनगंगा क्षेत्र में आगमन के कालखंड, अर्थात ईस्वी सन १७०० के आसपास, ही हुआ होगा। यह संघ न केवल समाज की एकता का प्रतीक बना, बल्कि सांस्कृतिक उत्तराधिकार, सामाजिक मर्यादा और पारंपरिक जीवनशैली को आगे बढ़ाने का माध्यम भी सिद्ध हुआ।

6.1.1"पँवार धर्मोपदेश"

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज की सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक गाथाओं और पारंपरिक मूल्यों की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। मालवा से लेकर नगरधन और वैनगंगा तक की यात्रा में इस समाज ने जहां एक ओर युद्धों और स्थानांतरणों का सामना किया, वहीं दूसरी ओर अपनी परंपरा, कुल-व्यवस्था और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखा। इस यात्रा में समाज के भीतर चेतना और आत्मस्मरण की ज्योति प्रज्ज्वलित करने वाला एक अनुपम ग्रंथ "पँवार धर्मोपदेश" है, जिसे स्व. लखाराम तुरकर जी ने सन १८९२ में लिखा था।

यह पुस्तक केवल एक उपदेशात्मक ग्रंथ नहीं है, अपितु समाज की आत्मा को झकझोरने वाला, उसे उसके मूल की ओर लौटने के लिए प्रेरित करने वाला साहित्यिक प्रकाशस्तंभ है। इसमें लखाराम जी ने समाज के समक्ष यह उद्घोष किया कि—

"हमारा प्रत्येक कुल एक पवित्र धाम है, और
छत्तीस कुलों की यह व्यवस्था समाज की आत्मा है।"

उन्होंने सभी छत्तीस कुलों के नाम प्रस्तुत किए, और आग्रह किया कि समाज को चाहिए कि वह अपनी कुलीय पहचान की रक्षा हर हाल में करे। यद्यपि वर्तमान वैनगंगा क्षेत्र में इकतीस कुलों की ही स्थायी बसाहट के प्रमाण मिलते हैं, परंतु यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि शेष कुल संभवतः नगरधन से लौटकर अपने मूल क्षेत्रों की ओर वापस चले गए।

इस दिशा में सन १८६८ की जातीय गणना उल्लेखनीय है, जिसमें केंद्रीय प्रांत में पोवारों के तीस कुलों के स्थायी निवास का उल्लेख मिलता है। वहीं सन १९१६ में प्रकाशित रसेल की पुस्तक 'Tribes and Castes of the Central Provinces' में 'नागपुर पंवारों' के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इनके छत्तीस कुल होते हैं और ये आपस में ही विवाह करते हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि इस समाज की कोई शाखा नहीं होती। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि पंवार(पोवार) समाज ने सदियों से न केवल अपनी कुलीय परंपरा को सहेजा, बल्कि सामाजिक शुद्धता और सांस्कृतिक आत्मबोध को भी बनाए रखा।

6.1.1.1"पँवार धर्मोपदेश" की भूमिका

इस ग्रंथ की भूमिका ही उस समय के समाजिक पतन और उसके प्रतिकार की गंभीर चेतावनी देती है। यह भूमिका आज भी वैसी ही सार्थक और प्रेरणादायी है:

"प्रगट हो कि यह पंवार धर्मोपदेश इस आशय से छपवाया गया है कि हमारे जाति की कई बातें व चाल-चलन ऐसी बिगड़ी हैं कि देखने व सुनने से हृदय कंपित होता है। और जितने शास्त्र वा ग्रंथ वा परंपरा से बने हैं, सबके विरुद्ध बरताव होता है। बहुधा लोगों का कहना इस तरह से होता है कि आदि से ऐसी ही रीति चली आती है, परंतु कहीं लिखा नहीं है। इसलिये मैं कहता हूं कि झूठ है, यह रीति बिगड़ी हुई है। परंपरा से होती तो अवश्य कहीं लिखी रहती। मूर्खजन शास्त्र-पुराण को न पढ़ते, न सुनते, न उनके आशय को अच्छी तरह जानते, मनमाना काम करते हैं। बरन इसलिये, ऐ बंधुजनो! आप लोगों से इतनी ही आशा करता भी हूँ कि नीचे लिखे हुए मजमून को ध्यान देकर पढ़ो, और दूसरों को सुनाकर उत्तम रीति को स्वीकार करो, मूर्खता की प्रचलित रीति को त्याग दो।"

दो०:

लखाराम बिनती करें, बुद्धी के अनुसार,
भूलचूक होवे कहीं, गुनिजन लेहु सुधार॥

इस भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि सन १८९० के आसपास समाज की परंपराएं और मूल्य-मानदंड विघटित हो रहे थे। "पँवार धर्मोपदेश" ने इस सामाजिक अंधकार में एक प्रकाश पुंज का कार्य किया।

6.1.1.2 सामाजिक संगठन और जागृति

इसी प्रेरणा के फलस्वरूप, समाज में चेतना जागृत हुई और छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के संगठन की दिशा में कदम उठाए गए। इस कालखंड में 'पंवार जाति सुधारणी सभा' नामक समाज की प्रथम आधुनिक संस्था का गठन किया गया, जिसने समाज को सुधार और संगठन की राह दिखाई। यह सभा "पँवार धर्मोपदेश" की शिक्षाओं को आधार बनाकर समाज में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कार्य करने लगी।

इस संस्था और ग्रंथ ने समाज में सांस्कृतिक चेतना, कुलीय मर्यादा की पुनर्स्थापना, और सामाजिक अनुशासन को फिर से स्थापित किया। यह इतिहास का वह मोड़ था, जहाँ पंवार समाज ने पुनः अपने मूल की ओर लौटने का संकल्प लिया।

"पँवार धर्मोपदेश" केवल एक पुस्तक नहीं, एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक घोषणापत्र है, जो छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के लिए आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना वह एक शताब्दी पूर्व था। यह ग्रंथ हमें हमारी संस्कृति की जड़ों, मूल्यों की रक्षा, और संगठित सामाजिक जीवन की दिशा में मार्गदर्शन देता है।

आज आवश्यकता है कि हम अपने पुरखों की उस चेतना को समझें, जो उन्होंने लिपिबद्ध की थी। यह हम सबकी जिम्मेदारी है कि हम पोवारी संस्कृति और भाषा के संरक्षण, पारंपरिक कुल-व्यवस्था की मर्यादा और धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए संगठित प्रयास करें।

6.1.2 पंवार जाति सुधारणी सभा (१९००-१९४१)

उन्नीसवीं सदी के अंत तक समाज में आ रही सामाजिक और सांस्कृतिक गिरावट को रोकने के लिए स्व. लखाराम जी तुरकर द्वारा लिखित पुस्तक ने समाजजन को संगठित होकर प्रयास करने की प्रेरणा दी। 'पंवार धर्मोपदेश' वास्तव में छत्तीस कुल पंवारों को संगठित करने के लिए एक संजीवनी के समान था। उन्होंने छत्तीस कुल पंवारों को संगठित करने के लिए एक दोहा दिया और हर कुल को एक धाम के समान बताते हुए इसे न भूलने की प्रेरणा दी। पंवारों के कुलों का अपना एक गौरवशाली इतिहास था, इसलिए उन्होंने समाज की प्राचीन संस्कृति को जागरूक करते हुए सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए छत्तीस कुलों का वर्णन किया।

इससे प्रेरित होकर, सभी छत्तीस कुल पंवारों ने संगठित होकर प्रयास करने के लिए 'पंवार जाति सुधारणी सभा' का गठन किया। 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की नियमित बैठकें होती थीं। इस संस्था की प्रथम आमसभा २५ जनवरी १९१० को बैहर स्थित सिहारपाठ की पहाड़ी पर हुई। चूंकि इस समय श्रीराम मंदिर के निर्माण का कार्य भी चल रहा था, इसलिए बैठक स्थल के रूप में सिहारपाठ का चयन करने का उद्देश्य 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की आमसभा के माध्यम से राम मंदिर निर्माण कार्य में सहयोग करना और 'पंवार राम मंदिर निर्माण समिति' को 'पंवार जाति सुधारणी सभा' से जोड़ना था, ताकि भविष्य में यह स्थल छत्तीस कुल पंवारों के लिए एक मुख्य तीर्थ स्थल के रूप में उभर सके।

इस बैठक की पहल श्री चतुर्भुज जी पंवार द्वारा की गई थी और श्री गोपाल बिसेन, कंजई (जि. बालाघाट) की अध्यक्षता में इस प्रथम आमसभा का आयोजन

किया गया था। सभी के प्रयासों से सन १९११ में श्रीराम मंदिर का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ और इस वर्ष सभी पंवारों को प्रभु श्रीराम के प्राण प्रतिष्ठा कार्यक्रम के लिए आमंत्रित किया गया। इस भव्य कार्यक्रम के साथ ही 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की दूसरी आमसभा का आयोजन भी सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार सुधारणी सभा की तीसरी आमसभा भी सिहारपाठ पहाड़ी पर हुई। इसमें समाज में फैली बुराइयों के निवारण हेतु कई प्रावधान किए गए। इस संस्था के उद्देश्य निर्धारित किए गए और इसके विस्तार के साथ समाजजनों को जोड़ने के लिए व्यापक कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई गई।

दिनांक २५ से २७ जनवरी तक 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की चौथी आमसभा बालाघाट जिले के गर्राघाट में संपन्न हुई। इस आमसभा की मुख्य उपलब्धि आगामी कार्यक्रमों से संबंधित कार्यवृत्त के प्रकाशन की रही। पहली बार यह आमसभा राममंदिर परिसर, बैहर से अलग हो रही थी, जिसके कारण बालाघाट और उसके आसपास रहने वाले अनेक स्वजातीय भाई-बहन इस सामाजिक संगठन से जुड़ पाए थे। इस संस्था के सचिव श्री चतुर्भुज जी द्वारा वैनगंगा प्रेस, बालाघाट से संस्था द्वारा जारी कार्यवृत्त को प्रकाशित किया गया था। लखाराम जी के द्वारा लिखित पुस्तक 'पंवार धर्मोपदेश' से प्रभावित इस कार्यवृत्त में गांव-गांव में समितियों का निर्माण कर इनके माध्यम से संस्था के कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए कार्यक्रम तय किए गए थे। ग्राम स्तर की समितियों को प्रत्येक ग्राम स्तर पर सर्वेक्षण कर स्वजातीय लोगों की सूची तैयार करने का कार्य सौंपा गया।

ग्राम स्तर की समितियों को कुरीतियों के उन्मूलन, सामाजिक विवादों का निपटारा तथा दोषी व्यक्तियों को दंड देने के अधिकार भी दिए गए थे। ग्राम स्तर की समितियों को सर्कल समिति के अंतर्गत, सर्कल समितियों को तहसील समिति के अंतर्गत, तहसील स्तर की समितियों को जिला समिति के तहत और जिला समितियों को 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के अंतर्गत रखने की व्यवस्था की गई, जिससे सभी पंवार जनसंख्या वाले ग्राम आपस में जुड़कर राष्ट्रीय स्तर पर संस्था से जुड़ सकें। इस समय बालाघाट, भंडारा (गोंदिया) और सिवनी जिलों के लगभग आठ सौ गांवों में पंवार समाज के लोग निवास कर रहे थे। गर्रा आमसभा में यह प्रस्ताव किया गया था कि सभी गांवों में समितियों का गठन कर उनके माध्यम से 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुंचाया जाए।

१९१४ के कार्यवृत्त में सामाजिक कुरीतियों के निर्मूलन हेतु कई प्रस्ताव पारित किए गए थे। इन सभी प्रस्तावों को संकलित कर ग्राम मेढ़ा, जिला भंडारा के निवासी चिंधु जी टेम्भरे के द्वारा एक लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया था, जिसमें से कुछ प्रस्ताव निम्नलिखित थे:

१. समाज में शाकाहार को बढ़ावा देने और शराबखोरी को रोकने के लिए दंड का प्रावधान किया गया था। मुर्गी पालन और सेवन, सुअर मांस भक्षण, मद्यपान पर पाबंदी लगाई गई और गुनाहगार के लिए २५ रुपये के दंड का प्रावधान किया गया था।

२. विवाह के लिए समाज द्वारा पहली बार आयु का निर्धारण किया गया था। भले ही यह आज की तुलना में कम था, पर उस समय के लिए इस प्रकार विवाह की आयु का निर्धारण समाज के लिए एक महत्वपूर्ण सुधारवादी प्रस्ताव था। लड़की के लिए न्यूनतम आयु ९ से १० वर्ष, जबकि लड़के के लिए विवाह की न्यूनतम आयु १५ से १६ वर्ष निर्धारित की गई। साथ ही विवाह के लिए कपड़े, गहने और दहेज की सीमा का भी निर्धारण कर दिया गया था। उस समय वर पक्ष द्वारा वधु पक्ष को दहेज देने का रिवाज था, जिसे बंद करने का प्रस्ताव किया गया था। इसके साथ ही समाज में पुनर्विवाह के लिए पाठ के नियमों को व्यापक और सरल बनाया गया था।

३. पहले गौना समारोह अलग से होता था, जिसे शादी के दौरान ही सम्पन्न कराने पर बल दिया गया, ताकि अलग से कार्यक्रम पर होने वाले खर्च को कम किया जा सके। इसी प्रकार शादी सहित अन्य कार्यक्रमों में अनावश्यक खर्चों को कम करने का आह्वान किया गया था।

४. लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रस्ताव किया गया था। इसके साथ ही सभी को पाठशालाओं में दाखिला लेने का आह्वान किया गया था।

५. सभी को घर पर रामायण रखकर उसका पाठ करने का भी सदस्यों द्वारा आह्वान किया गया था। प्रतिदिन देवघर में दिया रखना, नियमित रूप से माता तुलसी की पूजा करना और मातामाय में विधिवत पूजा करने जैसे आह्वान के साथ समाज को संस्कारी बनाने पर बल दिया गया था।

इसके पश्चात भी 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की नियमित बैठकें होती रही। देश में स्वाधीनता आंदोलन भी तेजी से बढ़ रहा था और संस्था में जुड़े सदस्य भी इससे जुड़े हुए थे। हालांकि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहे थे। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे युद्धों और स्वाधीनता आंदोलनों के कारण

कुछ समय के लिए सुधारणी सभा की गतिविधियाँ कम हो गई। बाद में एक नई संस्था 'मध्यप्रदेश व बरार पंवार क्षत्रिय संघ' का उदय हुआ, जिसने 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के कार्यों को अपने हाथ में ले लिया और छत्तीस कुल पंवार संघ, 'मध्यप्रदेश व बरार पंवार क्षत्रिय संघ' के नाम से अस्तित्व में आ गया।

6.1.3 पंवार राम मंदिर समिति

सनातनी धर्म और संस्कृति की पवित्रता को बनाए रखने तथा समाज को अपनी प्राचीन धार्मिक मान्यताओं और आस्थाओं से जोड़ने के लिए, समाज के बीच स्वजातीय चेतना का विस्तार करने और एकता की भावना को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बैहर नगर के सिहारपाठ पहाड़ी पर श्रीराम मंदिर के निर्माण हेतु 'पंवार राम मंदिर समिति' का गठन किया गया। यह समिति, समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए एक ऐतिहासिक कदम था। 'पंवार राम मंदिर समिति' के नेतृत्व में समाज के सभी वर्गों ने मिलकर सामूहिक प्रयासों से सन १९११ में बैहर में श्रीराम मंदिर का निर्माण कार्य सम्पन्न किया। इस मंदिर का निर्माण केवल एक भव्य धार्मिक स्थल के रूप में नहीं, बल्कि समाज की एकता और धार्मिक पुनर्निर्माण के प्रतीक के रूप में हुआ था।

समिति की संकल्पना ने न केवल एक मंदिर की नींव रखी, बल्कि स्वजातीय समाज को अपने धर्म, संस्कृति और परंपराओं से जोड़ने का कार्य भी किया। श्रीराम के प्रति आस्था और श्रद्धा को केंद्रित करते हुए, इस समिति ने समाज के लोगों को एकजुट किया। 'पंवार राम मंदिर समिति' के सफल प्रयासों के बाद, यह संस्था 'पंवार राम मंदिर ट्रस्ट' के रूप में पंजीकृत हुई और अब यह ट्रस्ट सिहारपाठ पहाड़ी पर स्थित राम मंदिर तीर्थ परिसर की देखभाल और रखरखाव का कार्य करती है। ट्रस्ट के तहत कई अनुषंगी सर्कल समितियां कार्यरत हैं, जो समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान के साथ-साथ स्वजातीय भाई-बहनों को एकजुट करने के लिए निरंतर कार्य कर रही हैं।

समिति द्वारा आयोजित किए गए हर रामनवमी मेले में देश-विदेश से हजारों की संख्या में स्वजातीय लोग एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर वे अपने आराध्य प्रभु श्रीराम की पूजा अर्चना करते हुए एक दूसरे से मिलते हैं और अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों को साझा करते हैं। यह आयोजन न केवल धार्मिक महत्व रखता है, बल्कि स्वजातीय बंधुत्व को मजबूत करने का एक महत्वपूर्ण अवसर बन गया है।

इसके अलावा, इस संस्था द्वारा प्रतिवर्ष रामनवमी के पावन अवसर पर 'पंवार दर्पण' नामक एक सामाजिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाता है, जो समाज में जागरूकता फैलाने, समाज की प्रगति और संस्कृति को संरक्षित करने का एक प्रभावशाली माध्यम बन चुकी है। इस पत्रिका में न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर विचार विमर्श किया जाता है, बल्कि समाज के उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं और विचारों को भी साझा किया जाता है।

'पंवार राम मंदिर ट्रस्ट' और इसके द्वारा किए गए आयोजन, समाज की एकता, धर्म, संस्कृति और सामाजिक सुधार के प्रतीक बन गए हैं। यह संस्था न केवल पंवार समाज के लिए एक सम्मान और गर्व का विषय है, बल्कि समाज में जागरूकता और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की दिशा में एक मील का पत्थर साबित हुई है।

6.1.4. पंवार शिक्षा समिति

वर्ष १९२५ में 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के वारासिवनी अधिवेशन में कई समाजसेवी महानुभावों ने मिलकर समाज के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए। इस अधिवेशन में श्री गोपाल जी बिसेन कंजई, श्री आड़कोबाजी, श्री श्रावण जी कुड़वा, श्री चेपा जी बिसेन रोशना, श्री दयाराम बिसेन बकेरा, श्री परसराम जी बिसेन पौंडी और अन्य समाजसेवी महानुभावों ने मिलकर कुल ३०० रुपये संकलित किए और इस धनराशि को 'शिक्षा फंड' के रूप में श्री वी. एम. पटेल को प्रदान किया। इस 'शिक्षा फंड' ने श्री वी. एम. पटेल के जीवन में एक नया मोड़ डाला। उन्होंने सरकारी हाई स्कूल के शिक्षक पद से इस्तीफा देकर नागपुर लॉ कॉलेज में प्रवेश लिया। यहां से उन्होंने १९२७ में कानून की डिग्री प्राप्त की और पंवार समाज के प्रथम वकील बनने का गौरव प्राप्त किया।

उनकी शिक्षा और संघर्ष ने समाज में शिक्षा के महत्व को और अधिक उजागर किया। श्री वी. एम. पटेल की प्रेरणा से सन १९२७ में वेलाटी (तिरोडा, जिला भंडारा) में 'पंवार शिक्षा समिति' का गठन किया गया। इस समिति का उद्देश्य पंवार समाज में शिक्षा के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना और विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना था। श्री वी. एम. पटेल के नेतृत्व में 'पंवार शिक्षा समिति' ने शिक्षा के क्षेत्र में कई अहम कदम उठाए, जिनसे समाज में जागरूकता फैली और शिक्षा का महत्व बढ़ा।

6.1.5 नूतन पंवार संघ

१९१० से १९४१ तक 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की विभिन्न स्थानों पर निरंतर बैठकें होती रही, जिनमें समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण विचार-विमर्श हुआ। इस समय समाज में धीरे-धीरे विभिन्न संगठन बनते गए और समाज के लोग देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में तन-मन-धन से जुटे रहे। समाज ने न केवल अपने धार्मिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई, बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय भूमिका निभाई।

उस समय पंवार समाज मुख्य रूप से केंद्रीय प्रांत में बसा हुआ था, और नागपुर इस क्षेत्र की राजधानी थी। नागपुर में समाज के युवाओं को एकजुट करने के उद्देश्य से तात्कालिक छात्र नेता, सर्व श्री तेजलाल जी टेम्भरे और उनके सहयोगियों द्वारा सन १९३१ में 'नूतन पंवार संघ' की स्थापना की गई। इस संघ का उद्देश्य समाज के छात्रों को एकजुट करके उन्हें समाजोत्थान के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करना था। इस संघ ने समाज के युवाओं में जागरूकता फैलाई और उन्हें समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का एहसास दिलाया।

समय के साथ, २०२१ में 'नूतन पंवार संघ' को पुनर्जीवित किया गया और इसे 'क्षत्रिय पोवार (पंवार) समाजोत्थान संघ' के नाम से पंजीकृत किया गया। इस पहल ने संगठन को नया जीवन दिया और समाज के उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं को आकार देने का मार्ग प्रशस्त किया। नूतन पंवार संघ ने समाज के भीतर जागरूकता फैलाने और समाज की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए।

'नूतन पंवार संघ' द्वारा एक सामाजिक पत्रिका 'संदेश' का प्रकाशन भी शुरू किया गया था, जो पोवार समाज की पहली सामाजिक पत्रिका मानी जाती है। इस पत्रिका का उद्देश्य समाज में जागरूकता फैलाना, समाज की समस्याओं को उजागर करना और समाज के विकास के लिए सकारात्मक विचारों का प्रचार करना था। 'संदेश' पत्रिका ने पोवार समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किया और समाज को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया।

6.1.6 मध्यप्रदेश एवं बेरार क्षत्रिय पंवार संघ (१९४१ -१९६१)

छत्तीस कुल पंवार संघ की प्रथम संस्था, 'पंवार जाति सुधारणी सभा', ने अपने गठन से लेकर 'मध्यप्रदेश और बेरार पंवार क्षत्रिय संघ' के उदय तक पोवार समाज के सामाजिक सुधार और सर्वांगीण विकास के लिए कई महत्वपूर्ण और सफल कार्यक्रम चलाए। इस कालखंड में पंवार समाज के आराध्य प्रभु श्रीराम के मंदिर का निर्माण, सिहारपाठ बैहर में हुआ, जो समाज में सामाजिक चेतना जाग्रत करने और छत्तीस कुल पंवारों को आपस में संगठित करने के मामले में एक मील का पत्थर साबित हुआ। इस घटनाक्रम ने पंवार समाज के बीच एकता और भाईचारे की भावना को मजबूत किया और सांस्कृतिक उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए।

हालाँकि, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय उथल-पुथल के दौर में, विशेषकर १९४० तक, 'पंवार जाति सुधारणी सभा' की गतिविधियों में कुछ कमी आ गई थी। इस बीच, समाज में व्याप्त सामाजिक और सांस्कृतिक संकटों को दूर करने के लिए १९४१ में श्री चिंतामनराव जी गौतम, श्री फत्तुलाल जी कटरे, श्री दामोदर जी टेंभरे, श्री जयपाल जी चौधरी और अन्य महानुभावों के प्रयासों से 'मध्यप्रदेश और बेरार क्षत्रिय पंवार संघ' नाम से पंवार महासंघ को पुनर्गठित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य सभी क्षेत्रों में समाज को सांस्कृतिक रूप से संगठित कर छत्तीस कुल पंवार संघ को और अधिक मजबूत बनाना था। इस महासंघ ने 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के कार्यों को अपने हाथ में लिया और समाज की संस्कृति को संरक्षित करने के साथ-साथ ३६ कुल पोवार समाज के उत्थान के लिए कई अधिवेशन आयोजित किए, जिससे समाज को संगठित कर उन्नति के मार्ग पर ले जाने के अनेक उल्लेखनीय कार्य किए गए।

दिनांक २९ दिसंबर १९४१ को काटी में आयोजित 'मध्यप्रदेश और बेरार क्षत्रिय पंवार संघ' के पहले अधिवेशन में संस्था के संगठन और कार्यप्रणाली में सुधार करने के लिए विधि-विधान का निर्माण किया गया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्री फत्तुलाल कटरे और श्री जयपाल चौधरी ने की। इस कार्यक्रम में 'पंवार जाति सुधारणी सभा' द्वारा ग्राम स्तर पर तैयार की गई सभी समितियों को जागरूक किया गया और लखाराम जी तुरकर द्वारा छत्तीस कुल पंवारों के लिए दिए गए 'पंवार धर्मोपदेश' के सिद्धांतों को लागू करने पर चर्चा की गई। इसके साथ ही, देश और दुनिया में हो रहे बदलते परिवेश के संदर्भ में पंवार समाज को प्रगति और विकास की दिशा में आगे

बढ़ाने के लिए व्यापक विचार-विमर्श हुआ। यह अधिवेशन पंवार संघ के रूप में फिर से समाज को संगठित करने के लिए एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण घटना साबित हुई।

इसके बाद, 'मध्यप्रदेश और बेरार क्षत्रिय पंवार संघ' की लगातार नियमित बैठकें होती रही और इसमें विभिन्न क्षेत्रों से नए सदस्यों को इस महासंघ से जोड़ने का कार्य तेज़ी से किया गया। महासंघ का अगला प्रमुख अधिवेशन २६ दिसंबर १९४३ को श्री परसराम जी बिसेन की अध्यक्षता में वारा (वारासिवनी) ग्राम में हुआ। इस अधिवेशन का संक्षिप्त कार्यवृत्त 'पंवार क्षत्रिय संदेश' त्रैमासिकी के वर्ष १९४४ के चौथे अंक में प्रकाशित किया गया। इस कार्यवृत्त से हमें उस समय के कार्यों की झलक मिलती है, और इसमें जिन प्रमुख बिंदुओं पर चर्चा की गई, वे आज भी समाज के विकास में महत्वपूर्ण हैं।

१. **नशामुक्ति का प्रयास:** समाज को अपने अतीत की तरह नशामुक्त करने के उद्देश्य से, जाति के किसी व्यक्ति द्वारा शराब पीने पर पहली बार में ₹ ५० का दंड निर्धारित किया गया। यदि व्यक्ति दंड नहीं भरता और इसे आगे नहीं रोकता है, तो ग्राम समिति द्वारा उसे सामाजिक भोज से बहिष्कृत करने का आदेश जारी किया जाएगा।
२. **पंवार छात्रावास की स्थापना:** प्रत्येक जिले में जहाँ हाई स्कूल तक शिक्षा का प्रबंध हो, ऐसे स्थानों पर 'पंवार छात्रावास' की शीघ्रता से व्यवस्था की जाए, जिसमें कम से कम पच्चीस विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था हो।
३. **प्रचारक की नियुक्ति:** संघ के प्रचार कार्य को गति देने के लिए प्रत्येक जिले में एक-एक प्रचारक को ₹ १५-२० मासिक वेतन पर नियुक्त किया जाए।
४. **राम मंदिर बैहर का प्रबंधन:** पंवार राम मंदिर बैहर के व्यवस्थापन का कार्य संघ अपने हाथ में ले।
५. **बारात में सीमित संख्या:** पाँव-लगनी की बारात में अधिक लोग न ले जाएं।
६. **पाँव-लगनी और विवाह के अंतराल की सीमा:** पाँव-लगनी और विवाह के बीच एक वर्ष से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए।
७. **माँगा-बारी के समय देखना:** माँगा-बारी के समय, लड़के और लड़की को एक दूसरे को देखने का अवसर दिया जाए।
८. **दहेज प्रथा में सुधार**: लड़की का पिता लड़के के पिता से दहेज न ले। लड़की का परिवार बुरी हालत में होने पर अधिकतम ₹ ४८ या एक तोला सोना दहेज ले सकता है।

९. **जेवर की सीमा**: लड़के-लड़की के जेवर का कोई निर्धारित ठराव न हो।
१०. **वर का पोशाख:** वर का पोशाख फेटा, बासींग, कमीज या कोट, दुपट्टा में होना चाहिए।
११. **बिजोरा की परंपरा:** सिर्फ लड़कों की ओर से बिजोरा जाना चाहिए।
१२. **अहेर प्रथा का निषेध:** अहेर नहीं होना चाहिए।
१३. **घूर-धराई का नियम**: घूर-धराई की राशि सवा ₹ १ से ₹ ५ के बीच होनी चाहिए।
१४. **दुल्हा-दुल्हन की सवारी:** दुल्हा-दुल्हन को किसी व्यक्ति की कमर पर बैठाकर नहीं ले जाना चाहिए।
१५. **समदुरा और कुसुम्बा की निषेध:** समदुरा और कुसुम्बा नहीं करना चाहिए।
१६. **उम्र के हिसाब से विवाह:** चालीस वर्ष की आयु में विवाह के बजाय पाट और गंधर्व विवाह को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

मध्यप्रदेश एवं बेरार क्षत्रिय पंवार संघ" का तृतीय अधिवेशन तत्कालीन भंडारा जिले के ग्राम कुड़वा में २५ से २६ दिसंबर १९४४ को संपन्न हुआ। इस समय इस महासंघ के सभापति रा. य. टुन्डीलाल जी तुरकर तथा उपसभापति श्री चिंतामनराव जी गौतम थे। संघ के अन्य सदस्य श्री बी. एम. पटेल, श्री गोपाल सिंह जी बिसेन, मंत्री श्री फत्तुलाल कटरे, उपमंत्री तेजलाल टेंभरे, कौसलनाथ बिसेन तथा कोषाध्यक्ष देऊभाऊ तुरकर थे। इस अधिवेशन में समाज की संस्कृति को बचाए रखने के साथ ही समाज की अपनी भाषा, "पोवारी" के संरक्षण पर भी बल दिया गया। इसके साथ ही शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु 'पंवार शिक्षा समिति' के पुनर्गठन के साथ 'शिक्षा फंड' को ठीक से संचालित करने के ठोस उपाय उठाने का प्रस्ताव किया गया। महिलाओं की संगठन में भागीदारी बढ़ाने पर चर्चा सत्र का आयोजन किया गया।

इसके अतिरिक्त, इस अधिवेशन में कुछ अन्य महत्वपूर्ण बिंदु थे, जिन पर विचार किया गया:

१. गोंदिया नगर में समाज के बच्चों के लिए 'पोवार बोर्डिंग' को शीघ्र तैयार कराने का संकल्प लिया गया।
२. श्री मनीराम भाऊ, तुमाडी ने १३ एकड़ जमीन स्कूल के लिए दान दी और शाला भवन तथा संचालन करने के लिए पंवार संघ से आग्रह किया।
३. श्री देऊभाऊ तुरकर, काटी के द्वारा गोंदिया में पोवार बोर्डिंग बनाने के लिए जमीन दान का वचन दिया गया। इसी प्रकार पोवार बहुल मुख्य शहर बालाघाट और

गोंदिया में पंवार छात्रावास के निर्माण हेतु कई महानुभावों द्वारा आर्थिक मदद की घोषणा की गई।

इसके बाद संघ के राष्ट्रीय अधिवेशन सन १९४६ में ग्राम एकोड़ी (जि. भंडारा), सन १९४७ में ग्राम पुरगाव (जि. भंडारा) में, सन १९४७ में जेवनारा और सन १९४९ में जामखारी (जि. भंडारा) में संपन्न हुए। 'मध्यप्रदेश व बेरार पंवार क्षत्रिय संघ' का चतुर्थ अधिवेशन ग्राम एकोडी में १६-१७ फरवरी १९४६ को श्री चिंतामनराव गौतम की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में श्री परसराम बिसेन पोंडी, श्री गोपाल बिसेन (कंजई), श्री पी. डी. राहंगडाले, श्री देऊभाऊ तूरकर काटी, श्री ताराचंद येडे, श्री शिवलाल बिसेन आदि के द्वारा संबोधित किया गया। स्व. श्री गोपाल जी बिसेन, कंजई के ये उद्गार महत्वपूर्ण थे, जो समाज में शिक्षा के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में प्रेरणास्त्रोत बने। उन्होंने सर्वप्रथम सम्पूर्ण पोवार समाज से सभी छत्तीस कुलों को एकजुट करने की अपील की और समाज में शिक्षा का महत्व बताया। उन्होंने अपने भतीजे श्री टुंडीलाल जी बिसेन को बी.ए. करवाया और वे समाज से पहले बी.ए. धारक बने। कुड़वा सम्मेलन से महिलाओं की संगठनों में धीरे-धीरे भागीदारी की शुरुआत हुई। सभापति श्री चिंतामनराव गौतम और मंत्री श्री फत्तुलाल कटरे को मनोनीत किया गया, और कोषाध्यक्ष के रूप में स्व. श्री दामोदर टेंभरे का चयन किया गया।

दिनांक ३०-१२-१९५० को सरस्वती महिला विद्यालय, गोंदिया में क्षत्रिय पंवार संघ का अधिवेशन आयोजित किया गया। पंवार महासंघ का यह आठवां राष्ट्रीय अधिवेशन श्री बी. एम, पटेल की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में वैतनिक प्रचारक रखने की परंपरा को समाप्त करने की घोषणा की गई। अधिवेशन में श्री बी.एम. पटेल ने अध्यक्षीय भाषण दिया, जिसमें उन्होंने समाज के उत्थान के लिए शिक्षा, सांस्कृतिक जागरूकता, और संगठन के महत्व पर जोर दिया।

6.1.6.1 पंवार छात्रावास बालाघाट

बालाघाट शहर में पंवार समाज की शिक्षा के प्रचार-प्रसार और समाज के बच्चों के लिए छात्रावास की स्थापना का एक महत्वपूर्ण इतिहास है। इस पहल की शुरुआत १९४४ में हुई, जब दिनांक १९-१२-१९४४ को ०.७२ एकड़ ज़मीन १७०० रूपये में खरीदकर पंवार छात्रावास की नींव रखी गई। इस पहल का मुख्य उद्देश्य पंवार

समाज के बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करना और उनके समग्र विकास के लिए एक मंच तैयार करना था।

श्री फत्तुलाल कटरे ने इस महत्वपूर्ण कार्य में अपनी अहम भूमिका निभाई। उन्होंने स्वेच्छा से १०,००० रूपये का योगदान दिया और श्री परसराम जी बिसेन, पोडी के हाथों से दिनांक १५-११-१९५२ को पंवार छात्रावास की नींव डाली। इस पहल को आगे बढ़ाते हुए, १९५९ में श्री फत्तुलाल कटरे ने पुनः १०,००० रूपये का दान देकर पंवार छात्रावास के निर्माण कार्य की शुरुआत की। उन्होंने समाज के अन्य लोगों से भी सहयोग प्राप्त करने के लिए गांव-गांव घूमकर प्रचार किया और ७-२-१९६१ तक ४४,७५१ रूपये की राशि जमा की।

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, श्री फत्तुलाल कटरे और उनके सहयोगियों के अथक प्रयासों से पंवार छात्रावास १९६१ में बनकर तैयार हुआ। यह छात्रावास पंवार समाज के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्थल बना और समाज के उत्थान के लिए एक ठोस कदम साबित हुआ।

6.1.6.2 पंवार छात्रवास गोंदिया

सन १९४४ से गोंदिया में पंवार छात्रावास बनाने के प्रयास तेज हो गए थे। इस दिशा में श्री बी. एम. पटेल ने अपनी अथक मेहनत और समर्पण से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने गोंदिया में पंवार छात्रावास के निर्माण हेतु अनेक प्रयास किए और इस दिशा में सफलता प्राप्त की। श्री बी. एम. पटेल ने श्री श्रावण जी पटेल कुड़वा के सहयोग से श्री देऊभाऊ, काटी से २४०० रूपये का दान लिया और श्री बाबुलाल बिसेन कुडवा से जे. एम. हायस्कूल के समीप स्थित १.७० एकड़ ज़मीन संघ के नाम पर खरीदकर रजिस्ट्री करवाई।

दिनांक १८ जनवरी १९५१ को पंवार छात्रावास की नींव रखी गई। उस समय संघ के पास केवल १४.५० रूपये ही शेष थे, लेकिन फिर भी श्री ज्ञानीराम जी चौधरी, हिरडामाली और श्री मोतीलाल जी चौधरी, सचिव, पंवार संघ की मदद से समाजजनो से ग्राम-ग्राम घूमकर धन जुटाया गया। इस अभियान से ३० दिसंबर १९५२ तक ११,००० रूपये की राशि इकट्ठी की गई। इसके द्वारा पंवार छात्रावास में ६ कमरे और एक कुआं बनाया गया। यह छात्रावास पंवार समाज के बच्चों के लिए शिक्षा के मार्ग में एक अहम केंद्र बना।

बाद में, १९७६ में पंवार छात्रावास को "प्रगतिशील शिक्षण संस्था" के हवाले किया गया, जिसके तहत छात्रावास के इन्फ्रास्ट्रक्चर में और सुधार किए गए। श्री मुन्नालाल जी चोहान और श्री कूर्मराज जी चौधरी के कार्यकाल में ६ और कमरे जोड़े गए, जिससे छात्रावास का आकार और क्षमता बढ़ी।

पंवार संघ ने केवल शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर ही ध्यान नहीं दिया, बल्कि सामाजिक उत्थान के कई अन्य कार्यक्रम भी सफलता से चलाए। भारत की स्वतंत्रता के बाद, भारतीय सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में कई योजनाएं शुरू कीं, जिनसे महिलाओं की शिक्षा में अभूतपूर्व प्रगति हुई। हालांकि, समाज में आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से कुछ हद तक आधुनिकरण भी बढ़ा और संगठन के प्रति कुछ उदासीनता आई। इसके परिणामस्वरूप, नियमित अधिवेशनों की संख्या में कमी आने लगी।

१९६१ तक, मध्यप्रदेश एवं बेरार क्षत्रिय पंवार संघ सक्रिय रूप से कार्य करता रहा, लेकिन समय के साथ यह संघ अपनी पुरानी सक्रियता को बनाए रखने में असमर्थ रहा। फिर भी इस संघ का योगदान पंवार समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण रहा और इसने शिक्षा और समाज के उत्थान के लिए अपने कदम बढ़ाए।

6.1.7. अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासभा(१९६१ -२००७)

सन १९६१ में श्री भोलाराम जी पारधी की अध्यक्षता में ग्राम अतरी में छत्तीस कुल पंवार संघ की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई थी। इस बैठक में दो मुख्य मुद्दों पर चर्चा की गई थी। पहला, राज्यों के पुनर्गठन के बाद "मध्यप्रदेश एवं बेरार क्षत्रिय पंवार संघ" को पुनर्गठित करने का प्रस्ताव था। दूसरा, भोयर जाति के पंवार जाति के साथ एकीकरण के उनके मुख्य संगठन के प्रस्ताव पर विचार किया गया था। पंवार बहुल बालाघाट और सिवनी जिले मध्यप्रदेश राज्य में, तथा भंडारा जिला महाराष्ट्र राज्य में शामिल हो गया था, इसलिए एक नए संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। इसके चलते १९६१ में 'अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासभा' का गठन किया गया।

दूसरे मुद्दे, पंवार और भोयर जाति के एकीकरण के प्रस्ताव पर कोई सहमति नहीं बन पाई। इस पर श्री भोलाराम जी पारधी ने एक समिति के गठन का प्रस्ताव रखा, जो दोनों जातियों के इतिहास और संस्कृति का गहन अध्ययन करेगी, ताकि यह तय किया जा सके कि ये दोनों जातियाँ एक ही समाज हैं या अलग-अलग। इसके बाद ही

कोई विलिनीकरण पर सहमति हो सकेगी। लेकिन ऐसा कभी नहीं हो पाया और आज भी यह मुद्दा विवादस्पद बना हुआ है।

सन १९६५ में मेढ़ा नामक एक छोटे से गांव में कुछ लोगों द्वारा भोयर और पंवार जाति के विलिनीकरण पर चर्चा की गई। इस चर्चा में महासभा के पदाधिकारियों सहित उपस्थित पंवार जन ने इसका विरोध किया। राजनीतिक कारणों से कुछ नेताओं ने संख्या बढ़ाने के लालच में बिना इतिहास को जाने इस पर विरोध नहीं किया। इसके परिणामस्वरूप, दोनों संगठनों के इतिहास और संस्कृति पर कोई कार्य नहीं हुआ और इस पर कोई सहमति नहीं बन पाई।

समय के साथ, यह मुद्दा विचाराधीन और विवादस्पद बना रहा। कुछ लोगों ने इसे इस तरह प्रस्तुत किया कि दोनों जातियों के विलिनीकरण का प्रस्ताव पास कर लिया गया है, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसके बाद जब यह बात समाज में पहुंची तो सभी ने इसका व्यापक विरोध किया और खुद महासभा के पदाधिकारी भी इस पर सहमत नहीं थे। इसीलिए अगले बीस वर्षों तक पंवार महासभा अस्तित्वहीन सी हो गई।

सन १९८६ में तत्कालीन अध्यक्ष श्री पन्नालाल जी बिसेन ने इसे फिर से संगठित करने का प्रयास किया। १९८६ में संस्था द्वारा प्रकाशित भोजपत्र में यह सामने आया कि संस्था ने अपने पूर्ववर्ती संगठनों के उद्देश्यों के विपरीत लगभग १८ जातीय और जनजातीय समूहों को जोड़ने का अभियान शुरू किया, जो किसी न किसी रूप में मालवा के पंवार (परमार) राजाओं से संबंधित थे। लेकिन यह अभियान भी असफल रहा क्योंकि कोई भी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जैसे महासभा ने महाराष्ट्र के पावरा जनजाति को भी अपने समाज से जोड़ने का प्रयास किया, जो पूरी तरह से ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत था। खुद पावरा जनजाति ने इसे अस्वीकार कर दिया और वे इस अभियान में कभी भी शामिल नहीं हुए।

पंवार(पोवार) समाज अपने छत्तीस कुल क्षत्रिय संघ के रूप में सदियों से एक साझा संस्कृति के साथ रहते आए थे। उनके हमेशा से छत्तीस कुल ही थे, तो फिर दूसरे समाजों जिनकी कुल या गोत्र ब्रिटिश कालीन दस्तावेजों में सौ और भोजपत्र में १०८ बताये गए, वे छत्तीस कुल पंवार से एक कैसे हो सकते हैं? लेकिन पंवार महासभा की यह नीति, जिसमें विभिन्न संस्कृतियों वाली जातियों और समुदायों को जोड़ा गया, समाज की वास्तविक पहचान और ऐतिहासिक स्वरूप के साथ समझौता करने लगी थी। इसके कारण समाज अपनी भाषा और संस्कृति से दूर होने लगा था।

२००० के आस-पास, तत्कालीन अध्यक्ष श्री ज्ञानेश्वर टेम्भरे जी ने संस्था के पंजीकरण की प्रक्रिया के तहत इस संगठन के नाम में "पंवार" के स्थान पर "पवार" नाम से पंजीकरण की प्रक्रिया शुरू की, जो २००७ में पूरी हुई। इस प्रकार, 'अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासभा', २००७ में समाप्त हो गई और इसके स्थान पर 'राष्ट्रीय पवार क्षत्रिय महासभा' का गठन किया गया, जिसमें पंवारों के अलावा भोयर/भोयर पवार समाज के साथ फिर से विलिनीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई। उनके कुछ पदाधिकारियों को इस संगठन में स्थान दिया गया।

२०२० में बैहर में एक बैठक का आयोजन हुआ, जिसमें शाजापुर-देवास क्षेत्र में निवासरत परमार समाज को भी पंवारों के साथ विलिनीकरण का प्रस्ताव आया। हालांकि, समाज जनों ने इसका व्यापक विरोध किया। इसके बावजूद, महासभा के पदाधिकारियों ने बिना समाज के जनमत संग्रह के उस क्षेत्र के एक भंवरा नामक गांव में बैठक कर मेढ़ा गांव की बैठक की तरह ही एकतरफा घोषणा की कि पोवारों के साथ उनका विलिनीकरण किया गया है।

यह मुद्दा हमेशा से ही विवादस्पद रहा है कि कैसे पुरानी छत्तीस कुल पंवार समाज के साथ भोयर/भोयर पंवार और परमार समाज एक हो सकते हैं। क्योंकि ये तीनों जातियाँ अपने मूल निवास, इतिहास, विस्थापन, भाषा और संस्कृति के दृष्टिकोण से काफी भिन्न हैं। समाज जनों ने इनके किसी भी विलिनीकरण को अस्वीकार किया है, क्योंकि इनकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भिन्नताएँ काफी गहरी हैं।

अंततः, यह स्पष्ट है कि पंवार, भोयर/भोयर पवार और परमार समाज का एकीकरण एक जटिल और विवादस्पद विषय बना हुआ है। इसमें केवल संगठनात्मक पहलुओं की बात नहीं है, बल्कि समाज की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान को बनाए रखने का भी सवाल है। विभिन्न जाति जोड़ो अभियानों के बावजूद, महासभा समाज की वास्तविक जरूरतों और पहचान को समझने में असफल रही। जब संगठन के द्वारा विभिन्न जातियों के बीच विलिनीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया गया, तो यह स्पष्ट हुआ कि समाज में एकजुटता और पहचान को बनाए रखना कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। इसीलिए महासभा, पोवारों के सांस्कृतिक उत्थान में कभी भी सहायक नहीं रही।

6.1.8 अखिल भारतीय क्षत्रिय पोवार(पंवार) महासंघ (२०२०-वर्तमान तक)

१९६१ में राज्यों के पुनर्गठन के बाद अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासभा का गठन किया गया। हालांकि, इस संस्था ने पंवारों के स्वतंत्र अस्तित्व, गौरवशाली इतिहास और छत्तीस कुलीन पहचान को स्वीकार न करते हुए, उन्हें अन्य समुदायों के साथ जोड़ने की नीति अपनाई। यह नीति पंवार समाज के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप के विरुद्ध थी, जिसके परिणामस्वरूप इस महासभा ने बाद में पंवार समाज की ऐतिहासिक पहचान को भुला दिया। इस कारण यह संस्था छत्तीस कुल पंवारों की पहचान का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था नहीं रही।

श्री महेन्द्र पटले ने सदैव यह विचार प्रस्तुत किया कि छत्तीस कुल पंवारों का स्वतंत्र अस्तित्व और गौरवशाली इतिहास प्राचीन काल से रहा है, और इसे आज भी बनाए रखना चाहिए। उन्होंने इस विचार को आगे बढ़ाया और इस दिशा में लंबे समय से शोधकार्य किया है। पंवार(पोवार) समाज के पुरातन अस्तितत्व को बनाए रखने और स्वतंत्र रूप से उसके उत्थान के लिए प्राचीन छत्तीस कुलीन संघ को पुनः सक्रिय करने की आवश्यकता महसूस की गई।

इसी दिशा में, श्री ऋषि बिसेन ने यह प्रस्ताव रखा कि राष्ट्रीय स्तर पर प्राचीन छत्तीस कुलीन पंवार(पोवार) संगठन का पुनर्गठन किया जाए, जिससे पंवार समाज की ऐतिहासिक पहचान और गौरव को पुनः स्थापित किया जा सके। इस प्रस्ताव के अनुसार, ९ जून २०२० को श्री नरेश कुमार गौतम ने "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार(पोवार) महासंघ" महासंघ के नींव का प्रस्ताव रखा प्रस्ताव रखा, और इसी तिथि को इस महासंघ की स्थापना हुई।

छत्तीस कुल पंवारों की सबसे बड़ी संस्था "मध्यप्रदेश एवं बेरार क्षत्रिय पंवार संघ" अब "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार(पोवार) महासंघ" के रूप में कार्य कर रही है। २०२० में इस संगठन का विधिवत गठन किया गया, जिसमें डॉ. विशाल जी बिसेन को प्रथम राष्ट्रीय अध्यक्ष नियुक्त किया गया। श्रीमती बिंदु बिसेन को राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, श्री नरेश कुमार गौतम को महासचिव, श्री रणदीप बिसेन को कोषाध्यक्ष तथा श्री शेखराम जी एडेकर, श्री राजेश जी बिसेन और श्री ऋषिकेश जी गौतम को सदस्य के रूप में नियुक्त कर संस्था का विधिवत पुनर्गठन किया गया।

इसके पश्चात अन्य सदस्यों को जोड़कर संगठन का विस्तार किया गया। वर्तमान में यह महासंघ छत्तीस कुल पंवारों की सबसे बड़ी संस्था है, जिसका उद्देश्य

केवल समाज का उत्थान करना नहीं, बल्कि इसकी संस्कृति, भाषा और पुरातन गौरवशाली इतिहास, नाम एवं मूल पहचान को सुरक्षित एवं संरक्षित रखना भी है।

इस महासंघ के मुख्य उद्देश्यों में प्राचीन सामाजिक छत्तीस कुल पंवारों की पुनः स्थापना, पोवारी(पंवारी) भाषा एवं संस्कृति का संरक्षण तथा समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए कार्य करना शामिल है। साथ ही, यह महासंघ पंवारों के गौरवशाली इतिहास के प्रति समाज में जागरूकता उत्पन्न करने हेतु सक्रिय है, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ इस समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर को समझ सकें और उससे जुड़ाव अनुभव करें। वर्तमान में यह संस्था पंवार समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान हेतु विभिन्न पहल कर रही है।

6.1.9 गोंदिया अधिवेशन: इक्कसवी सदी में छत्तीस कुल के पोवार/पंवार क्षत्रिय समाज का प्रथम महाअधिवेशन

संस्कृति का विकास कोई एक क्षण का कार्य नहीं होता, इसलिए उसका संरक्षण और संवर्धन अत्यंत आवश्यक है। संस्कृति का पतन समाज के नैतिक मूल्यों के पतन के समान होता है, और चाहे जितनी भी भौतिक समृद्धि प्राप्त हो जाए, वास्तविक समृद्धि तभी कही जाएगी जब सांस्कृतिक और भौतिक समृद्धि का समुचित संतुलन हो।

ऐतिहासिक पोवारी संस्कृति, जो आज भी हमारे गाँवों और हृदयों में जीवित है, उसे समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना आवश्यक है। तभी हम आने वाली पीढ़ियों को सनातनी पोवारी संस्कृति से परिचित करा पाएँगे। इसी उद्देश्य को लेकर समाज के प्रबुद्ध जनों द्वारा "अखिल भारतीय क्षत्रिय पोवार, पंवार महासंघ" का गठन ०९ जून २०२० को किया गया। इस संगठन के माध्यम से छत्तीस कुल पंवार, पोवार समाज का प्रथम महाअधिवेशन १२ दिसंबर २०२१ को पोवार नगरी गोंदिया में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन का उद्देश्य समाज के सर्वांगीण उत्थान हेतु विचार-विमर्श करना तथा पुरातन सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करना था।

मालवा राजपूताना से अठारहवीं सदी के आरंभ में आए छत्तीस क्षत्रिय कुलों में से बालाघाट, भंडारा, सिवनी और गोंदिया जिलों में तीस कुल स्थायी रूप से बस गए, जबकि शेष छह कुल संभवतः युद्धोपरांत लौट गए। पोवार समाज में कुलों का विशेष महत्व होता है और विवाह केवल अपने कुलों में ही होते हैं। इन कुलों में प्रमुख हैं, अम्बुले, कटरे, कोल्हे, गौतम, चौहान, चौधरी, जैतवार, ठाकुर, ठाकरे, टेम्भरे,

तुरकर, तुरुक, पटले, परिहार, पारधी, पुण्ड, पुंडे, बघेले, बघेल, बिसेन, बोपचे, भगत, भैरम, एडे, भोयर, राणा, राहांगडाले, रिणायत, शरणागत, सहारे, सोनवाने, हनवत, हनवते, हरिनखेड़े और क्षीरसागर।

इन छत्तीस कुलों की परंपरा और पहचान को सुरक्षित रखने हेतु यह महासंघ कटिबद्ध है। गोंदिया अधिवेशन में समाज की ऐतिहासिक परंपराओं के संरक्षण, 'पोवार' और 'पंवार' जैसे पुरातन नामों के संवर्धन हेतु निरंतर कार्य करने का आह्वान किया गया। इन कुलों द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'पोवारी' है, जो केवल इसी समाज में बोली जाती है। अधिवेशन में यह प्रयास किया गया कि संपूर्ण कार्यक्रम पोवारी भाषा में संपन्न हो, और यह लक्ष्य सफलतापूर्वक प्राप्त किया गया।

क्षत्रिय पोवार समाज अपनी सनातनी पोवारी संस्कृति के साथ सभी समाजों से एकजुट होकर देश की एकता और अखंडता के लिए सदैव कार्य करता रहा है, साथ ही अपनी ऐतिहासिक और मूल संस्कृति के संरक्षण हेतु भी सतत प्रयासरत है। क्षत्रिय वैभव और सनातनी संस्कारों को संजोते हुए, पोवार समाज सतत विकास की दिशा में अग्रसर है। समाज की इस गौरवशाली परंपरा को सुरक्षित रखने के लिए पोवार महासंघ ने इसे अपने मुख्य उद्देश्यों में सम्मिलित किया है।

छत्तीस राजपूतों के इस संघ को वैनगंगा क्षेत्र में 'पोवार' और 'पंवार' नामों से जाना जाता है। इनमें कुछ प्रमार वंशीय हैं और कुछ उनके संबंधी, किंतु सभी मालवा राजपूताना के राजाओं को अपने आदर्श मानते हैं। इसी कारण इस छत्तीस क्षत्रिय संघ को महाराजा भोजदेव के कुलनाम 'पंवार' से पहचाना जाता है। गोंदिया अधिवेशन में समाज ने अपने आदर्श महाराजा भोजदेव एवं सम्राट विक्रमादित्य को स्मरण करते हुए उनके आदर्शों पर चलने का आह्वान किया।

सदियों से यह पोवार समाज अपनी ऐतिहासिक क्षत्रिय विरासत को हर चुनौती के बीच बचाए हुए है। उनकी पोवारी संस्कृति आज भी अपने तीज, त्योहारों और नेंग, दस्तूरों में पूर्ण रूप से जीवित है। अधिवेशन के सभी वक्ताओं ने इस सांस्कृतिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सतत कार्य करने का संकल्प लिया और पूरे समाज से इसके लिए जागरूक होने का आग्रह किया।

वैनगंगा क्षेत्र में बसने के बाद इन क्षत्रियों ने कृषि को अपना मुख्य व्यवसाय बनाया और गाँवों में स्थायी रूप से निवास करने लगे। इन्हीं गाँवों में हमारी ऐतिहासिक सनातनी पोवारी संस्कृति के दर्शन होते हैं। पोवारी के छोटे-छोटे रीति-रिवाज सभी के

हृदय को आकर्षित करते हैं और हर कोई समय मिलने पर अपने मूल गाँव लौटने की इच्छा रखता है। समाज में कुलों का विशेष महत्व होता है। परिचय पूछने का पारंपरिक तरीका "तुम्ही कोन कुरया आव रे भाऊ?" आज भी जीवंत है।

हर कुल का अपना गौरवपूर्ण इतिहास है, छठी, बारसा, करसा भरना, हल्दी, अहेर, दशहरे में महरी बड़ी का दस्तूर, देव उतारने जैसे हर नेंग, दस्तूर में कुलों की भूमिका विशेष होती है। यह विरासत उसी रूप में अगली पीढ़ी तक पहुँचे, यह हमारा सांस्कृतिक दायित्व है। गोंदिया अधिवेशन विशेष इसीलिए था क्योंकि इसमें समाज ने न केवल आह्वान किया, बल्कि स्वयं भी इस उत्तरदायित्व को निभाने का संकल्प लिया।

देवघर की चौरी प्रत्येक पोवार की आस्था का केंद्र होती है, और शस्त्रपूजा पंवारी वैभव का प्रतीक है। "आमी छत्तीस कुर को पोवार आजन, असो नहानपन लका सुन रही सेजन" जैसी पंक्तियाँ हमारी पीढ़ियों से चली आ रही धरोहर को आज भी जीवंत बनाए हुए हैं। हमारे रीति, रिवाजों का वैज्ञानिक आधार है, और यह परंपराएँ हमारे पूर्वजों की हजारों वर्षों की देन हैं। अब आवश्यकता है इस धरोहर को मूल रूप में सहेजने, संजोने और अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने की।

पोवारी गीतों में हमारे इतिहास की झलक मिलती है। इस पोवारी अधिवेशन में गीतों के माध्यम से हमारे पूर्वजों की परंपराओं को पुनः स्मरण किया गया और उन्हें यथावत रखने का प्रयास किया गया। पोवारी बोली और संस्कृति ही छत्तीस कुल के पंवारों की अपनी विशिष्ट पहचान है, जिसे संरक्षित रखना प्रत्येक पोवार का उत्तरदायित्व है। "क्षत्रिय पोवार, पंवार महासंघ" द्वारा छत्तीस कुल के पोवारों का प्रथम महाअधिवेशन समाज द्वारा किया गया एक सराहनीय प्रयास है।

6.1.10 पंवार (पोवार) समाज के मुख्य संगठन और समितियाँ

अठारहवीं सदी के प्रारंभ में, जब मराठा साम्राज्य दक्षिण से उत्तर की ओर अपने विस्तार की प्रक्रिया में था, उसी कालखंड में नगरधन और नागपुर क्षेत्र में छत्तीस कुल पंवार संघ की स्थापना हुई। यह कोई साधारण घटना नहीं थी, बल्कि यह उस क्षत्रिय गर्व की पुनः स्थापना थी, जो मालवा और राजपूताना की धरती पर पंवारों (पोवारों) ने सदियों तक जिया था। यह संघ समाज की ऐतिहासिक चेतना, संगठन शक्ति और सांस्कृतिक विरासत का पुनर्जागरण था, जिसने आने वाले युगों में वैनगंगा क्षेत्र के पावन भूभाग को छत्तीस कुल पंवारों का स्थायी निवास बना दिया।

यह समय केवल स्थानांतरण का नहीं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर को संजोने, सामाजिक ताने-बाने को पुनः बुनने और राजनीतिक चेतना को जागृत करने का समय था। इसी पृष्ठभूमि में, उन्नीसवीं सदी के आरंभ में पंवार जाति सुधारणी सभा की स्थापना हुई, जो समाज के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ साबित हुई। इस सभा ने केवल संगठन को दिशा ही नहीं दी, बल्कि पंवार समाज में एक नई चेतना का संचार किया, जिससे समाज आत्मगौरव और आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ।

पंवार जाति सुधारणी सभा के प्रयासों से समाज के प्रत्येक गांव, नगर और क्षेत्र में समितियों के गठन की मुहिम शुरू हुई। इसका उद्देश्य था, हर पोवार परिवार तक संगठन की शक्ति पहुँचाना, समाज के युवाओं को दिशा देना, और हमारी सनातनी पंवारी संस्कृति को पुनः जाग्रत करना। आज, लगभग १०० से भी अधिक संस्थाएँ और समितियाँ सक्रिय हैं, जिनमें से अनेक राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रही हैं, तो कई स्थानीय स्तर पर समाज सेवा, शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति और सांस्कृतिक आयोजन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दे रही हैं।

वर्तमान में, छत्तीस कुल पंवार समाज के लोग एक हजार से अधिक नगरों और गांवों में संगठित रूप से निवास कर रहे हैं। यह मात्र संख्या नहीं है, बल्कि यह उस ऐतिहासिक यात्रा की पहचान है, जिसमें हमारी संस्कृति, परंपरा और कुलीन गौरव आज भी जीवित हैं। इन संगठनों ने समाज में शिक्षा, सामाजिक समरसता, संस्कृति, आर्थिक जागरूकता और आत्मनिर्भरता को मजबूती से स्थापित किया है।

आज पंवार समाज का संगठनात्मक विकास एक नई ऊँचाई की ओर बढ़ रहा है। यह केवल संगठन का विस्तार नहीं, बल्कि उस ऐतिहासिक जिम्मेदारी का निर्वहन है, जिसे हमारे पूर्वजों ने हमारे कंधों पर सौंपा था अपनी पंवारी संस्कृति, अपने कुलों की मर्यादा और क्षत्रिय गरिमा की रक्षा।

नीचे वे प्रमुख संस्थाएँ और समितियाँ दी जा रही हैं, जिन्होंने इस ऐतिहासिक धरोहर को संभालते हुए समाज को संगठित और जागरूक बनाने में अमूल्य योगदान दिया है:

१. पंवार राममंदिर ट्रस्ट, बैहर, जिला बालाघाट
२. अखिल भारतीय क्षत्रिय पोवार/पंवार महासंघ, भारत
३. क्षत्रिय पंवार समाज, संगठन, सिवनी
४. राजाभोज क्षत्रिय पंवार सांस्कृतिक समिति, लालबर्रा

५. क्षत्रिय पंवार संगठन, बिरसा, जिला बालाघाट
६. राजाभोज पोवार समाज समिति तुमसर
७. राजाभोजसमिती, कुऱ्हाडी,तह. गोरेगांव, जि. गोंदिया
८. श्रीगणेश पंवार क्षत्रिय समाज समिति, वारासिवनी
९. पंवार क्षत्रिय समाज समिति मंगेझरी, वारासिवनी
१०. पंवार शिक्षा प्रसारसमिति,बरघाट, जि. सिवनी
११. वैनगंगा क्षत्रिय पंवार समाज, संगठन छिंदवाडा
१२. क्षत्रिय पंवार संगठन जबलपुर
१३. क्षत्रिय राजा भोज पोवार समाज संगठन, गोंदेखारी,भंडारा
१४. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन,इंदौर (म.प्र.)
१५. पोवार समाज संगठन, पुणे
१६. वैनगंगा क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, भोपाल
१७. क्षत्रिय पोवार समाज संगठन, नवेगांव
१८. राजा भोज स्मारक समिति, बालाघाट
१९. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, नेवरगांव, वारासिवनी
२०. क्षत्रिय पंवार समाज, बालाघाट
२१. पंवार मांदी समिति, बालाघाट
२२. राजा भोज पंवार युवा संगठन, बालाघाट
२३. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, खैरलांजी
२४. सम्राट भोज पंवार संगठन, भटेरा चौकी, बालाघाट
२५. क्षत्रिय पंवार(पोवार) समाजोत्थान संस्थान, बालाघाट
२६. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, मलाजखंड
२७. क्षत्रिय पंवार समाज, संगठन, मांझापुर, जिला-बालाघाट
२८. क्षत्रिय पोवार समाज, संघटना, मुण्डीपार(गोरेगाँव)
२९. पंवार जन कल्याण सेवा समिति, रायपुर
३०. पंवार क्षत्रिय नगर संगठन, बैहर, जिला बालाघाट
३१. पंवार क्षत्रिय समाज संगठन, परसवाड़ा, बालाघाट
३२. क्षत्रिय पंवार संगठन, चांगोटोला, जिला बालाघाट
३३. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, कटंगी, जिला बालाघाट

३४. राजा भोज क्षत्रिय पंवार समाज, भरवेली, बालाघाट
३५. पंवार समाज सामाजिक विकास समिति, कोसमारा(किरनापुर)
३६. क्षत्रिय पंवार समाज संगठन,किरनापुर, बालाघाट
३७. पंवार क्षत्रिय समिति, राजनांदगाव
३८. क्षत्रिय पंवार समाज, छत्तीसगढ़
३९. पंवार क्षत्रिय संगठन, कवर्धा
४०. पंवार क्षत्रिय समाज, गुढ़ियारी
४१. क्षत्रिय पंवार संगठन, बीरगांव, रायपुर, बालाघाट
४२. क्षत्रिय पंवार कल्याण समिति, ठाणे
४३. क्षत्रिय पंवार समाज वेलफेयर एसोसिएशन, तुमसर
४४. कर्नाटक पंवार समाज, बैंगलोर
४५. क्षत्रिय पंवार संगठन, दिल्ली
४६. ग्रामीण पोवार समाज संगठन, गोंदिया
४७. राजा भोज समिती, कुऱ्हाडी, तह. गोरेगांव, जि. गोंदिया
४८. पोवार समाज संगठन, यवतमाल
४९. भारतीय पोवार संघ, भंडारा.
५०. पोवार समाज संगठन, तिरोडा
५१. राजा भोज पोवार संगठन, थानेगांव तिरोड़ा
५२. प्रगतीशील शिक्षण संस्था, गोंदिया
५३. राजा भोज बहुउद्देशिय संस्था, सालेभाटा, जि. भंडारा
५४. पंवार समाजबहुउद्देशिय संस्था, गंगानगर, नागपुर
५५. क्षत्रिय राजाभोज सांस्कृतिक पर्यटन केंद्र, डव्वा
५६. पोवार समाज संगठन, भानपुर
५७. राजाभोज पोवार समाज समिति,
५८. क्षत्रिय राजाभोज पोवार समाज संगठन, टेमनी, गोंदिया
५९. पंवार प्रगतीशील मंच, गोंदिया
६०. क्षत्रिय पोवार समाज संगठन, मोहगांव (तिल्ली), ता.गोरेगांव ,जि. गोंदिया
६१. पोवार समाज संगठन समिति, दासगांव

६२. राजा भोज समिति, उसर्रा, जि. भंडारा
६३. राजाभोज समिती रेंगेपार, तह. साकोली, जि. भंडारा
६४. क्षत्रिय पोवार समाज संगठन, भजियापार, गोंदिया
६५. युवा क्षत्रिय पोवार समाज संगठन, येरली,जि. भंडारा
६६. पंवार युवक संगठन, नागपुर.
६७. पश्चिम नागपूर पोवार समाज,बहुउद्देशिय संगठन, नागपुर
६८. पोवार समाज संगठन, पारडी, नागपुर.
६९. क्षत्रिय पोवार राजाभोज बहुद्देशिय संस्था, हिंगणा, नागपुर.
७०. अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, नागपुर.
७१. चक्रवर्ती राजाभोज मानवसेवा बहुउद्देशिय संस्था नागपुर
७२. पोवार समाज संगठन, खसाळा-मसाळा, नागपुर.
७३. चक्रवर्ती राजाभोज क्षत्रिय पंवार समाज संगठन, नागपुर
७४. राजाभोज पोवार समाज संघ, खापरखेड़ा, नागपुर
७५. क्षत्रिय राजाभोज पंवार समाज,बहुउद्देशिय संस्था चंद्रपुर.
७६. पंवार क्षत्रिय संघ, भिलाई, दुर्ग
७७. पंवार क्षत्रिय संघ, रायपुर
७८. एकता क्षत्रिय पंवार समिति, चिकमारा, बालाघाट
७९. क्षत्रिय पंवार महासभा, कटंगी, जिला बालाघाट
८०. माँ गड़कालिका पंवार महिला संगठन,बालाघाट
८१. राजाभोज पंवार समिति,लाँजी
८२. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल जत्ता, बालाघाट
८३. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, लिंगा, बालाघाट
८४. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, उकवा, बालाघाट
८५. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, सरेखा, बालाघाट
८६. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, भोरवाही, बालाघाट
८७. क्षत्रिय पंवार समाज उपखंड समिति, खरपड़िया, परसवाड़ा, जिलाबालाघाट
८८. पंवार समाज उपखण्ड समिति, चंदना, परसवाड़ा
८९. पंवार क्षत्रिय संगठन, सर्कल मोरिया(कुम्हारी), बालाघाट

९०. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, मंडई, बालाघाट
९१. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, नगरवाड़ा
९२. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, चरेगांव
९३. पंवार क्षत्रिय समाज सर्किल, मंडई, बालाघाट

अतिरिक्त रूप से, अनेक नगरों और ग्राम स्तर पर समाज की संस्थाओं और समितियों का गठन हो चुका है, लेकिन समयाभाव और जानकारी के अभाव के कारण ऐसी कई सूचियाँ प्राप्त नहीं हो सकीं। अतः यहाँ दिए गए नामों के अतिरिक्त और भी नाम संभवतः होंगे।

6.2 पंवार(पोवार) समाज के कुछ अग्रतम दीपस्तम्भ

मध्यभारत में आने के बाद पोवार राजपूतों की सबसे बड़ी उपलब्धि उनके द्वारा नागपुर राजाओं के साथ युध्दों में विजय प्राप्त करना रही थी। इनकी प्रथम एवं सबसे बड़ी उपलब्धि, अपने अदम्य साहस से गोंड शासक की मदद कर उसे दिल्ली के मुग़ल शासक औरंगजेब से मुक्त कराया। दूसरी प्रमुख उपलब्धि नागपुर के भोसले राजाओं को मध्यभारत में बसने और उनके देशव्यापी विस्तार में अभूतपूर्व सैन्य एवं प्रशासनिक सहयोग करना था। नागपुर राजाओं के साथ उनका सहयोग समझौता था और इसके तहत उन्हें वैनगंगा क्षेत्र में विभिन्न सैन्य अन्य प्रशासकीय पदों सहित भूमि प्राप्त हुई। अपने मेहनत और परिश्रम से इस क्षेत्र में पंवारों के द्वारा उन्नत कृषि की शुरुवात कर इसके विकास में सहयोग करना इनकी मध्यभारत में तीसरी बड़ी उपलब्धि थी।

स्वतंत्रता के बाद समाज में आधुनिक शिक्षा का तेजी से विस्तार हुआ और समाज ने हर क्षेत्र में अभूतपूर्व तरक्की की। कृषि के साथ राजनीति, विभिन्न शासकीय सेवा, बैंकिंग, विभिन्न सेवा क्षेत्र, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, उद्धमी, विभिन्न व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियाँ जैसे अनेक क्षेत्र में जिसमें समाजजन निरंतर तरक्की कर रहे हैं। नीचे सूची में विभिन्न क्षेत्रों में अग्रदूत रहे समाजजनों के नाम हैं। इसमें कई और भी कई नाम शामिल हो सकते हैं। ये विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से संकलित सूची हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक सख्शियतों का जीवन परिचय भी इस अध्याय में शामिल कर रहे हैं।

6.2.1 पोवार(छत्तीस कुल पंवार) समाज के अग्रतम दीपस्तम्भ

क्र.	उपलब्धि	नाम	वर्ष
१.	छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज संघ	नगरधन(रामटेक)	1700
२.	जमींदारी	महागांव जमींदारी तह. साकोली, जि. भंडारा तथा वड़द जमींदारी, तह. आमगांव जि. गोंदिया को नागपुर के गोंड राजा बख्त बुलंद द्वारा पुरस्कृत	1700
३.	देशमुखी	स्व. श्री यशवंता कटरे, त. तुमसर जि. भंडारा	1863
४.	लेखक	स्व. श्री लखाराम पंवार (तुरकर) दोंदीवाडा, जि. सिवनी, किताब- 'पंवार धर्मोपदेश'	1892
५.	सामाजिक संस्था	'पंवार जाति सुधारणी सभा' स्व. श्री केशव हिंद जीवना पटेल बिसेन, ग्रा. रोशना जि. बालाघाट	1901
६.	स्नातक पदवीधर (बी.ए)	स्व. श्री टुंडीलाल पंवार(तुरकर) दोंदीवाडा,जि.सिवनी,	1926
७.	राजपत्रित अधिकारी	रायबहादूर-डिप्टी डायरेक्टर (कृषि)	1926
८.	महिला पदवीधर	श्रीमती स्व. निला दयानंद हरिणखेडे, गोडेगांव, वारासिवनी, जि. बालाघाट	1952
९.	मंदिर	राममंदिर रामटेक, पुनरुद्धार राममंदिर, रामपायली पंवार श्रीराम मंदिर, सिंहारपाठ, बैहर, बालाघाट	1739-50 1750-60 1911
१०.	छात्रावास	पोवार बोडींग (छात्रावास) प्रणेता-स्व. श्री बी. एम. पटेल, गोंदिया	1951

११.	प्रथम पंजीकृत सामाजिक संस्था	पंवार राममंदिर ट्रस्ट, बैहर, ज़िला बालाघाट	1978
१२.	विद्यालय	जनता हायस्कूल, चुटिया, संचालक प्रगतिशिल शिक्षण संस्था, गोंदिया, तत्कालिन अध्यक्ष, - स्व. मुन्नालाल चौव्हाण, गोंदिया	1995
१३.	धर्मशाला	पंवार धर्मशाला महाराजपुर, मंडला, तत्कालिन अध्यक्ष स्व. श्री मुन्नीलाल पटले लिंगा, परसवाडा, त. बैहर, जि. बालाघाट	1996
१४.	समाज भवन	पंवार विद्यार्थी भवन, नागपुर (सभागृह, अतिथिगृह, विद्यार्थी कक्ष तथा लॉन) निर्माण: पंवार युवक संगठन, नागपुर	1996
१५.	अष्टधातु से बनी सबसे बड़ी राजा भोज प्रतिमा	पंवार राममंदिर ट्रष्ट बैहर के तत्वाधान में बनी राजा भोज स्मारक समिति,अध्यक्ष सही प्रह्लाद कन्हैया लाल पटले और समस्त कार्यकारिणी के सहयोग से पंवार राममंदिर प्रांगड़, सिहारपाठ पहाड़ी बैहर, जिला बालाघाट	2018
१६.	अधिवक्ता	स्व. बी. एम. पटेल, गोरेगांव,	1927
१७.	महिला अधिवक्ता	श्रीमती भगवती तुरकर, गोंदिया	1988
१८.	पोलिस अधिकारी	स्व.श्री.दौलतसिंह पंवार (तुरकर) टिंगीपुर, त. बैहर, जि. बालाघाट (Dy.S.P.)	1926
१९.	प्रथम महिला डी. एस. पी.	सुश्री अंजुलता पटले, बालाघाट	2006
२०.	नगराध्यक्ष	स्व.श्री माधोराव देशमुख, (नगराध्यक्ष) नगरपालिका तुमसर, जि. भंडारा	1928-49

२१.	समाज पत्रिका	'पंवार क्षत्रिय सदेश', प्रकाशक- नूतन पंवार विद्यार्थी संघ, नागपुर सम्पादन- स्व. श्री ब्रजमोहन रहांगडाले, तह, बैहर, जि. बालाघाट	1943
२२.	लोकसभा सदस्य(MP)	स्व. चिंतामनराव गौतम, जेवनारा, लांजी, बालाघाट	1952-57
२३.	विधानसभा सदस्य (एम.एल.ए)	स्व. तेजलाल टेंभरे, बालाघाट (लांजी क्षेत्र) स्व. पी.डी. रहांगडाले, फुक्कीमेंटा, गोरेगांव क्षेत्र, गोंदिया, स्व. श्री थानसिंह बिसेन, हुड़कीटोला, वारासिवनी क्षेत्र, बालाघाट	1952-57
२४.	एकपात्री नाटककार स्वर्णपदक पृथ्वीराज कपूर के द्वारा पुरस्कृत	स्व. श्री यशवंत प्रेमलाल राणे खाडीपार, जि. गोंदिया, नाट्य- पृथ्वीराज की आंखो, कश्मीर हमारा है, शहीद भगतसिंग, खून का बदला आदि	1954-84
२५.	नौसेना सेवा	लेफ्टीनेंट राजकुमार चौधरी, पालडोंगरी, गोंदिया	1954
२६.	चिकित्सक(एम.बी.बी.एस)	स्व. डॉ. धनंजय बिसेन, बेलगांव, बालाघाट स्व. डॉ योगेश कटरे, डव्वा, गोंदिया	1959-60
२७.	महिला चिकित्सक	डॉ. सौ. किरण कटरे, सिवनी	1973
२८.	महिला शल्यचिकित्सक MS	डॉ. कु. नीलम प्रेमसिंह तुरकर, नेत्रशल्य चिकित्सक, Cataract & OPCO Paediatric Surgeon,	1980
२९.	अभियंता	श्री विष्णुकुमार बिसेन, बी.टेक., लेडेझरी, बालाघाट	1960
३०.	महिला अभियंता	सौ. स्मिता अमुले/भगत, बी.टेक. भिलाई	1990
३१.	भारतीय वन सेवा अधिकारी (IFS)	पद्मभूषण (2013) डॉ. हेमेन्द्रसिंह तुरकर पंवार, DFO-1966, IFS निदेशक-भारतीय	1960

		वन्यप्राणी संस्थान (सेवानिवृत्त) टिंगीपुर, निवास-नोएडा, दिल्ली	
३२.	महिला भारतीय वन सेवा अधिकारी (IFS)	डॉ. किरण दिनेश बिसेन, (भा.व.से) खामघाट, बालाघाट,	2009
३३.	थलसेना अधिकारी	स्व. श्री मेजर टेकनकुमार देशमुख, कमाडिंग ऑफिसर, सेलवा, बालाघाट	1960
३४.	भारतीय सेना अकादमी	स्व. श्री मेजर हरिप्रसाद गौतम, उपमहाप्रबंधक, अंबाझरी आयुध निर्माण	1963
३५.	विदेश प्रवासी	स्व. श्री डॉ. दुलीचंद बिसेन, खमारिया, प्राध्यापक, ज.ने.कृ.वि. जबलपुर कृषि अनुसंधान पी.एच.डी. हेतु अमेरिका प्रस्थान	1965
३६.	भारतीय जियोलॉजीकल सर्विस (आय.जी.एस)	श्री गोरेलाल रहांगडाले, खैरी, सिवनी, जियोलॉजी, एम.टेक. जियोलॉजीकल सर्व्हे ऑफ इंडिया-उपमहानिदेशक (से.नि.) मध्यभारत विभाग, नागपुर	1966
३७.	वास्तुशिल्प शास्त्री	स्व. श्री रामदयाल ईश्वरदयाल पटले, हरदोली, अंबागड, जि. भंडारा	1968
३८.	महिला वास्तुशिल्प शास्त्री	सौ. विनिता संदीप सहारे, बालाघाट, कु. विद्या गौतम, मुंबई	1991
३९.	डी.लिट्. पदवीधर	आचार्य पी.एच.डी. पदवीधर स्व. श्री डॉ.दुलीचंद बिसेन, प्राध्यापक कृषि, खमरिया (अरी) जि. सिवनी	1969
४०.	मंत्री	स्व. प्रतापलाल बिसेन (रोशना) बालाघाट, राज्यमंत्री, म.प्र. शासन	1969
४१.	विधानसभा अध्यक्ष	स्व. तेजलाल टेम्भरे, देवलगांव, बालाघाट	1972

४२.	उच्च महाविद्यालयीन प्राचार्य	डॉ. धनपाल जयपाल टेंभरे, मोरवाई, गोदिंया, नेहरू हिन्दी कला, वाणिज्य, विज्ञान (स्नातक-स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नेवजाबाई हितकारीनी महाविद्यालय ब्रम्हपूरी,जि. चंद्रपूर	1976-93
४३.	न्यायाधीश एवं जिला न्यायाधीश	श्री राधेश्याम बापूजी पटले, मोहगाव (ख.), तह. तुमसर, जिला भंडारा 1^{st} क्लास मजिस्ट्रेट, नागपुर, 1981 डिस्ट्रीक्ट जज, सोलापुर, से.नि. 2012	1981
४४.	विदेशी उद्योजक (व्यवसाय)	इंजि. रविन्द्र प्रेमलाल रहांगडाले, बटाना, गोदिया, उद्योग 'फिएटव्हिल ट्रांसफारर्मस कंपनी' फिएटव्हिल, नार्थ करोलिना, अमेरिका	1988
४५.	स्नातक स्नातकोत्तर महाविद्यालय	जगत कला, वाणिज्य तथा विज्ञान महाविद्यालय, गोरेगांव, जि. गोदिंया संस्था जगत शिक्षण संस्था, संस्थापक श्री जगत राहांगडाले मोरवाई	1992
४६.	NDA तथा INS अधिकारी	ले. कमांडर श्री महेश राहंगडाले, जेवनारा, जि. सिवनी तथा ले. कमांडर श्री समीर चौधरी, सिवनी	1994
४७.	भारतीय नेवी सर्विसेस	ले कमांडर श्री समीर चौधरी, सिवनी	1994
४८.	वायुसेना (एयर फोर्स) अधिकारी	लेफ्टीनेंट डॉ उमाकांत मदनलाल चौधरी, विंग कमांडर, एम.टेक., पी.एच.डी, वारासिवनी, (से.नि.चीफ इंजिनियर, भोपाल)	1971
४९.	भारतीय विदेश सेवा अधिकारी(IFS)	श्री शिल्पक अमुले	2001

५०.	भारतीय आयुध कारखाना अधिकारी(IOFS)	श्री सुमित पटले, महादुली, जि. बालाघाट	2005
५१.	भारतीय राजस्व सेवा अधिकारी (IRS, C&CS)	डॉ. दिनेश बिसेन, खामघाट, बालाघाट	2008
५२.	भारतीय राजस्व सेवा अधिकारी (IRS, Income Tax)	श्री ऋषि बिसेन, खामघाट, बालाघाट	2010
५३.	भारतीय पुलिस सेवा अधिकारी (IPS)	श्री परिश अनिल देशमुख, गोदिंया	2010
५४.	भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी (IAS)	श्री सौरभ झामसिंह पारधी, चुलोद, गोदिंया	2011
५५.	भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी महिला(IAS)	कु. शितला पटले, बालाघाट	2013
५६.	DANIPS अधिकारी	श्री ढालसिंह पटले, बालाघाट	2010
५७.	वाणिज्य कर अधिकारी (MPPSC)	श्री योगेन्द्र टेम्भरे, खरीपाट, बरघाट	2006
५८.	प्रथम महिला डिप्टी कलेक्टर	सुश्री लता शरणागत, खरपड़िया, बालाघाट	2006
५९.	विदर्भ रणजी क्रिकेट	श्री यादवेन्द्र भरतलाल टेम्भरे, माजरी कोल माईन्स, चंद्रपुर	2015

६०.	कुलपति (जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय)	श्री प्रदीप बिसेन, ग्राम-लेण्डेझरी, तह. व जिला- बालाघाट	2017
६१.	टॉप सीईओ	श्री योगेन्द्रनाथ रहांगडाले, प्रेजिडेंट एंड चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर, एम्पायर डाई कास्टिंग, अमेरिका	2018
६२.	प्रथम पोवारी काव्य संग्रह	गीत गंगा, कवी श्री यादोराव चौधरी, गोंदिया	1998
६३.	पोवारी भाषा में प्रथम गद्य संग्रह	पंवार गाथा स्व श्री जयपाल सिंह जी पटले, नागपुर	2005
६४.	प्रथम पोवारी पत्रिका	पोवारी उत्कर्ष, द्वारा : पोवारी साहित्य एवं सामाजिक उत्कर्ष संस्था के द्वारा	2020
६५.	प्रथम पोवारी इ-मासिक पत्रिका	झुँझुरका, संपादक – गुलाब बिसेन संपादक मंडळ – रणदीप बिसने, महेंद्र रहांगडाले, महेंद्र कुमार पटले, उमेंद्र बिसेन	2021
६६.	प्रथम महिला सांसद	श्रीमती भारती पारधी, बालाघाट-सिवनी	2024

6.2.2 हमारे जन प्रतिनिधि (सांसद/ विधायक)

क्र.	नाम एवं विधानसभा/लोकसभा क्षेत्र	पद
1.	एड. चिंतामनराव गौतम, बालाघाट	सांसद
2.	श्री भोलाराम पारधी, बालाघाट	सांसद
3.	एड. श्री तेजलाल टेंभरे, परसवाडा, बालाघाट	विधायक/वि. स. अध्यक्ष, केबि. मंत्री
4.	एड. श्री. पी. डी. रहांगडाले, गोरेगांव, जि. गोंदिया	विधायक
5.	श्री थानसिंह बिसेन, वारासिवनी, जि. बालाघाट	विधायक
6.	श्री जागेश्वरनाथ बिसेन, बरघाट, जि. सिवनी	विधायक
7.	श्री ओझीभाऊ रहांगडाले, कंटगी, जि. बालाघाट	विधायक

8.	श्री प्रतापलाल बिसेन, परसवाडा, जि. बालाघाट	विधायक/राज्य मंत्री, म.प्र. शासन
9.	श्री केशवराव पारधी, तुमसर, भंडारा	विधायक/सांसद
10.	श्री भैय्यालालजी पटले, तिरोडा, जि. भंडारा	विधायक
11.	एड. श्री मधुसूदन गौतम, खैरलांजी, जि. बालाघाट	विधायक
12.	श्री रामचंद्र हरिणखेडे, गोरेगांव, जि. भंडारा	विधायक
13.	श्री के. डी. देशमुख, वारासिवनी, कटंगी, बालाघाट	विधायक/सांसद/प्रोटेम स्पीकर
14.	श्री लोचनलाल ठाकरे, कटंगी, जि. बालाघाट	विधायक/कृषि मंत्री, म.प्र. शासन
15.	श्री. भूवनलाल पारधी, किरनापूर, जि. बालाघाट	विधायक
16.	डॉ. खुशाल बोपचे, गोरेगांव गोंदिया, भंडारा	विधायक
17.	श्री गौरीशंकर बिसेन, बालाघाट, म.प्र. शासन	विधायक/सांसद/केबीनेट मंत्री म.प्र
18.	श्री विश्वेश्वर भगत, खैरलांजी, बालाघाट	विधायक/सांसद
19.	श्री भरतलाल बिसेन, बरघाट, सिवनी	विधायक
20.	श्री ईश्वरदयाल पटले, तुमसर, जि. भंडारा	विधायक
21.	डॉ. ढालसिंह बिसेन, बरघाट, जि. सिवनी	विधायक/सांसद/केबीनेट मंत्री म.प्र
22.	श्री ओंकारसिंह बिसेन, वारासिवनी, जि. बालाघाट	विधायक
23.	श्री. टामलाल सहारे, कटंगी, जि. बालाघाट	विधायक/केबीनेट मंत्री म.प्र.
24.	श्री. चुन्नीलाल ठाकुर, गोरेगांव, भंडारा	सांसद
25.	श्री. खोमेश्वर रहांगडाले, गोरेगांव, जि. गोदिया	विधायक
26.	श्री शिशुपाल पटले, भंडारा	सांसद
27.	श्री बोधसिंह भगत, खैरलांजी, जि. बालाघाट	विधायक/सांसद
28.	श्री हेमंत पटले, गोरेगांव, जि. गोंदिया	विधायक

29.	श्रीमती भारती पारधी, बालाघाट-सिवनी	सांसद(वर्तमान)
30.	श्री रवि राणा, बडनेरा, जि. अमरावती	विधायक(वर्तमान)
31.	श्री विजय रहागंडाले, तिरोडा, जि. गोंदिया	विधायक(वर्तमान)
32.	श्री मधु भगत, पसरवाड़ा, जि. बालाघाट	विधायक(वर्तमान)
33.	श्री गौरव पारधी कटंगी, बालाघाट	विधायक(वर्तमान)
34.	श्री विक्की पटेल(पटले), वारासिवनी, बालाघाट	विधायक(वर्तमान)

6.2.3 संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा(UPSC CSE) से चयनित समाजजनों की सूची

क्र.	नाम	सेवा	वर्ष
१.	श्री पुष्पक अमुले	IFS	2000
२.	श्री सुमित पटले	IOFS	2005
३.	डॉ. दिनेश बिसेन	IRS(I&CS)	2007
४.	डॉ. किरण बिसेन	IFS	2009
५.	श्री परिष देशमुख	IPS	2009
६.	श्री ऋषि बिसेन	IRS(IT)	2009
७.	श्री ढालसिंह पटले	DANIPS	2009
८.	डॉ. सौरभ पारधी	IAS	2010
९.	सुश्री शीतला पटले	IAS	2012
१०.	श्री अवध किशोर बिसेन	IRS(IT)	2015
११.	श्री राहुल देशमुख	IPS	2021
१२.	श्री आदित्य पटले	IPS	2021
१३.	डॉ. पंकज पटले		2025
१४.	श्री सचिन बिसेन		2025

6.2.4 छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

पंवार (पोवार) समाज ने न केवल अपनी संस्कृति और परंपराओं को युगों तक सुरक्षित रखा, बल्कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी अपने प्राणों की आहुति देकर मातृभूमि की रक्षा का एक अमर और प्रेरणादायक इतिहास रचा। यह समाज, जिसने हर युग में क्षात्रधर्म का पालन किया, उसने अंग्रेजी दमन के विरुद्ध उठे स्वाधीनता आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई।

१८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर १९४७ के अंतिम निर्णायक संघर्ष तक, छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के अनेक वीरों ने अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाया, जेलों की यातनाएँ सही और आत्मबलिदान के महान उदाहरण प्रस्तुत किए। ये सेनानी न केवल अपने कुल की मर्यादा के प्रतीक थे, बल्कि भारत माता के प्रति अटूट निष्ठा और क्षत्रिय धर्म के जीवंत आदर्श भी थे।

"भोजपत्र" में इस संदर्भ में एक ऐतिहासिक सूची प्रकाशित की गई थी, जिसमें उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के नाम दर्ज हैं जिन्होंने विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। यद्यपि इस सूची में केवल उन्हीं नामों को स्थान मिल सका है जिनकी जानकारी उपलब्ध है, फिर भी ऐसे अनेकों ज्ञात-अज्ञात योद्धा समाज में हुए हैं जिनका योगदान अमूल्य था। उनका नाम भले ही दस्तावेजों में न हो, किंतु उनका त्याग, तप और राष्ट्रभक्ति समाज और देश दोनों के लिए सदैव स्मरणीय रहेगा। यह सूची समाज के सामूहिक आत्मबल और त्याग की प्रतीक है, और आने वाली पीढ़ियों के लिए यह प्रेरणा का शाश्वत स्रोत है। इन वीरों का योगदान केवल सैन्य या राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने समाज में जनजागरण, शिक्षा, सामाजिक एकता और आत्मनिर्भरता जैसे आदर्शों की स्थापना भी की।

आज समय की पुकार है कि इस स्वर्णिम इतिहास को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाया जाए, विशेषकर हमारी युवा पीढ़ी को यह बताया जाए कि उनका समाज केवल सांस्कृतिक और परंपरागत दृष्टि से ही नहीं, अपितु राष्ट्रसेवा, बलिदान और वीरता की दृष्टि से भी अत्यंत गौरवशाली रहा है।

6.2.4.1 स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सूची

("भोजपत्र" में प्रकाशित ऐतिहासिक नामावलियों पर आधारित)

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के जिन वीरों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और अपनी गिरफ्तारी, कारावास अथवा जनसेवा के माध्यम से देश को स्वतंत्र कराने में योगदान दिया, उनके नाम निम्नानुसार हैं:

१. श्री गोपाल पटेल, कंजई (जि. बालाघाट): कांग्रेसी नेता, समाजसेवी एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी।

२. स्व. श्री श्रावणजी बिसेन, कुडवा: प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता, सक्रिय भूमिका के चलते कारावास भोगा।

३. श्री कपूरचन्द चौधरी, पालडोंगरी:सन १९४० में करेली (जि. नरसिंहपुर) में व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान गिरफ्तार।ग्राम ढाकणी में पुनः सत्याग्रह से गिरफ्तारी। 'भारत छोड़ो आंदोलन' १९४२ में भूमिगत कार्य के कारण भंडारा एवं नागपुर जेलों में सात माह का कारावास।

४. श्री पृथ्वीराज कटरे, डोंगरगांव (तिरोड़ा): सन १९४२ में छह माह का कारावास।

५. श्री हरिश्चन्द्र चौधरी, तुमसर: सन १९३० में स्वतंत्रता आंदोलन के अंतर्गत सजा प्राप्त।

६. श्री जगपाल ठाकरे, येरली (जि. भंडारा): सन १९४२ में चार माह का कारावास।

७. श्री धोंडूजी पटले, येरली: सन १९४२ में छह माह का कारावास।

८. श्री सुकोबाजी पारधी, येरली: सन १९४२ में नौ माह का कारावास।

९. श्री जयपाल राहंगडाले, येरली: सन १९३०, १९३२ एवं १९४१ में तीन बार कारावास भोगा।

१०. श्री जानबाजी राहंगडाले, येरली: सन १९४२ में एक वर्ष का सश्रम कारावास।

११. श्री धनपालजी राहंगडाले, येरली: सन १९४२ में छह माह का कारावास।

१२. श्री भोलाजी राहंगडाले, येरली: सन १९४२ में छह माह का कारावास।

१३. श्री सुकाजी राहंगडाले, येरली: सन १९४२ में सात माह का कारावास।

१४. श्रीमती पार्वतीबाई राहंगडाले, साकडी (जि. भंडारा): सन १९४२ में छह माह का कारावास।

१५. श्री श्यामराव पारधी, गोंदिया: सन १९४२ में नजरबंद किये गये।

१६. श्री गजानन टेंभरे, ग्राम लाड़सा (त. बालाघाट): सन १९४२ में छह माह का कारावास।

१७. श्री भहलाल बिसेन, दोंदीवाड़ा (जि. सिवनी):खोलडोडा जंगल सत्याग्रह (१९३०-३१) में सक्रिय भागीदारी। सिवनी जेल में तीन माह का कारावास।

6.3 छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज से प्रेरणास्रोत महापुरुष

छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज की धरती न केवल शौर्य, संस्कृति और संस्कारों की गौरवगाथा से ओतप्रोत रही है, बल्कि यह समय-समय पर ऐसे युगप्रवर्तक महापुरुषों की जन्मस्थली भी बनी है, जिन्होंने समाज के बीच से उठकर अपने विचार, कर्मशीलता और त्यागमय जीवन से न केवल समाज को दिशा, चेतना और गरिमा प्रदान की, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र को भी लाभान्वित किया।

इतिहास साक्षी है कि क्षत्रियों ने न केवल रणभूमि में अद्वितीय पराक्रम का परिचय दिया, अपितु विविध क्षेत्रों में भी अपना श्रेष्ठ योगदान देकर मानवता के लिए कार्य किए। प्रत्येक कुल का अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है, जिसमें अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जो आज भी समाज और देश के लिए प्रेरणा और आदर्श माने जाते हैं। उनका जीवन चरित्र केवल वीरता का प्रतीक नहीं, बल्कि सेवा, त्याग और कर्तव्यबोध की मिसाल रहा है।

शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, समाजसेवा, राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम जैसे विविध क्षेत्रों में समाज की विभूतियों ने अपनी विलक्षण प्रतिभा, दृढ़ संकल्प और निष्कलंक चरित्र से ऐसी छाप छोड़ी है, जो आज भी समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत बनी हुई है। उनका जीवन संघर्ष, सेवा और समर्पण की जीवंत मिसाल है, जो वर्तमान ही नहीं, अपितु आने वाली पीढ़ियों के लिए भी पथप्रदर्शक है।

यद्यपि समाज के ऐसे महानुभावों की सूची विस्तृत, गौरवशाली और अनगिनत है, तथापि इस अध्याय में कुछ विशिष्ट व्यक्तित्वों के जीवन, उनके कार्यों और उनके आदर्शों का संक्षिप्त संकलन प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य केवल उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना नहीं, बल्कि युवा पीढ़ी को उनसे परिचित कराना और उनके

पदचिह्नों पर चलकर समाज तथा राष्ट्र के नव निर्माण में सक्रिय भागीदारी हेतु प्रेरित करना भी है।

6.3.1 श्री दादूलाल बिसेन - एक प्रेरणादायक सेवायात्रा

जन्म : ०२ जून १९४३, ग्राम खामघाट (लालबर्रा), जिला बालाघाट
शिक्षा : एम.ए. (राजनीति विज्ञान, हिंदी), एल.एल.बी.

पंवार(पोवार) समाज के जिन महापुरुषों ने शिक्षा, परिश्रम और कर्तव्यनिष्ठा के बल पर समाज को नई दिशा दी, उनमें श्री दादूलाल बिसेन का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। आपने अपने जीवन की शुरुआत वर्ष १९६४ में एक शिक्षक के रूप में की। शिक्षण के साथ ही आपने उच्चस्तरीय सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी आरंभ की और कठिन परिश्रम के बल पर १९७५ में मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग (MPPSC) की परीक्षा में सफलता प्राप्त की।

आपका चयन आबकारी विभाग में उपनिरीक्षक के पद पर हुआ, और यह समाज के लिए एक ऐतिहासिक क्षण था, क्योंकि इस विभाग में चयनित होने वाले आप समाज के पहले व्यक्ति थे। १९७७ से लेकर २००३ तक आपने राज्य आबकारी विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए सहायक जिला आबकारी अधिकारी के रूप में सेवा से सेवानिवृत्ति प्राप्त की।

सेवानिवृत्ति के बाद भी आपने सक्रिय जीवन को अपनाए रखा। आज भी आप पूरे उत्साह और ऊर्जा के साथ कृषि और बागवानी के क्षेत्र में कार्यरत हैं, और एक अनुकरणीय पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन जीते हुए युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं।

6.3.2 श्री धनलाल पोतन राहंगडाले -साहित्य, सेवा और संस्कृति के समर्पित साधक

पंवार(पोवार) समाज की प्रतिभाओं में एक विशिष्ट नाम श्री धनलाल पोतन राहंगडाले जी का है, जिनका जन्म १६ दिसंबर १९५२ को गोदिया जिले की तिरोड़ा तहसील के ग्राम बरबसपुरा की पुण्यभूमि पर हुआ। आपने कला विषय से स्नातक उपाधि प्राप्त की और शिक्षण में डिप्लोमा के साथ अपने ज्ञान और प्रतिभा को सशक्त आधार प्रदान किया।

आपका शासकीय सेवा जीवन १९८० में कनिष्ठ लिपिक के पद से आरंभ हुआ और अपनी योग्यता, कर्मठता और ईमानदारी के बल पर आप क्रमशः वरिष्ठ लिपिक, मंडलाधिकारी और नायब तहसीलदार जैसे मह त्वपूर्ण दायित्वों तक पहुँचे। आपने ३१ दिसंबर २०१० को सेवापूर्ण कार्यकाल के उपरांत सेवानिवृत्ति ग्रहण की। इससे पूर्व वर्ष १९७७ से १९८० तक आप ग्राम पंचायत बरबसपुरा में निर्विरोध सदस्य रहे, तथा सेवानिवृत्ति के उपरांत वर्ष २०१२ से २०१७ तक उपसरपंच के रूप में जनसेवा का क्रम जारी रखा। वर्तमान में आप गोंदिया की गजानन कॉलोनी में निवासरत हैं।

आपका जीवन केवल शासकीय सेवा तक सीमित नहीं रहा। आप एक सच्चे साहित्यसाधक, कुशल नाटककार, समर्पित कलाकार और मातृभाषा पोवारी के संवाहक हैं। आपने न केवल कई हिंदी नाटक लिखे, बल्कि निरंतर १५ वर्षों तक रंगमंच पर अभिनय कर समाज को सांस्कृतिक दिशा दी। आज भी आप ग्राम बरबसपुरा में नाट्य मंडली का संचालन कर युवा पीढ़ी को पोवारी भाषा, कला और संस्कृति से जोड़ने का अनवरत प्रयास कर रहे हैं।

पोवारी, हिंदी और मराठी में आपकी लेखनी से निकली कविताएँ और भजन समाज के हृदय को छू जाते हैं। भक्ति और सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत आपके भजनों में आत्मा का संगीत सुनाई देता है। हारमोनियम की सुरलहरी में जब आपकी स्वर-गंगा बहती है, तो श्रोताओं को दिव्यता की अनुभूति होती है।

आपका समर्पण, सेवा और सृजनशीलता न केवल पंवार(पोवार) समाज, बल्कि समूचे वैनगंगा अंचल के लिए प्रेरणास्रोत है। हम कामना करते हैं कि आप इसी प्रकार स्वस्थ, सशक्त और सक्रिय रहकर समाज को अपनी कला, साहित्य और सेवा से मार्गदर्शित करते रहें।

6.3.3 श्री हरी प्रसाद भैयालाल गौतम

श्री हरी प्रसाद भैयालाल गौतम जी का जन्म २९ दिसम्बर १९३८ को ग्राम देवरी, जिला बालाघाट में हुआ था। आपने शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज, रायपुर से धातुकर्म इंजीनियरिंग (Metallurgical Engineering) में स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी।

सन १९६२ में आप भारतीय सेना में शामिल हुए और जून १९६३ में लेफ्टिनेंट के पद पर पदोन्नत हुए। इसके बाद १९६४ में मेजर के पद पर पदोन्नत हुए तथा १९७१ में इसी पद से सेवानिवृत्त हुए। संभवतः आप पंवार समाज के प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने सेना में इस स्तर तक पद प्राप्त किया।

सेना से सेवानिवृत्ति के पश्चात् १९७२ में आपका चयन संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के माध्यम से हुआ और आपने १९७३ में भारतीय ऑर्डनेंस फैक्ट्री सेवा (IOFS) में बतौर इंजीनियर सेवा प्रारंभ की। प्रारंभ में आप सहायक प्रबंधक के पद पर कार्यरत रहे।

१९७७ में आपको उप प्रबंधक के रूप में कोलकाता एवं कटनी में पदस्थ किया गया। १९८४ में आप अंबरनाथ ऑर्डनेंस फैक्ट्री में उप महाप्रबंधक (DGM) के रूप में कार्यरत रहे। इसके बाद १९९४ में आपका स्थानांतरण नागपुर हुआ और दिसम्बर १९९६ में आपने चयन श्रेणी (Selection Grade) के साथ सेवानिवृत्ति ग्रहण की।

6.3.4 परसराम पटेल: पंवार समाज की ऐतिहासिक चेतना

स्वर्गीय श्री परसराम पटेल, उकवा(पोंडी)

किसी समाज की आत्मा तब आकार लेती है जब उसका कोई सपूत जीवन को कर्मभूमि मानकर समाज की चेतना का दर्पण बन जाता है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जब भारत सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों से गुज़र रहा था, तब मध्यप्रदेश के एक छोटे से गाँव पोंडी से एक ऐसा नाम उभरा जिसने न केवल अपने समाज का नेतृत्व किया, बल्कि समूचे क्षेत्र की चेतना को भी जाग्रत किया, वह नाम था परसराम पटेल।
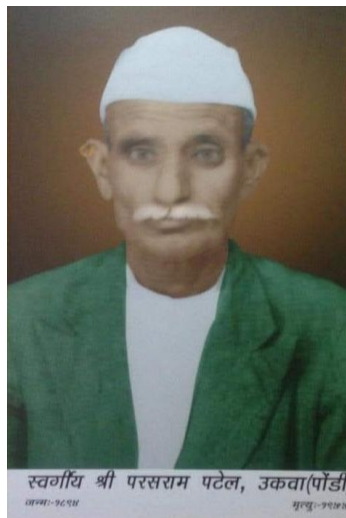
सन् १८९४, लक्ष्मीपूजन की पावन तिथि, ग्राम पोंडी (तहसील बैहर, जिला बालाघाट) में जन्मे परसराम पटेल का जीवन बाल्यकाल से ही संघर्षों से जुड़ा रहा। चार वर्ष की आयु में पिता नबाजी पटेल का निधन हो गया। वे उस समय चार गाँवों के मालगुज़ार थे। परिवार की ज़िम्मेदारियाँ काका आनंदराम पटेल, जीजा दुलीचंद मोकासी (ग्राम पाथरी) और मुखत्यार बंसीलाल लाला ने संभाली। माताजी जानकूबाई के स्नेह और आत्मबल से परसराम जी ने जीवन को एक दिशा दी।

उनकी औपचारिक शिक्षा केवल प्राथमिक विद्यालय की चौथी कक्षा तक सीमित रही, परंतु जो ज्ञान उन्हें मिला वह जीवन के अनुभवों, सामाजिक परिस्थितियों और जनसेवा की प्रेरणाओं से उपजा। यही शिक्षा उन्हें एक साधारण बालक से समाज के अगुवा के रूप में स्थापित करती है।

१८ से २० वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने समाज सेवा और राष्ट्रीय चेतना के मार्ग पर कदम रख दिया। वे अपने विचारों, व्यवहार और कार्यशैली में पूर्णतः गांधीवादी थे। उनका जीवन संयम, त्याग और लोककल्याण की मिसाल था। वे भले ही राजकीय भाषा और विश्वविद्यालयी डिग्रियों से दूर रहे, लेकिन जनमत और जनभावनाओं के वे सच्चे प्रतिनिधि थे।

उन्होंने २१ बार जिला परिषद एवं अन्य संस्थाओं में जनता का प्रतिनिधित्व किया। जनपद सभा बैहर, रवि शिक्षा समिति के अध्यक्ष और मध्यप्रदेश कृषि सलाहकार

समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने ग्रामीण विकास, शिक्षा और कृषि सुधार के क्षेत्रों में अमूल्य योगदान दिया।

श्री परसराम पटेल केवल प्रशासनिक गतिविधियों तक सीमित नहीं रहे। वे पंवार राममंदिर, बैहर के ४० वर्षों तक व्यवस्थापक रहे। रामनवमी के समय वे स्वयं अपने घर से बैलगाड़ियों में खाद्यान्न, सामग्री और रसद लेकर मंदिर पहुँचते थे। यह उनका सच्चा समर्पण और सेवा भाव दर्शाता है।

मध्यप्रदेश एवं बरार पंवार क्षत्रिय संघ के वे दो बार अध्यक्ष रहे और बालाघाट पंवार छात्रावास का शिलान्यास भी उन्हीं के करकमलों से संपन्न हुआ। उन्होंने सामाजिक समरसता, महिला शिक्षा, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन और ग्रामीण चेतना के उत्थान में अग्रणी भूमिका निभाई।

चार-पाँच गाँवों के मालगुज़ार होने के बाद भी उनका जीवन विलासिता से दूर, खादी के वस्त्रों, सादा भोजन और सच्चे सेवा भाव में बीता। वे हर वैवाहिक और सामाजिक आयोजन में सम्मिलित होते, सबको समान दृष्टि से देखते। उन्होंने अपने भानजे श्री ब्रजमोहन रांहगडाले की सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा का दायित्व स्वयं लिया, यह उनकी पारिवारिक प्रतिबद्धता और सामाजिक ज़िम्मेदारी को दर्शाता है।

अपने जीवनकाल में उन्होंने माता, प्लेग, इन्फ्लुएंजा जैसी भयंकर बीमारियों का सामना किया और हर बार विजयी होकर लौटे। परंतु अन्ततः २६ नवम्बर १९५५ को ६१ वर्ष की आयु में वे एक लंबी बीमारी के पश्चात इस संसार से विदा हो गए। उनके निधन के साथ एक युग का अंत हुआ, परंतु उनकी स्मृति आज भी समाज के कण-कण में जीवित है।

परसराम पटेल न केवल पंवार समाज के लिए एक पथप्रदर्शक रहे, बल्कि वे संपूर्ण मानवता के लिए जीवन-मूल्य, सेवा और सत्यनिष्ठा के प्रतीक रहे। उनका जीवन हमें यह सिखाता है कि शिक्षा केवल पुस्तकों में नहीं, कर्म और चरित्र में होती है। वे एक ऐसे युगपुरुष थे जिनका जीवन अपने आप में एक आंदोलन था, एक शांत, सादा, लेकिन दृढ़ और उज्ज्वल आंदोलन।

6.3.5 स्व. श्री मनराज पटेल 'मयूर'

स्वर्गीय श्री मनराज पटेल जी का जन्म ग्राम गुढरी (साकोली), जिला भंडारा में हुआ था। आपने अपने कार्य जीवन की शुरुआत एक शिक्षक के रूप में की और आगे चलकर अधिवक्ता बने। जीवन की दिशा शिक्षा और न्याय से जुड़ी रही, परंतु आत्मा जुड़ी रही भाषा, संस्कृति और समाज के साथ। आपने अपने पूरे जीवन को पोवारी भाषा के संरक्षण और प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया।

वे उस समय पोवारी भाषा को बचाने के लिए सक्रिय थे, जब समाज स्वयं अपनी मातृभाषा को आधुनिकता के मार्ग में बाधक मानकर त्यागने की ओर अग्रसर था। पोवार समाज के कई संगठन भी उस समय अपनी इस भाषाई धरोहर के प्रति उदासीन थे और इसे छोड़ने को ही विकास की दिशा मान रहे थे। ऐसे में मनराज जी ने समाज की इस उदासीनता के बीच, घर-घर जाकर पोवारी के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रारंभ किया। उस समय हर घर में पोवारी बोली तो जाती थी, लेकिन लोग हिंदी, मराठी या अंग्रेज़ी की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे थे।

मनराज जी को अपने प्रयासों के लिए कई बार उपहास और तिरस्कार का भी सामना करना पड़ा। समाज के कुछ लोग उन्हें बाबाजी कहकर मज़ाक उड़ाते, यह मानते हुए कि वे समाज को पीछे ले जाने की कोशिश कर रहे हैं। परंतु उन्होंने जो देखा, वह दूरदृष्टि थी, उन्हें यह स्पष्ट था कि यदि पोवारी भाषा को नहीं बचाया गया, तो समाज एक अमूल्य सांस्कृतिक पहचान को खो देगा।

उन दिनों नागपुर में स्व. जयपाल सिंह पटले जी द्वारा 'मायबोली पोवारी बचाओ अभियान' भी चलाया जा रहा था। स्व. मनराज जी के प्रयासों और प्रेरणा से लगभग सौ से अधिक लोग आज विभिन्न तरीकों से इस भाषा और सामाजिक विरासत को बचाने के लिए सक्रिय हुए हैं। इनके अभियान ने न केवल पोवारी को, बल्कि लोधान्ति, मरारी, भोयरी, कलारी, कोष्टी जैसी अन्य बोलियों के संरक्षण को भी बल दिया।

मनराज जी ने पोवारी, हिंदी और मराठी भाषाओं में विपुल साहित्य सृजन किया। उन्होंने गीत, कविताएँ, लेख, नाटक, कहानियाँ आदि विविध विधाओं में लेखन किया। उनकी पोवारी कविता संग्रह "जागो भाऊ आता जागो" सन २००१ में प्रकाशित हुई, जिसमें समाज को भाषा बचाने के लिए जागने का आव्हान किया गया था। सन २००५ में प्रकाशित काव्य संग्रह "तू आता करोना आपलो विकास" में उन्होंने समाजिक उत्थान का संदेश दिया। वे केवल भाषाई चेतना के वाहक ही नहीं थे, बल्कि समाज के हर मोर्चे पर सक्रिय थे। उन्होंने कई स्थानों पर तन, मन और धन से सहयोग किया।

नागपुर स्थित, पंवार युवक छात्रावास में वे प्रमुख दानदाता रहे। समाज के ऐतिहासिक गौरव, राजा भोज पर आधारित उनका नाटक ‘‘राजा भोज नाटक’’ भी एक महत्वपूर्ण कृति रहा। उन्होंने पोवारी भाषा में कई गीत लिखे और उन पर ऑडियो कैसेट भी बनाए, जिससे भाषा को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया।

स्व. मनराज पटेल जी का जीवन एक सच्चे समाजसेवी, भाषाप्रेमी और सांस्कृतिक संरक्षक का जीवन था। उनके कार्य और योगदान आज भी समाज को उसकी पहचान की ओर लौटने का मार्ग दिखाते हैं। स्व. मनराज जी के द्वारा रचित साहित्य की एक समृद्ध और विस्तृत सूची है, जिसमें उन्होंने विविध विधाओं में योगदान दिया। उनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं:

१. श्री भागवत गीता अमृत
२. जागो भाऊ आता जागो
३. चलो उठो आगे बढ़ो
४. तू आता करोना आपलो विकास
५. रंगल्या तोंदराच्या बड़ा
६. गायो दम दमादम,नाचो छमछमा छम
७. जाई शरण तू प्रभुचरणी
८. शेतकऱ्याचे ज्वलंत प्रश्न आणि उपाय
९. झाड़ीचा मानुष जागवा
१०. गावाकडील कथा
११. राजा भोज नाटक
१२. हवी असेल सत्ता, तरह थांद्या आत्महत्या

पोवारी भाषा के शब्द शिल्पी, स्व. मनराज पटेल जी पर सम्पूर्ण पंवार (पोवार) समाज को गर्व है। उनके अथक प्रयासों और समर्पण ने, जिस भाषायी क्रांति की नींव रखी, वह केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा है। समाज को विश्वास है कि, उनकी इस प्रेरक यात्रा से युवा पीढ़ी सीख लेगी, और पोवारी भाषा के संरक्षण एवं संवर्धन की यह लौ, और भी तेज़ी से आगे बढ़ेगी। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, कि उनकी बोली, उनकी विरासत, और उनका सपना पीढ़ियों तक जीवित रहे।

6.3.6 श्री जयपालसिंह धाडूजी पटले: पोवारी बोली की पुकार - पोवारी भाषा के सच्चे पुरोधा

पोवारी बोली के पितामह, श्री जयपालसिंह धाडूजी पटले का जन्म ग्राम सालेटेका, तहसील-वारासिवनी, जिला-बालाघाट में १७ जुलाई १९३५ को हुआ था। उन्होंने सन १९५६ से १९९३ तक MSEB में कार्य किया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज की सेवा और साहित्य सृजन के लिए अर्पित कर दिया। पोवारी भाषा के अलावा उन्होंने मराठी, हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में भी लेखन का कार्य किया है। साहित्य के साथ उनकी विशेष रुचि भजन और कीर्तन में भी रही है। वे सेवानिवृत्ति के उपरांत नागपुर में साहित्य सृजन और ईश्वर भक्ति के साथ अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते थे।
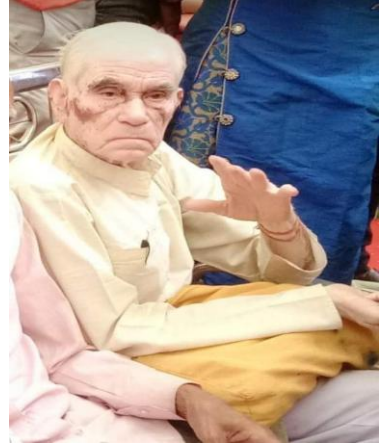
मालवा राजपुताना से नगरधन-वैनगंगा क्षेत्र में आकर बसने वाले पंवार (पोवार) समाज ने आज हर क्षेत्र में काफी विकास किया, किंतु अपनी मातृभाषा पोवारी को काफी पीछे छोड़ दिया। श्री पटले जी सदैव ही अपनी मातृभाषा पोवारी को बचाना चाहते थे और इस दिशा में अपने सेवाकाल से ही कार्यरत थे। स्व जयपाल जी ने सेवानिवृत्ति के उपरांत पूर्ण रूप से स्वयं को पोवारी उत्थान में समर्पित कर दिया। सन २००० के आसपास श्री पटले जी ने पोवारी भाषा को बचाने का महत्वपूर्ण अभियान तेज किया। उनका अभियान “पोवारी बोली की पुकार” था, जिसे बाद में उन्होंने

"मायबोली पोवारी बचाओ" का नाम दिया। सन २००१ में "पंवार भारती पत्रिका" में पोवारी काव्य के माध्यम से अपने अभियान को "पोवारी (पंवारी) बोली की पुकार" से गति प्रदान की।

पोवारी बोली की पुकार

आपलोच घर मा मी भई गई पराई गा।
नाहनांग रव्हन की मोरो पर पारी आ गई गा।।
आपलोच घर मा ...

बुढ़गी माताराम मोला मान लक बोल सेत।
जवान माय-बहिन कधी-कधीच बोल सेत।।
जवान बेटा-बेटी मोरी हासीच उड़ावसेत।
शरम लका मी होय जासू लाल-पीवरीगा।।
आपलोच घर मा ...

मोठागन आवन की जब मी सोचू सू।
भाउ ना दादाजी ला देखकन डरासू।।
मोठांगन माहारा - मेन्द्रा की गोष्ठी आयकखेन।।
डर को मार्या मी होय जासू घामघयानी गा।
आपलोच घर मा...

मोरा आपराच मोला डरावन लग्या सेती।
आपलाच मोरोलक दुहुर परान लग्या सेती।।
हिन्दी अना मराठी मा सब बोलन लाग्या सेती...
आपलोच घर मा...

वे अपने सेवाकाल में भी समाज के उत्थान और पोवारी संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन के लिए सदैव निरंतर कार्य करते रहे। १९९३ में सेवानिवृत्ति के उपरांत से अब तक पोवारी संस्कृति के प्रचार-प्रसार, साहित्य सृजन एवं पोवार समाज का कल्याण ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस कार्य के लिए वे दिन-रात कभी साइकिल

तो कभी पैदल ही समाज कार्य के लिए निकल पड़ते थे। नागपुर के साथ उन्होंने अपने गृह जिले, बालाघाट में भी अपनी संस्कृति और बोली को बचाने के प्रयास किए। उन्होंने अनेक सामाजिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सहभागिता दी और समाज के हर वर्ग को प्रोत्साहित करते रहे। अपनी बोली और संस्कृति को बचाने के साथ-साथ सामाजिक विकास को प्राथमिकता देते रहे। उन्होंने पोवारी उत्कर्ष समूह द्वारा प्रकाशित पत्रिका, "पोवारी उत्कर्ष" का विमोचन कर पत्रिका का गौरव बढ़ाया था। राजा भोज के जन्मदिवस पर पोवारी उत्कर्ष परिवार द्वारा आयोजित प्रथम ऑनलाइन "पोवारी साहित्य सम्मेलन" के उद्धाटनकर्ता और मुख्य अतिथि के रूप में अपनी सेवा और पोवारी के प्रति अपने आदरभाव से ओतप्रोत किया था। पोवारी बोली उनके ह्रदय में बसती थी, पोवारी बोली के प्रत्येक कार्यक्रम में उन्हें अत्यधिक आनंद की प्राप्ति होती थी।

पोवार (पंवार) समाज अपनी पुरातन सनातनी संस्कृति को अधिक महत्व देता रहा है। श्री जयपाल सिंह जी भी इसी दिशा में अपने अभियान को आगे बढ़ाते रहे। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का पोवारी में अनुवाद किया ताकि उन ग्रंथों का सार पोवार समाज के अंतिम सदस्य एवं जनमानस तक पहुंच सके।

उनकी पहली पोवारी किताब, "पोवार गाथा" सन २००६ में प्रकाशित हुई थी। उनका पोवारी काव्य संग्रह, "पोवारी गीत गंगा" ईस्वी सन २०१० में प्रकाशित हुआ था। सन २०१५ में एक और पोवारी काव्य संग्रह, "राजा भोज गीतांजलि" प्रकाशित हुआ। उन्होंने वंदनीय राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज द्वारा रचित "ग्राम गीता" को सन २००९ में पोवारी बोली में अनुवाद किया। इसके साथ ही उन्होंने "गीत रामायण" (२०१२) और "श्रीमद्भागवतगीता सार" (२०१४) जैसे बड़े और महान हिंदू ग्रंथों को पोवारी बोली में अनुवादित करने का भागीरथ प्रयास किया है। वे जीवन के अंतिम पड़ाव तक पोवारी भाषा और संस्कृति को बचाने के लिए लेखन का कार्य करते रहे।

उन्होंने पोवारी के अतिरिक्त हिंदी और मराठी में भी लेखन का कार्य किया। ०४ अगस्त सन २०२१ को माँ सरस्वती के इस पुत्र ने इस दुनिया से विदा ले लिया। उनके द्वारा लिखित और अनुवादित पोवारी साहित्य, क्षत्रिय पोवार पंवार समाज के लिए ऐतिहासिक धरोहरें हैं। पोवारी बोली और संस्कृति के साथ समाज के प्रति उनकी निःस्वार्थ सेवा के कारण ही पोवारी साहित्य के रूप में ये धरोहरें हम सब के सामने हैं।

6.3.7 श्री हिरदीलाल जी ठाकरे और समाज के लिए संघर्ष करता क्षत्रिय पोवार योद्धाओं का समूह

पोवारी बोली के प्रसिद्ध कवि, लेखक, गायक एवं समाजसेवक श्री हिरदीलाल जी ठाकरे सदैव समाज सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। कोरोना संकट के समय उनका समाज के प्रति समर्पण किसी से छुपा नहीं है। इस भीषण संकट में उन्होंने स्वयं की जान की परवाह न करते हुए निरंतर कोरोना मरीजों का सहयोग किया। विभिन्न अस्पतालों में भर्ती कोरोना मरीजों तक उन्होंने समय पर भोजन सहित आवश्यक सामग्री पहुँचाई।

वर्तमान में वे नागपुर के पारडी क्षेत्र में निवास करते हैं और पोवार एकता मंच के अपने सहयोगियों के साथ समाज सेवा में निरंतर कार्यरत हैं। ये सभी पोवार योद्धा, समाज के सहयोग के साथ-साथ समाज के किसी भी सदस्य के साथ हुए अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के विरुद्ध गलत टिप्पणियाँ करने वाली मंजू अवस्थी ने डी.लिट् की उपाधि सन् १९९५ में रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर से प्राप्त की थी। उन्होंने अपने शोधपत्र में पोवार समाज की महिलाओं पर अभद्र टिप्पणियाँ कीं और यह कहकर कि पोवार समाज के लोग डकैती करते थे, समाज की गरिमा को ठेस पहुँचाई।

उपरोक्त संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, क्षत्रिय छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के समाजप्रेमी श्रीमान हिरदीलाल जी ठाकरे ने बालाघाट जिले में पहुँचकर विभिन्न पोवार(पंवार) समाज के संगठनों से विचार-विमर्श किया। उन्होंने मंजू अवस्थी के विरुद्ध कार्यवाही करवाने, उनके शोधपत्र से समाज संबंधी गलत जानकारी को इंटरनेट से त्वरित हटवाने, तथा रविशंकर विश्वविद्यालय से उनकी डी.लिट् उपाधि को निरस्त करवाने हेतु प्रयास किए। इस संबंध में उन्होंने मध्य प्रदेश राज्य अन्य पिछड़ा वर्ग के अध्यक्ष एवं विधायक आदरणीय गौरीशंकर भाऊ बिसेन जी से भी भेंट की।

श्री हिरदीलाल जी ठाकरे और उनके सहयोगियों के सतत, जागरूक प्रयासों के फलस्वरूप श्रीमती मंजू अवस्थी ने स्वीकार किया कि उन्होंने पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर समाज के विरुद्ध असत्य तथ्य अपने शोधपत्र में समाहित किए थे। उन्होंने अपनी गलती स्वीकार कर समाज से माफी भी माँगी।

आज, समाज की ऐतिहासिक एवं वैभवशाली परंपरा के संरक्षण के साथ-साथ, समाज के पुरातन नामों के संवर्धन हेतु श्री हिरदीलाल जी ठाकरे एवं उनके सहयोगी लगातार कार्यरत हैं। साथ ही पोवारी (पंवारी) बोली को बचाने, संरक्षित करने और आगे बढ़ाने में उनका योगदान अत्यंत सराहनीय है।

6.3.8 श्री गोपाल जी बिसेन, कंजई

पंवार(पोवार) समाज में संगठनों के गठन से लेकर समाज सेवा तक में अग्रणी भूमिका निभाने वाले कंजई (लालबर्रा) निवासी श्री गोपाल जी बिसेन का जन्म १६ जनवरी सन् १८८८ को ग्राम बोट्टा, तहसील वारासिवनी में एक प्रतिष्ठित मालगुजार परिवार में हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री बालाराम जी बिसेन तथा माताजी का नाम श्रीमती बेलाबाई था।

वे भारत के स्वतंत्रता आंदोलनों से भी जुड़े रहे और बाद में बालाघाट जिला कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। उन्हें उनकी सादगी, विनम्रता और कठोर परिश्रम के लिए जाना जाता था। जिले में सहकारिता आंदोलन में भी उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है।

बीसवीं सदी की शुरुआत में छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज के उत्थान और सामाजिक विधि-विधान के निर्माण हेतु 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के माध्यम से कार्य किया जाता था। इस दिशा में समाज में सामाजिक चेतना के विकास और पंवारों को सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से संगठित करने हेतु श्री लखाराम जी तुरकर द्वारा प्रतिपादित "पँवार धर्मोपदेश" को समाजजनों तक पहुँचाने में श्री गोपाल जी बिसेन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही।

बैहर के सिहारपाठ में पंवार श्रीराम मंदिर निर्माण में भी आपकी प्रमुख भूमिका रही। दिनांक २५ जनवरी १९१० को सिहारपाठ पहाड़ी पर आयोजित 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के राष्ट्रीय अधिवेशन की आपने अध्यक्षता की थी। आप समाज में आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के भी समर्थक थे। आपने व्यक्तिगत रूप से बालाघाट के पंवार छात्रावास में एक कक्ष निर्माण की जिम्मेदारी ली थी।

आपकी प्रेरणा से ही सन् १९७० के आसपास श्री तेजलाल टेंभरे, डा. मेघराज बिसेन एवं अन्य महानुभावों के सहयोग से पंवार राम मंदिर, बैहर के सामने एक सभा मंडप का निर्माण संभव हो सका।

आपका अंतिम जीवन वानप्रस्थ आश्रम के समान धार्मिक और आदर्शमयी था। दिनांक १६ नवम्बर सन् १९७५ को, रामायण पाठ करते हुए 'ॐ ओम्' का उच्चारण करते हुए आपने अपनी जीवन लीला समाप्त की।

पंवार(पोवार) समाज ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण बालाघाट जिले के लिए आपकी सेवाएँ सदैव चिरस्मरणीय रहेंगी।

6.3.9 श्री टुंडीलाल तुरकर पंवार

श्री टुंडीलाल जी तुरकर पंवार का जन्म १ जुलाई सन् १८७७ को ग्राम दौंदीवाड़ा, जिला सिवनी में हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री ओखाजी तुरकर था। श्री टुंडीलाल जी की प्रारंभिक शिक्षा ग्राम दौंदीवाड़ा में ही हुई। उन्होंने मिशन हाईस्कूल, सिवनी से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और प्रथम स्थान प्राप्त किया।

तत्पश्चात, उन्होंने राबर्टसन कॉलेज, जबलपुर से इंटरमीडिएट परीक्षा में प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। उन्हें प्रथम स्थान की आशा थी, इसी कारण उन्होंने और अधिक परिश्रम कर हिस्लॉप कॉलेज, नागपुर से बी.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर संतोष किया। बी.ए. में उनके विषय अंग्रेज़ी, गणित, भौतिकशास्त्र और संस्कृत थे।

यद्यपि वे कला संकाय से स्नातक थे, फिर भी उन्होंने कृषि विभाग की शासकीय सेवा में कार्य आरंभ किया और नागपुर में फार्म सुप्रीटेंडेंट के पद पर नियुक्त हुए। कुछ समय तक उन्होंने तेंदुला, दुर्ग में केनाल कलेक्टर के रूप में कार्य किया। बाद में वे पुनः कृषि विभाग में लौटे और पदोन्नति पाते हुए सन् १९३० में "डिप्टी डायरेक्टर ऑफ एग्रीकल्चर, छत्तीसगढ़ डिविजन, मध्य प्रदेश" के पद से सेवानिवृत्त हुए।

उन्होंने लगभग ३० वर्षों तक शासकीय सेवा की और सेवानिवृत्ति के पश्चात ३० वर्षों तक पेंशन प्राप्त करते रहे। सन् १९२६ में उन्हें ब्रिटिश शासन द्वारा 'रायबहादुर' की सम्माननीय उपाधि प्रदान की गई।

श्री टुंडीलाल जी समाज को मितव्ययी जीवन जीने और धन के उचित निवेश की प्रेरणा देते थे। उनका जीवन सादगी, उच्च विचार और नियमितता से भरा हुआ था, जो आज भी युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है।

अपने जीवन में अत्यंत ऊँचाई प्राप्त करने के पश्चात, उन्होंने १५ जनवरी १९६० को बालाघाट में अंतिम साँस ली और ईश्वर की शरण में चले गए।

6.3.10 पोवारी भाषा, एक विरासत: स्व. हिरालाल जी बिसेन का अविस्मरणीय योगदान

स्व. हिरालाल बिसेन जी एक कवि और साहित्यकार होने के साथ-साथ पोवारी भाषा और संस्कृति की चेतना के दीपक थे। उन्होंने युवावस्था से ही अपनी भाषा, संस्कृति और अस्मिता के लिए लेखनी उठाई। जब समाज और संगठन स्वयं अपनी मातृभाषा को त्यागने की ओर बढ़ रहे थे, तब हिरालाल जी ने समाज से अपील की, "तुमी भी त 'धारा' नगरी लका आयात, राज घरानें का रयकर भी कोनला पोवारी सिखायत?" अर्थात, पोवारी में ही बोलो, यही हमारी असली पहचान है। यदि तुम पोवार हो और वह भी राजघराने से जुड़े हो, तो यह तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इस भाषा का संरक्षण करो, न कि इसे त्यागो।

उस समय स्व. हिरालाल बिसेन जी ने जन-जागरण का बिगुल फूँका और पोवार समाज से आह्वान किया कि अपनी भाषा को बचाना केवल सांस्कृतिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि अपनी पहचान की रक्षा जैसा पवित्र कार्य है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यह हमारे पूर्वजों की विरासत है, और इसे बचाना हम सभी का दायित्व है।

स्व. बिसेन जी का जीवन संघर्ष, श्रम और साधना का प्रतीक रहा। विज्ञान विषय से बारहवीं तक की शिक्षा, वेल्डर का कार्य और साथ-साथ साहित्य-साधना, यही उनका जीवन परिचय था। उन्होंने हिंदी में “श्रम के मोती” जैसा प्रभावशाली संग्रह १९९८ में प्रकाशित किया, जो जीवन की संवेदनाओं को उजागर करता है। उन्होंने १९९० के आसपास पोवारी भाषा में लेखन की शुरुआत की थी, लेकिन उस समय प्रकाशन के लिए पर्याप्त संसाधनों के अभाव में कई रचनाएं प्रकाशित नहीं हो सकीं।

स्व. हिरालाल जी कवि के साथ-साथ कथाकार भी थे। सन् २०२० में उन्होंने पोवारी भाषा में कथा संग्रह "गाव शिवार" प्रकाशित किया, जो पोवारी भाषा साहित्य के इतिहास में प्रकाशित प्रथम कथा संग्रह है। इसके बाद उन्होंने अपनी कविताओं को संकलित कर पोवारी काव्य संग्रह “चंद्रकांत” तैयार किया था, जिसे उनके परिजन शीघ्र ही प्रकाशित करने वाले हैं। उनकी अनेक रचनाएँ कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और समाज की धरोहर बन चुकी हैं।

२१ फरवरी २०२४ को उनके निधन के साथ, पोवार समाज ने अपना एक अग्रदूत खो दिया। लेकिन उनके विचार, उनकी लेखनी और उनका वह ऐतिहासिक आह्वान आज भी समाज के लिए मार्गदर्शक हैं। आज जब हम स्व. बिसेन जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, तब यही सबसे उपयुक्त समय है कि हम उनके सपनों को आगे बढ़ाएँ। भाषा और संस्कृति को बचाने के उनके आह्वान को छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज और उनके संगठन बिना भूले, उसे पूरा करने में पूरी तन्मयता से जुटें, तभी समाज की गौरवशाली विरासतें संरक्षित रहेंगी।

“स्व. हिरालाल जी न जेन सपन ल देखिन, ओला सहजकन राखनो आमी सब पोवार जन की जिम्मेदारी से। आमी येला पूरो करबीन, तबच या उनको प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होये, असो मोरो मत से। आज कई साहित्यकार गिन आपरो पुरखा इनकी भाषा-संस्कृति ला बचावन को काम कररह्या सेती अना यव पुरो भरोषा से की पोवारी भाषा ला बचावन को उनको अभियान ला जरुर पूरो करबीन।

६.४ पंवार (पोवार) समाज की पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन की शुरुआत

'पंवार जाति सुधारणी सभा' के माध्यम से पोवार समाज में सुधार एवं सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमों को गति मिली। इसी प्रेरणा से समाज के विचारों के प्रचार-प्रसार हेतु पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरुआत स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही हो चुकी थी। नागपुर से सन् १९४३ में श्री आदरणीय ब्रिजमोहन राहंगडाले ने अपने स्वजातीय बंधुओं के सहयोग से "संदेश" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया, जो संभवतः समाज की प्रथम ज्ञात सामाजिक पत्रिका थी। बाद में यही त्रैमासिक पत्रिका गोंदिया से श्री ताराचंद येडे, श्री द्वारकानाथ टेम्भरे और श्री तेजसिंह जी कटरे के सहयोग से प्रकाशित होती रही। सन् १९६४ से श्री गौरीशंकर जी तुरकर और श्री पन्नालाल जी बिसेन द्वारा "नूतन संदेश" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया।

छत्तीस कुल पंवार समाज के इतिहास पर लिखी गई प्रथम ज्ञात पुस्तक सन् १८९० में स्व. लखाराम जी तुरकर द्वारा रचित "पंवार धर्मोपदेश" है, जिसमें उन्होंने पंवारों के छत्तीस कुलों को "एक-एक धाम" कहकर उन्हें स्मरण रखने का आव्हान किया था। इसके पश्चात कई लेखकों द्वारा समाज के इतिहास पर विस्तारपूर्वक लेखन किया गया। विशेष रूप से स्व. पन्नालाल जी बिसेन और डॉ. ज्ञानेश्वर जी टेम्भरे का इस दिशा में उल्लेखनीय योगदान रहा है। सन् १९८६ में प्रकाशित "भोजपत्र" में सम्मिलित अधिकांश लेख स्व. पन्नालाल जी बिसेन द्वारा लिखे गए थे, जिनमें समाज के इतिहास को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

"मॉ कालिका पोवार महिला समाज मंडल, आमगांव" द्वारा महिला दिवस (८ मार्च २०११) के अवसर पर विभिन्न महिला लेखिकाओं की पचास रचनाओं से सुसज्जित सुंदर काव्य-संग्रह "पोवारी चारोली" का प्रकाशन किया गया, जो पोवारी बोली और समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

पंवार राममंदिर ट्रस्ट, बैहर द्वारा "पंवार दर्पण" तथा क्षत्रिय पंवार संगठन, रायपुर द्वारा "पंवार वाणी" पत्रिका का प्रतिवर्ष प्रकाशन किया जाता है। इसी प्रकार भारतीय पोवार संघ, भंडारा, वैनगंगा पंवार क्षत्रिय संगठन, भोपाल आदि संगठन भी प्रतिवर्ष अपनी पत्रिकाएं प्रकाशित कर रहे हैं। राष्ट्रीय पोवारी साहित्य और सामाजिक

उत्कर्ष संगठन द्वारा छत्तीस कुल पोवार समाज की संस्कृति से सुसज्जित प्रथम पत्रिका "पोवारी उत्कर्ष" का प्रकाशन किया गया था।

धीरे-धीरे अनेक शहरों के सामाजिक संगठनों द्वारा भी समाज की जागरूकता, संस्कृति और विचारों के प्रचार हेतु अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है।

6.4.1 झुंझुरका: मातृभाषा पोवारी की ओर एक सशक्त कदम

छत्तीस कुल क्षत्रिय पोवार(पंवार) समाज की मातृभाषा पोवारी (पंवारी) में प्रकाशित बच्चों की मासिक e-पत्रिका, "झुंझुरका", नई पीढ़ी को अपनी गौरवशाली संस्कृति और भाषा से जोड़ने का एक अभिनव प्रयास है। यह पत्रिका न केवल बच्चों में भाषा के प्रति रुचि जाग्रत करती है, बल्कि समाज की उस विरासत को भी जीवित रखती है, जो पीढ़ियों से हमारी पहचान रही है।

"झुंझुरका" का संपादन श्री गुलाब बिसेन जी के मार्गदर्शन में हो रहा है, जिनके साथ संपादक मंडल में रणदीप बिसने, महेंद्र रहांगडाले, महेंद्र कुमार पटले और उमेंद्र बिसेन जैसे जागरूक और प्रतिबद्ध समाजसेवी कार्यरत हैं। इनका समर्पण इस पत्रिका को दिशा देने और गुणवत्ता बनाए रखने में अत्यंत सराहनीय है।

झुंझुरका का योगदान इस मायने में अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यह पोवारी भाषा के अस्तित्व को अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ उसके प्रचार-प्रसार में भी अग्रणी भूमिका निभा रही है। भाषा और संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती हैं, और इनके लोप से समाज की पहचान भी विलीन हो जाती है। ऐसे समय में जब क्षेत्रीय भाषाएँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं, पोवारी संस्कृति को जीवित रखना हमारा सामूहिक दायित्व बन जाता है।

यह पत्रिका समाज के युवाओं द्वारा अपनी मायबोली को सहेजने की एक शानदार पहल है। झुंझुरका न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि यह बाल-मन को संस्कारित करने, मातृभाषा से जोड़ने और अपनी जड़ों की पहचान कराने का एक सशक्त साधन बन चुकी है।

समाज की यह सांस्कृतिक चेतना तभी स्थायी रूप से फले-फूलेगी जब ऐसे प्रयास निरंतर होते रहेंगे। इस दिशा में झुंझुरका जैसी पत्रिकाएँ एक प्रेरणा स्त्रोत हैं और इनके माध्यम से हम अपनी मातृभाषा, अपने संस्कार और अपनी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रख सकते हैं।

6.4.2 पोवारी भाषा में प्रकशित किताबों की सूची

पोवारी भाषा मुख्यतया मध्यभारत के बालाघाट, गोंदिया, सिवनी और भंडारा जिलों में निवासरत छत्तीस कुल पंवार(पोवार) समाज द्वारा बोली जाती है। यह भाषा समाज की सांस्कृतिक पहचान का एक सजीव माध्यम है, जिसे लोग अपनी रोज़मर्रा की बातचीत, पारिवारिक संवाद, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक रीति-रिवाजों में सहजता से अपनाते आए हैं।

पोवारी भाषा को कभी-कभी पंवारी भी कहा जाता है, किंतु इसका साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप पोवारी ही है। यह कोई नई भाषा नहीं है, बल्कि सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही एक समृद्ध लोकभाषा है, जिसने समाज के दुख, सुख, प्रेम, परंपरा और वीरता को अपने शब्दों में संजोकर रखा है। इस भाषा में लंबे समय तक साहित्य मौखिक परंपरा के रूप में जीवित रहा। विवाह गीत, मांगलिक अवसरों पर गाए जाने वाले भजन, दशहरा पर्व के वीर गीत, और खेत-खलिहानों में गूंजने वाले लोकगीत, यह सब पोवारी भाषा के ही विविध रंग हैं। समाज की स्त्रियाँ और वृद्धजन इस परंपरा के वाहक रहे हैं, जिन्होंने गीतों और कथाओं के माध्यम से भाषा की मिठास को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया।

हाल के वर्षों में जब समाज में सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ी, तब पोवारी भाषा के लिखित रूप में भी साहित्यिक सृजन होने लगा। अनेक साहित्यकारों ने अपनी भावनाएँ, अनुभव और समाज के चित्रण को कविता, कहानी, नाटक, संस्मरण, व्यंग्य और शोधलेखों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यह लेखन केवल भाषा को सुरक्षित करने का प्रयास नहीं, बल्कि समाज की आत्मा को अक्षर रूप देने का एक पुनीत कार्य है। आज पोवारी भाषा में अनेक साहित्यकार लेखन कर रहे हैं, जिनमें युवा भी सम्मिलित हैं और वयोवृद्ध भी। यह एक सशक्त संकेत है कि यह भाषा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि भविष्य की भी एक सजीव आशा है।

पोवारी भाषा में अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची भी धीरे-धीरे समृद्ध हो रही है। इनमें काव्य संग्रह, लोकगीत संग्रह, नाटक, सामाजिक टिप्पणियाँ, भाषा व्याकरण और कहानियाँ सम्मिलित हैं। इन रचनाओं के माध्यम से न केवल भाषा का स्वरूप परिभाषित हो रहा है, बल्कि समाज के इतिहास, परंपराओं और सांस्कृतिक विरासत का भी दस्तावेज़ तैयार हो रहा है।

यह लेखन कार्य समाज को प्रेरणा देने वाला है, क्योंकि जब कोई समाज अपनी भाषा को लिखने लगता है, तब वह केवल शब्द नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता और आत्मगौरव को अक्षरों में गढ़ता है।

क्र.	किताब	लेखक	वर्ष	साहित्य का प्रकार
1.	गीत गंगा	श्री यादोराव चौधरी	1998	कविता संग्रह
2.	भाऊ आता जागो	एड. श्री मनराज पटले	2001	कविता संग्रह
3.	बिह्या का गाना	श्री यादोराव चौधरी	2002	कविता संग्रह
4.	तू आता करोना आपलो विकास	एड. श्री मनराज पटले	2005	कविता संग्रह
5.	पंवार गाथा	श्री जयपालसिंह पटले	2006	गद्य संग्रह
6.	ग्रामगीता	श्री जयपालसिंह पटले	2009	पोवारी अनुवाद
7.	पोवारी गीतगंगा	श्री जयपालसिंह पटले	2010	कविता संग्रह
8.	पोवारी चारोली	माँ कालिका पोवार महिला समाज मंडल	2011	चारोली संग्रह
9.	गीत रामायण	श्री जयपालसिंह पटले	2012	पोवारी अनुवाद
10.	श्रीमद्भगवद्गीता सार	श्री जयपालसिंह पटले	2014	पोवारी अनुवाद
11.	राजाभोज गीतांजली	श्री जयपालसिंह पटले	2015	कविता संग्रह
12.	गूंज उठे पोवारी	डॉ.ज्ञानेश्वर टेंभरे	2017	कविता-कथासंग्रह
13.	दुर्वांकुर	डॉ.ज्ञानेश्वर टेंभरे	2019	कथा संग्रह
14.	पोवारी मायबोली अमर रहे	श्री. सी.एच.पटले	2019	कविता संग्रह
15.	मन को घाव	एड. देवेंद्र चौधरी	2020	कविता संग्रह
16.	गांव शिवार	श्री हिरालाल बिसेन	2020	कथा संग्रह
17.	पोवारी काव्य जतरा	सौ. छाया सुरेंद्र पारधी	2020	कविता संग्रह
18.	बुलंद करो पोवारी	डॉ.ज्ञानेश्वर टेंभरे	2020	कविता संग्रह
19.	पोवारी साहित्य मंजुषा	एड. लखनसिंह कटरे	2020	सम्मिश्र साहित्य
20.	पेंडी	एड. देवेंद्र चौधरी	2021	कविता संग्रह
21.	पोवारी संस्कृति	श्री ऋषि बिसेन	2021	कविता संग्रह

22.	काव्य मंजिरी	श्री सी.एच.पटले	2021	कविता संग्रह
23.	खोपड़ीमा की दीवारी	श्री गुलाब बिसेन	2021	बालकथा संग्रह
24.	काव्य कुंज	श्री छगनलाल राहंगडाले	2021	कविता संग्रह
25.	पोवारी काव्यधारा	श्री चिरंजीव बिसेन	2021	कविता संग्रह
26.	गुरूगंगा	सौ. फुलवंता बाई चौधरी	2021	कविता संग्रह
27.	पोवारी गौरव	डॉ. शेखराम परसराम एडेकर	2021	कविता संग्रह
28.	पोवारी भाषा संवर्धन : मौलिक सिद्धांत व व्यवहार	श्री ओ सी पटले	2022	पोवारी भाषा का अध्ययन
29.	नक्षत्र	श्री यादोराव चौधरी	2022	कविता संग्रह
30.	भवानी माय की पुकार	श्री रामचरण पटले	2022	कविता संग्रह
31.	थेगरा	एड. देवेंद्र चौधरी	2022	कविता संग्रह
32.	मोरी बोली जग मा न्यारी	श्री छगनलाल राहंगडाले	2022	कविता संग्रह
33.	मयरी	श्री गोवर्धन बिसेन 'गोकुल'	2022	कविता संग्रह
34.	पोवारी काव्यदीप	श्री डी. पी. राहंगडाले	2023	कविता संग्रह
35.	फिपोली	श्री गुलाब बिसेन (संपादन)	2023	बालकविता संग्रह
36.	नवतरी	श्री गुलाब बिसेन	2023	कथा संग्रह
37.	देवघर	श्री ऋषि बिसेन	2023	कथा संग्रह
38.	पोवारी आराधना	डॉ. शेखराम परसराम एडेकर	2023	आरती संग्रह
39.	राजा भोज को राजत्व	श्री ओ. सी.पटले	2023	खंड काव्य

40.	वैनगंगा की आधुनिक काव्यधारा	श्री ओ. सी.पटले	2023	कविता संग्रह
41.	पोवारी हाना	सौ. छाया सुरेंद्र पारधी	2023	कहावतें
42.	पोवारी धरोहर	श्री ऋषि बिसेन	2023	गद्य संग्रह
43.	पोवारी	श्री ऋषि बिसेन	2023	कविता संग्रह
44.	समाजोत्थान का सिद्धांत	श्री ओ. सी.पटले	2023	सैद्धांतिक ग्रन्थ
45.	लाख्ताखाड़	सौ. वर्षा पटले राहंगडाले	2023	कविता संग्रह
46.	पोवारी कुनबा को ठाठ	श्री तुमेश पटले	2023	कविता संग्रह
47.	२०१८ की पोवारी भाषिक क्रांति	श्री ओ. सी.पटले	2024	कविता संग्रह
48.	पंवारी संस्कार	सौ. बिंदु बिसेन	2024	लेख और कथा संग्रह
49.	पुरखाइनको गौरवशाली इतिहास	श्री गोवर्धन बिसेन 'गोकुल'	2024	लेख, संस्मरण व लघुकथा संग्रह
50.	पंतूना	डॉ. प्रल्हाद हरिणखेडे	2024	काव्य संग्रह
51.	परी पोवारी	डॉ. प्रल्हाद हरिणखेडे	2024	काव्य संग्रह
52.	मोहतूर	डॉ. हरगोविद टेंभरे	2024	काव्य संग्रह
53.	गावतर	श्री गुलाब बिसेन	2024	बालकथा
54.	पोवारी गर्जना	श्री यशवंत कटरे	2024	काव्य संग्रह
55.	मायारू मोरी बोली	श्री उमेंद्र युवराज बिसेन	2024	काव्य संग्रह
56.	पोवारी पयचान	सौ. शारदा चौधरी राहंगडाले	2025	काव्य संग्रह
57.	गायखुरी	सौ. वर्षा पटले राहंगडाले	2025	काव्य संग्रह
58.	मायबोली	श्री हेमंत कुमार पटले	2025	काव्य संग्रह
59.	बिह्या का गाना	श्री यादोराव चौधरी	2025	काव्य संग्रह

6.4.3 समाज के इतिहास और संस्कृति पर लिखी गई गैर-पोवारी भाषा की पुस्तकें

	किताब	लेखक
1	पंवार धर्मोपदेश	स्व. लखाराम रे.ई., दोंदीवाड़ा
2	पंवारों की गर्रा महासभा व गोंडों का सहयोग	स्व. चिन्धू पटेल, मेढ़ा
3	पंवारों का कन्या बेचना वो नेताओं का बाकड़बिल्ला	स्व. चिन्धू पटेल, मेढ़ा
4	पंवारों का सुधार	स्व. चिन्धू पटेल मेढ़ा
5	पंवारों की लबड़ धोधी	स्व. चिन्धू पटेल,, मेढ़ा
6	पंवार दिग्दर्शन	स्व. हरीशंकर, बकेरा
7	पंवार धर्म प्रकाश	स्व. यादोराव पटेल, कल्यानपुर जिला सिवनी
8	पंवार जाति के जन्म, मरन, विवाह, श्राद्ध आदि का क्रमवार वृतांत	स्व. परसराम पटेल, पोंडी
9	पंवार जाति सुधारक नीति	स्व. ढीबरू महाजन, जेवनारा, जिला बालाघाट
10	विवाह विचार	श्रीमान गोपाल पटेल, बोट्टा कंजई
11	श्री पंवार कुल दर्पण	रामलाल ताराचन्द पाटिल कुड़वा, जिला भंडारा
12	यज्ञवंशीय प्रमार (पंवार) क्षत्रिय कुल की उत्पत्ति	श्री दामोदर टेंभरे अधिवक्ता, बालाघाट
13	कर्मवीर पंवार	श्री सीताराम ठाकरे, नागपुर
14	धारा	श्री दौलतराम पंवार
15	विक्रम द्विसहस्त्रादि	श्री दौलतराम पंवार
16	पंवार क्षत्रिय महिला	श्रीमती पार्वतीबाई पटेल, गोंदिया
17	हमारी मातृभाषा	श्री ताराचन्द ऐड़े शिक्षक, गोंदिया

18	उन्नति की पुकार	श्री दमयंति बाई
19	पंवारों के उत्पत्ति का विवरण	श्री जैपाल चौधरी वकील, बालाघाट
20	जगदेव परमार	श्रीमती जानकी बाई चौधरी
21	क्या, ये ही वीर धार के पंवार हैं	श्री के.एल.पंवार पटेल
22	पोवार	श्री महेन पटले
23	पोवारों की गौरवगाथा	श्री नितेश एल भगत
24	पोवारी भाषा का परिचय	श्री ऋषि बिसेन
25	पोवारी भाषा का परिचय और इतिहास	श्री ओ. सी.पटले
26	पोवारों का इतिहास	श्री ओ. सी.पटले
27	पोवारोत्थान	डॉ.विशाल बिसेन
28	मध्यभारत में पंवार(पोवार) समाज	श्री ऋषि बिसेन

यह संकलन विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचियों के आधार पर तैयार किया गया है। इसके अतिरिक्त कई अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, परंतु उनकी जानकारी उपलब्ध न होने के कारण उन्हें इस संकलन में शामिल नहीं किया जा सका है।

6.5 पंवार(पोवार) समाज के द्वारा धार्मिक और सामाजिक निर्माण कार्य

मालवा-राजपूताना के विभिन्न क्षेत्रों में पंवारों ने समय-समय पर अलग-अलग स्थानों पर शासन किया। अपने शासनकाल के दौरान उन्होंने न केवल राजनीतिक शक्ति का उपयोग किया, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूती प्रदान की। उन्होंने अपने कुलदेवताओं और कुलदेवियों की श्रद्धा में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। यह परंपरा केवल आस्था का प्रतीक नहीं थी, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को संरक्षित करने का भी एक सशक्त माध्यम रही।

इसी गौरवशाली परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, मालवा क्षेत्र के पंवार राजाओं ने भी कई मंदिरों, जलाशयों और सार्वजनिक उपयोग के स्थलों का निर्माण करवाया। जब वे मध्य भारत में आकर बसे, तब भी उन्होंने इस परंपरा को जीवित रखते हुए अपने

कुलदेवताओं, कुलदेवियों और आदर्श आराध्यों के मंदिरों का निर्माण किया। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार, नगरधन क्षेत्र में सर्वप्रथम पंवारों ने अपनी कुलदेवी महाकाली का मंदिर बनवाया था, जो आज भी उनकी आस्था और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है।

मराठा राजाओं के सहयोग से रामटेक क्षेत्र में अनेक मंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार किया गया, जिनमें प्रभु श्रीराम का मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह वह काल था जब पंवारों की वैनगंगा क्षेत्र में स्थायी बसाहट शुरू हुई। इसी समय उन्होंने रामपायली किले पर अपने आराध्य प्रभु श्रीराम का मंदिर बनवाया। इसके पश्चात् सन् १९११ में बैहर की प्रसिद्ध सिहारपाठ पहाड़ी पर भी एक भव्य श्रीराम मंदिर का निर्माण कार्य पूर्ण किया गया, जो आज भी श्रद्धा और सांस्कृतिक चेतना का केंद्र बना हुआ है।

पंवार समाज ने संगठनात्मक रूप से भी अपनी संस्कृति और सामाजिक एकता को सशक्त करने के प्रयास किए। इसी उद्देश्य से पंवार जाति सुधारनी सभा की स्थापना की गई, जिसके अंतर्गत यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक गांव में एक समिति का गठन होगा और इसके माध्यम से पंवार बहुल लगभग एक हजार गांवों को आपस में जोड़ा जाएगा। इस पहल का मुख्य उद्देश्य समाज की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और सामूहिक एकजुटता को बढ़ावा देना था। इस योजना के अंतर्गत पंवार छात्रावास, मंदिर, मंगल भवन, और सामाजिक भवनों का निर्माण कराया गया।

समाज के धार्मिक और सामाजिक जीवन को सशक्त करने के लिए विविध प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया। इन आयोजनों ने न केवल पंवार समाज की परंपराओं को जीवित रखा, बल्कि नई पीढ़ी को भी अपने गौरवशाली अतीत से जोड़ने का कार्य किया। इससे समाज में एकता, भाईचारा और सांस्कृतिक गर्व की भावना को नई ऊर्जा प्राप्त हुई।

कुछ पंवार परिवारों ने व्यक्तिगत स्तर पर भी धार्मिक गतिविधियों में योगदान दिया। उदाहरणस्वरूप, लालबर्रा के समीप स्थित ग्राम चिचगांव में स्व. रूपाबाई पटले द्वारा निर्मित राम दरबार अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल बन चुका है। इसके अतिरिक्त, मलाजखंड, चरेगांव जैसे नगरों में भी पंवार समाज द्वारा अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के मंदिरों का निर्माण कराया गया, जो अब उनके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पंवार समाज ने अपने ऐतिहासिक गौरव को पुनः जागृत करने के उद्देश्य से समाज के आदर्श राजा, सम्राट राजा भोज की प्रतिमाओं की स्थापना का कार्य आरंभ किया। यह अभियान आज भी निरंतर जारी है। वर्तमान में ग्राम-ग्राम स्तर पर सम्राट राजा भोज की प्रतिमाएं स्थापित की जा रही हैं। इस प्रयास के माध्यम से पंवार समाज की गौरवशाली परंपराओं और ऐतिहासिक धरोहरों को संरक्षित रखने की दिशा में एक ठोस और रचनात्मक पहल की गई है।

सम्राट राजा भोज की प्रतिमाएं समाज के प्रत्येक सदस्य को उनके अद्वितीय कार्यों, विद्वता, न्यायप्रियता और सांस्कृतिक योगदान की स्मृति कराती हैं। ये प्रतिमाएं केवल ऐतिहासिक स्मारक नहीं हैं, बल्कि पंवार समाज में एकता, आत्मगौरव और सामाजिक चेतना के प्रेरणास्रोत बन चुकी हैं। सम्राट भोज की यह विरासत आज भी समाज को दिशा, प्रेरणा और गौरव का बोध कराती है।

6.5.1 सिहारपाठ श्रीराम मंदिर: पंवार समाज की आस्था, परंपरा और एकता का प्रतीक

मध्यप्रदेश में बालाघाट जिले के बैहर नगर में लगभग तीन सौ फीट ऊँची सिहारपाठ नामक पहाड़ी पर, सन १९०९ में क्षत्रिय पंवारों द्वारा भगवान श्रीराम के मंदिर का शिलान्यास किया गया था। इस पहाड़ी की तराई में गोंड राजाओं द्वारा प्राचीन काल में एक 'सिंह मंदिर' का निर्माण किया गया था। इस मंदिर में एक हाथी के ऊपर सिंह विराजमान है। इस मंदिर के नाम पर सतपुड़ा पर्वतमाला में स्थित इस पहाड़ी को सिहारपाठ पहाड़ी कहा जाता है। यह पहाड़ी अत्यंत सुंदर है और इसका ऊपरी भाग समतल है। इस पहाड़ी पर पंवार समाज द्वारा बीस एकड़ भूमि खरीदकर अपने आराध्य प्रभु श्रीराम का मंदिर बनाकर एक भव्य तीर्थ स्थल का निर्माण किया गया। श्रीराम मंदिर का निर्माण कार्य सन १९११ में पूर्ण हुआ।

इस मंदिर के निर्माण के लिए 'पंवार जाति सुधारणी सभा' के सहयोग से 'पंवार श्रीराम मंदिर निर्माण समिति' का गठन किया गया था। इस समिति द्वारा बालाघाट जिले के तत्कालीन ब्रिटिश जिलाधीश ढेवर महोदय को आवेदन दिया गया था। समिति द्वारा खरीदी गई भूमि पर मंदिर निर्माण की अनुमति मिलने के पश्चात, सन १९०९ में मंदिर का शिलान्यास किया गया। इस कार्यक्रम में सारसडोल (बैहर) निवासी श्री संभा पटले को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कंजई निवासी श्री गोपाल जी बिसेन को मंत्री, गोरखपुर (बैहर) निवासी श्री गोमा सिंह जी टेंभरे को सचिव, पिंडकेपार (बैहर) निवासी श्री टिहली सिंह चौहान को खजांची, करेली (बैहर) निवासी श्री लिखनलाल टेंभरे को सामूहिक कार्य प्रमुख, भौरवाही (परसवाड़ा) बैहर निवासी श्री नरबद जी येड़े को खजांची, खरपड़िया निवासी श्री दादू जी येड़े को उप-खजांची, तथा करू मोहगांव निवासी श्री लक्ष्मण जी टेंभरे को खजांची नियुक्त किया गया। पोंडी निवासी श्री परसराम जी बिसेन के नेतृत्व में विभिन्न छोटे-छोटे समूह बनाए गए, जिन्हें मंदिर निर्माण कार्य में सहयोग प्रदान करने की जिम्मेदारी दी गई।

इसके अतिरिक्त कई अन्य सदस्य भी नियुक्त किए गए, जिन्हें मंदिर निर्माण हेतु विभिन्न दायित्व सौंपे गए। इन सदस्यों ने बाद में आयोजित अनेक बैठकों की अध्यक्षता भी की। इस कार्यक्रम में जत्ता निवासी श्री रामलाल जी रहांगडाले, लगमा निवासी श्री सुखलाल जी, सोनपुरी निवासी श्री मेहपतराव जी बिसेन, मंडई निवासी श्री मगल जी ठाकुर, घोड़ादेही (परसवाड़ा) निवासी श्री गंगाराम जी ठाकुर, बघोली (परसवाड़ा) निवासी श्री धानु सिंह जी बोपचे, घोड़ादेही निवासी श्री आत्माराम जी, झिरिया निवासी श्री गोन्दी सिंह जी बोपचे, कुरेंडा निवासी श्री गन्नु जी, डोंगरिया निवासी श्री बाजीराव जी गुरुजी, सोझर निवासी श्री तुलन जी पटेल, गुदमा निवासी श्री कुशोबा जी, दलदला निवासी श्री गुजोबा जी, और खोलवा निवासी श्री हीरालाल जी को सदस्य नियुक्त किया गया।

क्षत्रिय पंवार (पोवार) समाज द्वारा बैहर नगर में अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के मंदिर निर्माण का कार्य रामनवमी के पावन पर्व, दिनांक ०७/०४/१९११ दिन शुक्रवार को पूर्ण किया गया। यह दिन छत्तीस कुल पंवार समाज के लिए अत्यंत हर्ष और उल्लास का दिन था। इस अवसर पर यहाँ एक भव्य मेले का आयोजन किया गया, जिसमें बालाघाट जिले के जिलाधीश को भी आमंत्रित किया गया था। इस दिन जिलाधीश द्वारा कई समाजजनों को अनेक नए गांवों की मुक्कदमी, जागीरदारी आदि पद प्रदान

किए गए। यद्यपि राम मंदिर के निर्माण से पूर्व भी यहाँ मेले का आयोजन होता था, किन्तु मंदिर की स्थापना के पश्चात प्रतिवर्ष रामनवमी के अवसर पर यहाँ मेला आयोजित किया जाने लगा और यह परंपरा आज भी जारी है।

इस मंदिर के निर्माण में अनेक समाजजनों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ। प्रमुख रूप से पोंडी निवासी श्री परसराम जी बिसेन द्वारा दो एकड़ भूमि और कंजई निवासी श्री गोपाल जी बिसेन द्वारा भी दो एकड़ भूमि खरीदकर दान में दी गई। इनके तथा अन्य दानदाताओं के सहयोग से राजपुर गांव में कुल बावन एकड़ भूमि खरीदी गई। इसके उपरांत यहाँ निरंतर विकास होता गया। बाद में, सन १९२१ में पहाड़ी पर एक सौ फीट गहरा कुआँ खोदा गया। पहाड़ी पर जाने हेतु सीढ़ियों का मार्ग, सड़क मार्ग, कुआँ, महादेव मंदिर, हनुमान मंदिर, महामाया मंदिर, राजाभोज भवन, सभा भवन, बगीचा, महाराजा भोजदेव की प्रतिमा आदि का निर्माण पंवार समाज द्वारा किया गया।

समाज की प्रथम पंजीकृत संस्था 'पंवार राम मंदिर ट्रस्ट, बैहर' (पंजीयन क्रमांक १/४/१२/१९७८, क्रमांक १ बी ११३(१) १९७६-७७) इस पंवार तीर्थस्थल के रखरखाव और देखरेख का कार्य करती है।

6.5.2 पंवार मंगल भवन, बालाघाट

पंवार समाज के विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों के लिए समाजजनों ने अपने भवनों का निर्माण करना प्रारंभ किया। इसी श्रृंखला में, बालाघाट में वर्ष २००५ में 'पंवार मंगल भवन' का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। वर्ष १९९९ में स्थापित 'पंवार मांदी समिति', बालाघाट इस भवन की देखरेख एवं प्रशासनिक नियंत्रण का कार्य करती है।

इस भवन के निर्माण हेतु पंवार समाज के गौरव और दानवीर सदस्य, स्व. श्री चौधरी जी द्वारा भूमि दान में दी गई थी, जिस पर आज यह 'पंवार मंगल भवन', समाज के सामूहिक सहयोग से भव्य रूप में स्थापित है। इस भवन के निर्माण में समाज

के अनेक सदस्यों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहा है, और वर्तमान में यह भवन समाज के सदस्यों को विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन हेतु न्यूनतम शुल्क पर उपलब्ध कराया जाता है।

पंवार (पोवार) समाज के सदस्यों को अपने सामाजिक भवन में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करने में गर्व की अनुभूति होती है। समाज की इस प्रकार की पहल प्रेरणास्पद है और यह संकेत देती है कि अन्य नगरों में भी सामूहिक प्रयासों से समाज के भवन, छात्रावास, पुस्तकालय आदि का निर्माण किया जाना चाहिए, जिससे स्वजातीय सदस्यों को अध्ययन एवं विविध सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए सहयोग प्राप्त हो सके।

6.5.2 पंवार धर्मशाला, मंडला: नर्मदा तट पर समाज की एक ऐतिहासिक पहल

सन १९८७ में पंवार राम मंदिर ट्रस्ट, बैहर की उपस्थिति में, श्री देवीसिंह ठाकुर की अध्यक्षता में एक बैठक आयोजित की गई। इस बैठक में यह निर्णय लिया गया कि माँ नर्मदा के आँचल में स्थित मंडला नगर में पंवार समाज के नाम से एक धर्मशाला का निर्माण किया जाए।

इस ऐतिहासिक कार्य को पूर्ण करने हेतु एक समिति का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष श्री बुद्धनलाल ठाकरे (ग्राम - सरेखा), उपाध्यक्ष श्री ताराचंद राहंगडाले (ग्राम - काश्मीरी), कोषाध्यक्ष श्री आपजी गौतम (ग्राम - परसाटोला), सचिव श्री पांडुरंग बिसेन (सरेखा) नियुक्त किए गए। साथ ही, समिति के सदस्य श्री गोंदीलाल टेंभरे, श्री लिखीराम ठाकरे, श्री धंसराम पटले, श्री खुशीराम पटले, श्री हन्नूलाल देशमुख (सरेखा) और श्री रोशनलाल एढ़े (कुमादेही) थे।

समिति द्वारा पंवार (पोवार) समाज से सहयोग राशि एकत्रित की गई, जिसके फलस्वरूप वर्ष १९९० तथा १९९४ में पंवार राम मंदिर ट्रस्ट के नाम पर नर्मदा संगम घाट, मंडला में भूमि खरीदी गई। पंवार राम मंदिर ट्रस्ट, बैहर के तत्कालीन अध्यक्ष श्री

मुन्नीलाल पटेल (लिंगा) तथा सचिव श्री मूलचंद ठाकुर (पौनी) के मार्गदर्शन में पंवार धर्मशाला के निर्माण का कार्य आरंभ हुआ।

इस कार्य में काश्मीरी निवासी श्री तीरथराज राहंगडाले तथा परसाटोला निवासी श्री मोहनलाल जी गौतम के साथ अनेक स्वजातीय बंधुओं का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

१४ जनवरी १९९५ को, श्री पन्नालाल जी बिसेन की अध्यक्षता में पंवार धर्मशाला का भव्य उद्घाटन सम्पन्न हुआ। इस भवन के प्रथम तल पर एक सभा हॉल निर्मित है, तथा यात्रियों हेतु स्वयं भोजन बनाने की भी व्यवस्था उपलब्ध कराई गई है। पंवार राम मंदिर ट्रस्ट, बैहर इस पंवार धर्मशाला के व्यवस्थापन एवं संचालन का कार्य देखता है।

अध्याय 7

विविध सामाजिक लेख

अध्याय 7
विविध सामाजिक लेख

7.1
अयोध्या और पंवार/परमार वंश का ऐतिहासिक संबंध

इतिहास के अनेक प्रमाण यह स्पष्ट करते हैं कि अयोध्या नगरी और पंवार/परमार वंश के महान सम्राट विक्रमादित्य के बीच गहरा संबंध रहा है। राजा हरिश्चंद्र, जो स्वयं प्रभु श्रीराम के पूर्वज माने जाते हैं, अपने वंश को पंवार परंपरा से जोड़ते थे। यही कारण था कि विक्रमादित्य ने भगवान श्रीराम को अपने कुलपुरुष के रूप में स्वीकार किया और अयोध्या नगरी के पुनर्निर्माण का संकल्प लिया। आज जो अवशेष अयोध्या में प्राप्त हुए हैं, वे उनके शासनकाल के माने जाते हैं, और इनसे उनके अयोध्या से गहरे जुड़ाव की पुष्टि होती है।

हाल के वर्षों में सोशल मीडिया ने इस ऐतिहासिक तथ्य को व्यापक रूप से सामने लाने का कार्य किया है। हजारों लोगों ने इस विरासत के सम्मान में अयोध्या में सम्राट विक्रमसेन विक्रमादित्य की प्रतिमा स्थापित करने की मांग की है। यह जनचेतना आधुनिक युग में समाज के उस हिस्से को फिर से जोड़ रही है, जो अपने इतिहास से अनभिज्ञ था या जिसे वर्षों तक भुला दिया गया।

उज्जैन के प्रसिद्ध सम्राट महाराज भोज ने भी विक्रमादित्य को न केवल अपना आराध्य माना, बल्कि उन्हें अपना पूर्वज भी स्वीकार किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि अयोध्या केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि पंवार/परमार वंश की ऐतिहासिक चेतना का भी केंद्र रही है। इस वंश के अन्य महानायकों जैसे गुरु भरथरी, महाराजा

मुंजदेव, भोजदेव तथा वीर महाराज जगदेव पंवार पर भी प्राचीन ग्रंथों, जनश्रुतियों और शोधकार्यों में विस्तार से चर्चा की गई है।

विगत कुछ वर्षों में सोशल मीडिया ने उन ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को फिर से जीवंत किया है जिन्हें लंबे समय तक उपेक्षित किया गया। यदि शासन इन महापुरुषों को पाठ्यपुस्तकों में स्थान नहीं देता, तो भी यह हमारी सांस्कृतिक जिम्मेदारी है कि हम अगली पीढ़ी को इन महान विभूतियों के योगदान और त्याग से अवगत कराएँ।

महाराज जगदेव पंवार की वीरता की गाथा शायद हमें किसी पाठ्यपुस्तक में न मिली हो, पर जनमानस के लोकगीतों, लोककथाओं और पारिवारिक स्मृतियों में वह सदैव जीवित रही है। यह वह विरासत है जो पुस्तकों से अधिक हृदयों में बसती है और जिसे गुरुकुल परंपरा के समान ज्ञान के हस्तांतरण से आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

आज की डिजिटल दुनिया में सोशल मीडिया केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का सशक्त उपकरण बन चुका है। इस मंच का उपयोग हमें अपनी सनातनी परंपराओं, महान वंशों और वीर महापुरुषों के इतिहास को सहेजने और फैलाने के लिए करना होगा। समाज की बिखरी हुई स्मृतियों को फिर से एकत्र कर उन्हें संरक्षित करने की आवश्यकता है।

यह आवश्यक है कि हमारे पास उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाण, ग्रंथों की जानकारी और मौखिक परंपराओं को एकत्र कर उन्हें लेखों, पुस्तकों और डिजिटल माध्यमों से घर-घर पहुँचाया जाए। जब दादा-दादी अपने बच्चों को पंवार/परमार युगपुरुषों की गाथाएँ सुनाएँगे, तभी वह इतिहास जीवंत रहेगा और हर बच्चा अपनी जड़ों से जुड़कर गौरव का अनुभव करेगा।

यह कार्य अब केवल कुछ इतिहासकारों या संगठनों का नहीं, बल्कि हर पंवार(पोवार) समाज के सदस्य का धर्म बन चुका है। सौभाग्य से, समाज के कई संगठन निष्कलंक भाव से इस दिशा में निष्ठा और समर्पण के साथ कार्य कर रहे हैं। यह समय है कि हम सब एकजुट होकर अपनी संस्कृति और इतिहास को पुनः प्रतिष्ठित करें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ गर्व से कह सकें कि वे एक ऐसे वंश से हैं जिसकी जड़ें अयोध्या जैसे पवित्र और ऐतिहासिक भूमि में भी फैली हुई हैं।

****

7.2
पोवार समाज और महिलाओं का व्यवसाय चयन

पोवार समाज में नारी को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखा गया है और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। परिवार के संचालन और सामाजिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी किसी भी मायने में पुरुषों से कम नहीं रही है। हमारे समाज की महिलाएं न केवल पारिवारिक जिम्मेदारियों का सफलतापूर्वक निर्वहन करती हैं, बल्कि समाज की सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं को भी पूरी निष्ठा और समर्पण से आगे बढ़ा रही हैं।

हम यह गर्व से कह सकते हैं कि पोवार समाज की महिलाओं ने सामाजिक परंपराओं और रीति-रिवाजों के पालन में पुरुषों से कहीं बेहतर कार्य किया है। वे त्योहारों, संस्कारों, धार्मिक अनुष्ठानों में अग्रणी भूमिका निभाती हैं, जिससे समाज की सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित और सुदृढ़ बनी हुई है। महिलाओं की यही सक्रिय भूमिका समाज को स्थायित्व और संतुलन प्रदान करती है।

आज के समय में हमारे समाज की महिलाएं शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति, चिकित्सा, प्रशासन, तकनीकी क्षेत्र सहित हर दिशा में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रही हैं। यह परिवर्तन हमारे समाज के जागरूकता और महिलाओं को दिए गए सहयोग का परिणाम है। बेटियाँ और बहुएँ आज अपनी पसंद के अनुसार व्यवसाय का चयन कर रही हैं और आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हैं। इस प्रक्रिया में समाज भी उन्हें सहयोग और समर्थन दे रहा है, जो अत्यंत सराहनीय है।

हालांकि, यह भी सत्य है कि कुछ व्यावहारिक समस्याएँ अब भी मौजूद हैं, जो महिलाओं की प्रगति में बाधा बनती हैं। आर्थिक तंगी के कारण कई बार लड़कियाँ अपनी पसंद का करियर नहीं चुन पातीं। उन्हें परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाने, घर की आर्थिक स्थिति संभालने या छोटे भाई-बहनों की पढ़ाई में सहायता करने के लिए अपनी शिक्षा और करियर की इच्छाओं को पीछे छोड़ना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, एक और बड़ी समस्या यह देखने को मिलती है कि अच्छी नौकरी प्राप्त करने में समय लग जाता है। इस दौरान विवाह योग्य आयु भी पार होने लगती है, जिससे लड़कियों पर घर बसाने का सामाजिक दबाव बढ़ता है। इस दबाव के कारण वे कई बार अपनी करियर संबंधी तैयारी अधूरी छोड़ देती हैं। प्रतिस्पर्धात्मक

परीक्षाओं में अच्छे अंक लाना कठिन हो जाता है और विवाह के बाद पढ़ाई जारी रखना भी कई बार संभव नहीं हो पाता।

इन सभी समस्याओं के समाधान हेतु हमें सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है। हमें ऐसी लड़कियों को प्रेरित करना चाहिए कि वे विवाह के बाद भी अपनी शिक्षा और तैयारी को जारी रखें। साथ ही, परिवार और समाज को भी चाहिए कि वे उन्हें आवश्यक सहयोग और मार्गदर्शन प्रदान करें। जब लड़कियाँ आत्मनिर्भर बनेंगी, तभी वे न केवल अपने परिवार का, बल्कि समाज का भी उत्थान करेंगी।

हमें यह समझने की आवश्यकता है कि एक शिक्षित और स्वावलंबी नारी पूरे समाज के विकास की आधारशिला होती है। यदि हम अपनी बहनों और बेटियों को सही अवसर और दिशा देंगे, तो वे निश्चित ही समाज और राष्ट्र को गौरव प्रदान करेंगी। उनका आत्मबल, संकल्प और समर्पण समाज को नई ऊँचाइयों तक ले जाने की क्षमता रखता है।

अतः यह आवश्यक है कि हम महिलाओं को उनके अधिकार, शिक्षा और करियर के प्रति जागरूक बनाएं, उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करें और उनके सपनों को पूरा करने में सहभागी बनें। इसी में समाज की सच्ची उन्नति और समृद्धि निहित है।

****

7.3
क्षत्रिय पंवार (पोवार) समाज के सर्वांगीण विकास हेतु युवाओं का योगदान

हम सभी यह सुनते और समझते आए हैं कि अपनी संस्कृति, परंपरा और पूर्वजों का सम्मान करना हमारा नैतिक कर्तव्य है, यह जिम्मेदारी विशेष रूप से युवा पीढ़ी की होती है कि वह न केवल अपने इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करे, बल्कि उन्हें आने वाली पीढ़ियों तक भी पहुंचाए। इसी क्रम में क्षत्रिय पंवार (पोवार) समाज के युवाओं ने जो भूमिका निभाई है, वह प्रशंसनीय ही नहीं, बल्कि अनुकरणीय भी है।

पंवार समाज ने विभिन्न कालखंडों में साहस, पराक्रम और राष्ट्रभक्ति का परिचय देते हुए अनेक ऐतिहासिक युद्धों में हिस्सा लिया और वीरता की अमिट छाप छोड़ी। आज भी समाज अपनी ऐतिहासिक परंपराओं, गौरवशाली विरासत और संगठन की भावना को लेकर आगे बढ़ रहा है, इस यात्रा में युवा वर्ग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक बन गई है।

वर्तमान समय में समाज का युवावर्ग केवल अपनी संस्कृति के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के सर्वांगीण विकास में भी सक्रिय योगदान दे रहा है। समाज की मातृभाषा "पोवारी" के संरक्षण हेतु अनेक साहित्यकार, कलाकार और शोधकर्ता समर्पित रूप से कार्य कर रहे हैं, यह एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक है, जहाँ युवा अपनी जड़ों को पहचानते हुए आधुनिकता के साथ संतुलन बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं।

माँ वैनगंगा के आंचल में पला-बढ़ा पंवार समाज आज शिक्षा, व्यापार, प्रशासन, कला, तकनीक और उद्यम जैसे क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है, समाज के युवा शिक्षा को अपना अस्त्र बनाकर नई ऊंचाइयों को छू रहे हैं, वे आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर होते हुए न केवल अपने परिवार, बल्कि समाज और राष्ट्र को भी सशक्त बना रहे हैं।

हालांकि, यह भी सच है कि आज की तेज़ रफ्तार दुनिया में पारंपरिक संस्कृति से जुड़ाव बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, लेकिन पंवार समाज के युवाओं ने इस चुनौती को अवसर में बदला है, उन्होंने यह साबित किया है कि आधुनिकता और परंपरा

एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं। वे सोशल मीडिया, तकनीकी मंचों, सेमिनारों और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से अपने इतिहास, भाषा, रीति-नीति और मूल्यों को पुनर्जीवित कर रहे हैं।

हाल के वर्षों में कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा समाज की पहचान को धूमिल करने के प्रयास किए गए हैं, ऐसे में युवाओं का सजग रहना, अपनी पहचान पर गर्व करना और दूसरों को भी जागरूक करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। आज के युवा यह समझते हैं कि समाज की एकता केवल सांस्कृतिक जागरूकता से ही संभव है, और यही एकता राष्ट्रीय एकीकरण की नींव को भी मजबूत बनाती है।

सामाजिक संगठन, छात्रवृत्तियाँ, कैरियर मार्गदर्शन, विवाह योग्य युवाओं के लिए मेल-मिलाप कार्यक्रम, वृद्धजनों के लिए सेवा प्रकल्प जैसे अनेक क्षेत्रों में भी युवाओं की भागीदारी बढ़ रही है, वे केवल सांस्कृतिक प्रहरी नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के वाहक बनकर उभरे हैं।

आज क्षत्रिय पंवार (पोवार) समाज का युवा वर्ग न केवल अपने गौरवशाली अतीत को सहेजने में जुटा है, बल्कि समाज के बहुआयामी विकास की दिशा में भी निरंतर प्रयासरत है, उनके प्रयासों से समाज न केवल आत्मगौरव की भावना से भर रहा है, बल्कि आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में भी मजबूती से खड़ा है।

यह आवश्यक है कि समाज के सभी वर्ग, विशेषकर वरिष्ठजन, युवाओं को मार्गदर्शन और प्रेरणा दें, ताकि वे आने वाले समय में समाज को नई दिशा और ऊंचाई प्रदान कर सकें, जिस प्रकार युवाओं ने आज यह जिम्मेदारी अपने कंधों पर ली है, वह भविष्य के लिए आशा और विश्वास का प्रतीक है।

****

7.4
पोवारी सांस्कृतिक चेतना केंद्र: समाज की अस्मिता और भाषा संरक्षण की पहल

नगरधन-वैनगंगा क्षेत्र में पंवारों को बसने के लगभग ३२५ वर्ष हो चुके हैं, और इन तीन शतकों में इस समाज ने इस क्षेत्र में एक विशिष्ट और सम्मानजनक पहचान बनाई है। मालवा राजपुताना से आए इन क्षत्रियों के पंवार (पोवार) संघ ने इस नवीन क्षेत्र की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल लिया है, लेकिन साथ ही अपनी मूल राजपुताना पहचान, संस्कृति और मूल्यों को यथावत बनाए रखा है।

पोवार समाज आज भी अपनी पोवारी संस्कृति और गरिमा के साथ जीवन यापन करता है और निरंतर विकास के मार्ग पर अग्रसर है। शाह बुलंद बख्त से लेकर ब्रिटिश काल तक, इन क्षत्रियों ने स्थानीय प्रशासन, सामाजिक व्यवस्थाओं और सैन्य सेवाओं में प्रभावशाली भूमिका निभाई है। वैनगंगा क्षेत्र में बसने के बाद, पंवारों ने खेती को अपना प्रमुख व्यवसाय बनाते हुए इस क्षेत्र को कृषि के क्षेत्र में समृद्ध और उन्नत किया।

देश को आज़ादी मिलने के बाद समाज की प्राथमिकताएँ बदलीं और खेती के साथ-साथ नौकरी तथा अन्य व्यवसायों की ओर लोगों का रुझान बढ़ा। आज समाज के लोग विभिन्न क्षेत्रों में अपनी मेहनत और प्रतिभा से निरंतर प्रगति कर रहे हैं। जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ कृषि जोतों का आकार छोटा होता गया है, और साथ ही श्रमिकों की कमी के कारण अब कृषि एकमात्र आजीविका नहीं रह गई है। फलस्वरूप समाज के लोग नौकरी और व्यापार जैसे अन्य स्रोतों को अपनाने के लिए विवश हुए हैं। इसी के चलते समाज का एक बड़ा हिस्सा रोजगार की खोज में अन्य शहरों की ओर प्रवास कर चुका है।

वैनगंगा क्षेत्र से सबसे अधिक विस्थापन नागपुर, रायपुर जैसे शहरों की ओर हुआ है, जहाँ समाज के कई सदस्य आज स्थायित्व प्राप्त कर चुके हैं। हालांकि कोरोना महामारी के दौरान अनेक परिवार अपने मूल गाँवों की ओर लौटे, जिससे गाँवों में पुनः जीवन का संचार हुआ। बालाघाट, गोंदिया, सिवनी और भंडारा जिलों के मूल निवासी

ये पंवार, जो छत्तीस क्षत्रिय कुलों में से एक गौरवशाली कुल हैं, आज देश-विदेश में अपने कर्म और योगदान से समाज का नाम रोशन कर रहे हैं।

विकास के आर्थिक पहलुओं के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों की ओर भी ध्यान देना अनिवार्य है। किसी भी समाज की सच्ची तरक्की तभी मानी जा सकती है जब आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक पहचान भी सुरक्षित और सजीव रहे। इस दृष्टिकोण से यह हमारे लिए गर्व की बात है कि हमारी अपनी एक विशिष्ट बोली है, जिसे पोवारी कहा जाता है। यह केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि हमारी अस्मिता और पहचान का प्रतीक है।

वर्तमान समय में समाज की जनसंख्या लगभग तेरह से पंद्रह लाख के बीच मानी जाती है, किंतु चिंताजनक बात यह है कि इसमें से लगभग आधी जनसंख्या ही पोवारी भाषा को बोलती या समझती है। यह प्रतिशत समय के साथ घटता जा रहा है, और यदि इस पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया, तो आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मातृभाषा से पूरी तरह कट सकती हैं। यदि समाज के सभी लोग मिलकर प्रयास करें, तो हम इस स्थिति को पलट सकते हैं और अपनी आने वाली पीढ़ी को पोवारी भाषा को सीखने और अपनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

पोवारी हमारी मातृभाषा है, लेकिन हिंदी और मराठी जैसी भाषाएँ विभिन्न क्षेत्रों में इसका स्थान लेती जा रही हैं। यह बदलाव स्वाभाविक है, लेकिन हमें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि पोवारी को हमारे परिवार और समाज में प्राथमिकता मिले, क्योंकि कोई भी भाषा तभी जीवित रहती है जब उसका निरंतर प्रयोग किया जाता है। यह केवल भाषाई संरक्षण का विषय नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक आत्मगौरव का सवाल भी है।

****

7.5
सांस्कृतिक चेतना और समाजोत्थान की ओर पंवार समाज का सशक्त कदम

हमारा समाज अब हर क्षेत्र में निरंतर तरक्की कर रहा है और इस यात्रा को और भी ऊँचाइयों तक पहुँचाने की आवश्यकता है। हमारे पूर्वजों ने पावन वैनगंगा के आंचल में आकर कृषि कार्यों में कई सुधार किए थे और आज भी समाज के लोग विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान बना रहे हैं। हमारे समाज का यह अद्वितीय इतिहास हमें प्रेरित करता है कि हम अपनी संस्कृति और परंपराओं का सम्मान करते हुए नई पीढ़ी को और अधिक ऊँचाइयों तक पहुँचाएँ।

आज की पीढ़ी को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए हमें समाज के उन सभी सम्माननीय और सफल व्यक्तित्वों का साथ लेना चाहिए जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सफलता का परचम लहराया है। समाज के अग्रणी लोग, जिन्होंने शिक्षा, विज्ञान, व्यापार, खेल और अन्य क्षेत्रों में उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उन्हें अपनी सफलता की कहानियाँ साझा करनी चाहिए। इसके माध्यम से वे नई पीढ़ी को यह समझा सकते हैं कि हमारे पूर्वजों का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है और हमें अपने उन्नत संस्कारों के साथ अपने परिवार, समाज और देश को ऊँचे सपने देखने और उन्हें साकार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

हमारा इतिहास वास्तव में अत्यंत गौरवशाली है। पिछले तीन शताब्दियों में हमारे पूर्वजों ने सामूहिक प्रयासों से तानाशाह औरंगज़ेब की सेना को इस क्षेत्र में पराजित किया और मराठों के साथ मिलकर कई क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की। इसके बाद विजय के रूप में प्राप्त नए क्षेत्रों को उन्होंने अपनी मेहनत और संघर्ष से सम्पन्न एवं समृद्ध बनाया। यह वीरता और परिश्रम हमारी पहचान है। साथ ही, पंवार समाज ने वैनगंगा क्षेत्र में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई। छत्तीस क्षत्रिय कुलों के संघ ने इस क्षेत्र में कृषि, सैन्य और प्रशासनिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाई। यह उनकी मेहनत और एकजुट प्रयासों का ही परिणाम था कि वैनगंगा क्षेत्र आज समृद्ध और उन्नत कहलाता है। हम उन वीर क्षत्रियों के वंशज हैं और उनका गौरवशाली इतिहास हमें प्रेरित करता है कि हम भी अपने-अपने क्षेत्रों में विकास की नई ऊँचाइयों को छुएं।

सम्राट विक्रमादित्य, महाराजा भोज और राजा जगदेव पंवार जैसे महान व्यक्तित्व हमारे आदर्श हैं। उनके उच्च आदर्श, वीरता और राष्ट्रसेवा के प्रति समर्पण हमें प्रेरित करते हैं। उन्होंने न केवल अपने समय में शासन किया, बल्कि अपने समाज को सम्मान और संस्कृति को संरक्षण प्रदान किया। उनके द्वारा अपनाए गए मूल्य और दृष्टिकोण हमें भी अपने जीवन में अपनाने चाहिए ताकि हम अपने समाज और देश को गर्व प्रदान कर सकें। इन महान व्यक्तित्वों की प्रेरणा से ही हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। जब हम समाज के उत्थान के लिए एकजुट होकर कार्य करेंगे, तब यह केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं होगी, बल्कि समाज के सामूहिक विकास का आधार भी बनेगी।

आज के समय में समाज को कई नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। युवा पीढ़ी को इन समस्याओं से निपटने के लिए उचित मार्गदर्शन और सहयोग की आवश्यकता है। समाज में बढ़ते रोजगार के अवसरों के साथ हमें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि हम अपनी सांस्कृतिक पहचान को न खोने दें। पोवारी बोली, हमारी प्राचीन संस्कृति, रीति-रिवाज और इतिहास को बचाने हेतु हमें सामूहिक प्रयास करने होंगे। इसके लिए हमें सांस्कृतिक चेतना केंद्रों की स्थापना करनी चाहिए, जहाँ हमारे बुजुर्ग हमारी बोली, इतिहास, परंपराएं और संस्कृति की जानकारी नई पीढ़ी को दें।

हमारे समाज में आजकल के युवा अधिकतर हिंदी और मराठी को प्राथमिकता दे रहे हैं, लेकिन हमें अपनी मातृभाषा 'पोवारी' को संरक्षित करने के लिए प्रयास करने चाहिए। यह केवल एक बोली नहीं, हमारी पहचान है, और हमें इसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाने की जिम्मेदारी स्वयं उठानी होगी। यदि हम इसे छोड़ देंगे, तो यह हमारी संस्कृति के ह्रास का कारण बनेगा। समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति गर्व और सम्मान का भाव उत्पन्न करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। यदि हम पोवारी बोली का अधिक से अधिक प्रयोग अपने परिवार और समाज में करेंगे, तो हम इसे बचाने और आगे बढ़ाने में सफल हो सकते हैं।

समाज के समग्र विकास के लिए केवल एकजुटता ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमें अपनी संस्कृति और पहचान को संरक्षित रखते हुए सामाजिक समस्याओं की ओर भी सजग दृष्टि रखनी होगी। उदाहरणस्वरूप, दहेज प्रथा, अंतरजातीय विवाह, और

धार्मिक परिवर्तन जैसी समस्याएं हमारे समाज को प्रभावित कर रही हैं। हमें इनका समाधान खोजकर समाज को एक स्थिर और सशक्त दिशा प्रदान करनी होगी। केवल वार्षिक कार्यक्रमों, जयंती उत्सवों या अन्य आयोजनों से समाज का उत्थान नहीं होगा। इसके लिए निरंतर प्रयास और संकल्प की आवश्यकता है। हमारी बोली और संस्कृति के संरक्षण के लिए हमें निरंतर कार्य करते रहना होगा।

हमारे पूर्वजों ने अपने गौरवशाली इतिहास को बड़े जतन से सहेज कर हमें सौंपा है। अब यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम इस धरोहर को भावी पीढ़ी तक पहुँचाएँ। यदि हम अपनी संस्कृति और पहचान को बचाने में सफल होते हैं, तो हम न केवल अपने समाज का कल्याण करेंगे, बल्कि एक मजबूत, स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर राष्ट्र के निर्माण में भी योगदान देंगे। हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना होगा और इसे एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में अपनाना होगा। हम सभी को मिलकर समाज के उत्थान और विकास में अपना योगदान देना चाहिए और हमारी ऐतिहासिक पहचान तथा संस्कृति को हमेशा के लिए जीवित रखना चाहिए।

****

7.6
पोवार (पंवार) समाज का गौरवशाली इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर

मालवा राजपुताना से नगरधन होते हुए वैनगंगा क्षेत्र में आकर बसने वाले पोवारों का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है। कठिन चुनौतियों के बावजूद, उन्होंने अपने अदम्य साहस और वीरता के साथ सैकड़ों वर्षों का सफर अपनी पहचान और संस्कृति को बचाते हुए पूरा किया है। छत्तीस क्षत्रिय कुलों के इस संघ ने सदैव अपने क्षत्रिय धर्म का पालन किया, और आज भी इनके वंशजों के मुखमंडल से ही वैभवशाली अतीत के दर्शन हो जाते हैं।

मालवा में पंवार राजवंश ने उत्कृष्ट शासन प्रदान किया था। खुद को उज्जैन नरेश सम्राट विक्रमादित्य का वंशज मानने वाले पंवार, परमार राजाओं में राजा उपेंद्र, राजा शियाक, राजा मुंजदेव, राजा भोजदेव, राजा उदियादित्य, राजा जगदेव पंवार, राजा महलकदेव आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने महान कार्यों के माध्यम से क्षत्रिय वंश की गरिमा को शिखर तक पहुँचाया। मालवा सहित अनेक क्षेत्रों पर मुस्लिम आक्रांताओं के नियंत्रण के बाद, राजपूतों को निरंतर संघर्ष करना पड़ा। तब हमारे पूर्वजों ने अन्य क्षत्रिय समुदायों के साथ मिलकर, अपने दुश्मनों से बदला लेने के लिए विभिन्न भारतीय राजाओं का सहयोग किया। उन्होंने मुगलों से लोहा लिया और बुंदेलखंड तथा देवगढ़ में उन्हें पराजित किया।

राजपूतों की संयुक्त सेना, जिसे विदर्भ क्षेत्र में पंवार, पोवार राजपूतों के नाम से जाना गया, ने औरंगज़ेब की शक्तिशाली सेना को भी पराजित किया और देवगढ़ के राजा शाह बुलंद बख्त का सहयोग किया। बाद में, इन्हीं राजपूतों ने नागपुर के भोसले मराठों को भी सैन्य और प्रशासनिक सहयोग प्रदान कर, उन्हें छत्तीसगढ़ से लेकर कटक और बंगाल तक विजय प्राप्त करने में सहायता की।

अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में, जब ये राजपूत नगरधन में आकर बसे, तब स्थानीय राजाओं ने उन्हें वैनगंगा क्षेत्र में बसने के लिए भूमि प्रदान की। साथ ही, उन्हें सैनिक छावनियों और किलों का नियंत्रण भी सौंपा गया। नगरधन, आम्बागढ़, प्रतापगढ़, सानगढ़ी, रामपायली, लांजी जैसे प्रमुख किलों की सुरक्षा और सैन्यबल की जिम्मेदारी भी पंवार राजपूतों को सौंपी गई। इसके अलावा, उन्हें कई जागीरें भी दी गई,

जैसे रोशना, तिरखेड़ी, चंदनपुर, महगांव, तिरोड़ा, तुमसर, देवगांव-कोथुरना, उगली-केवलारी, कामठा, मेंढकी, धोबीसर्रा आदि।

कई विचारकों ने वैनगंगा क्षेत्र में बसे पंवार, पोवार क्षत्रियों को मुस्लिम आक्रमण के कारण भागकर आया हुआ बताया है, जो कि पूर्णतः भ्रामक और ऐतिहासिक तथ्यों से परे है। यह छत्तीस कुलों का वह क्षत्रिय समूह था, जो औरंगज़ेब के विरुद्ध संघर्ष के लिए, देवगढ़ के राजा शाह बुलंद बख्त के आमंत्रण पर मालवा, राजपुताना और बुंदेलखंड से यहाँ आया था और युद्ध में सहयोग करने के बाद यहीं स्थायी रूप से बस गया। मराठा काल में भी इनकी सैन्य और प्रशासनिक भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही थी। स्थानीय राजाओं ने इन्हें यहाँ बसने हेतु प्रेरित किया, और वे अपने पूरे परिवार के साथ यहाँ आकर स्थायी रूप से बस गए। वे छत्तीस कुलों के अन्य कुलों में ही विवाह करते थे, जैसा कि पहले से बुंदेलखंड और राजपुताना के सैन्य अभियानों में एक साथ रहते हुए भी परंपरा थी। इसी कारण, उनकी संस्कृति और बोली भी साझा रही, जिसे ‘पोवारी’ या ‘पंवारी’ कहा जाता है। आज भी यह बोली केवल इन्हीं छत्तीस कुलों के पोवारों द्वारा बोली जाती है, जो इस बात का प्रमाण है कि यह भाषा सदियों से उनकी अपनी मातृभाषा रही है।

दुर्भाग्यवश, कई विचारकों ने वैनगंगा क्षेत्र में बसे पंवारों के गौरवशाली इतिहास को या तो ठीक से नहीं लिखा या उसे तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया, जिससे समाज अपने वैभवशाली अतीत से अपरिचित रह गया। जबकि समाज का यह गौरवशाली इतिहास, मराठा काल से लेकर ब्रिटिश काल तक के अनेक दस्तावेजों, अभिलेखों और पुस्तकों में दर्ज है। राजपूतों की गौरवगाथा इतिहास के पन्नों में भरी पड़ी है, और उन्होंने कभी भी अपनी पहचान या क्षत्रिय गौरव को नहीं खोया।

आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज के हर सदस्य को अपने गौरवशाली इतिहास से अवगत कराया जाए, ताकि वे अपने वैभवशाली अतीत और समृद्ध संस्कृति से प्रेरणा लेकर, वर्तमान को बेहतर बनाने के लिए पूरी निष्ठा और मनोयोग से कार्य करें। जब समाज अपने गौरव और मूल्यों को जानकर आगे बढ़ेगा, तभी वह अपने संस्कारों को अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने में सफल हो सकेगा।

****

7.7
क्षत्रिय पंवार (प्रमार/पोवार) शिरोमणि सम्राट विक्रमादित्य और हिन्दू नव वर्ष

जब भी देश और संस्कृति पर संकट के बादल आए, तब-तब ईश्वर ने किसी न किसी रूप में जन्म लिया और उस संकट को समाप्त किया। हमारी संस्कृति और पहचान पर आए हर संकट को हमारे वीरों ने समाप्त किया। यह इतिहास का सत्य है कि हर संकट के समय में भगवान ने हमारे बीच आकर समाज को बचाया। आज से लगभग इक्कीस सौ वर्ष पूर्व, जब हमारी सनातनी संस्कृति पर आक्रमण और असत्य की शक्तियों का प्रकोप था, तब सम्राट विक्रमादित्य के रूप में स्वयं ईश्वर ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया। उन्होंने न केवल पृथ्वी को सांस्कृतिक संकट से मुक्ति दिलाई, बल्कि संपूर्ण देश को सनातनी संस्कृति और भगवा ध्वज के नीचे एकत्र किया।

सम्राट विक्रमादित्य ने न केवल अपनी वीरता से महान कार्य किए, बल्कि उन्होंने एक नई कालगणना की शुरुआत की, जिसे आज हम विक्रम संवत के रूप में जानते हैं। यह कालगणना महाकाल महादेव की नगरी उज्जैन में आरंभ हुई थी, जब विक्रमादित्य ने असत्य पर सत्य की विजय प्राप्त की। विक्रम संवत का प्रारंभ सनातन संस्कृति के प्रचार-प्रसार का प्रतीक बन गया, और यह समय की माप का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया।

सम्राट विक्रमादित्य ने प्रभु श्रीराम को अपना पूर्वज माना और उनकी खोज करते-करते वह अयोध्या पहुंचे। कहा जाता है कि प्रभु श्रीराम ने उन्हें दर्शन दिए, और इसके बाद सम्राट विक्रमादित्य ने अयोध्या नगरी का पुनर्निर्माण कराया। यह कार्य न केवल एक भव्य पुनर्निर्माण था, बल्कि यह सम्राट विक्रमादित्य की संस्कृति के प्रति गहरी श्रद्धा और समर्पण का प्रतीक भी था।

सम्राट विक्रमादित्य के राज्यारोहण की तिथि, चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को हिन्दू नव वर्ष के रूप में मनाया जाता है। यही दिन चैत्र नवरात्रि की शुरुआत का दिन भी होता है। यह दिन न केवल सम्राट विक्रमादित्य की विजय का प्रतीक है, बल्कि यह हिन्दू धर्म के समृद्ध इतिहास और संस्कृति की जीत का प्रतीक भी है। इसी दिन को मान्यता प्राप्त है कि ब्रह्माजी ने सृष्टि का सृजन किया था, और इसी दिन से एक नई शुरुआत की जाती है।

सम्राट विक्रमादित्य की विजयों और उनके योगदान को हर वर्ष पुनः याद किया जाता है। सम्राट विक्रमादित्य के वंशज और समूचे भारतवासी इस पावन दिन को हिन्दू नव वर्ष, चैत्र नवरात्रि के प्रथम दिवस, गुड़ी पड़वा और पोवारी दिवस के रूप में मनाते हैं। यह दिन न केवल हमारे पुरखों की वीरता और संघर्ष को याद करने का अवसर है, बल्कि यह हमारी सनातनी संस्कृति, इतिहास और महान धरोहर को संरक्षित रखने का एक माध्यम भी है।

पोवारी समाज और उनके वंशज इस दिन विशेष रूप से अपनी सांस्कृतिक पहचान और गौरवमयी इतिहास को मनाते हैं। यह पर्व हमें यह सिखाता है कि हमें अपने पूर्वजों की गाथाओं को न केवल याद रखना चाहिए, बल्कि आने वाली पीढ़ी को भी इस अद्वितीय विरासत से अवगत कराना चाहिए। सम्राट विक्रमादित्य का योगदान सिर्फ एक ऐतिहासिक घटना नहीं है, बल्कि यह हमारी संस्कृति और पहचान का अभिन्न हिस्सा है। विक्रम संवत के रूप में उनका योगदान आज भी हमें समय की सही माप और अपनी सांस्कृतिक धरोहर की याद दिलाता है। उनके द्वारा स्थापित किए गए आदर्श और उनके संघर्षों की गाथा आज भी हमारे समाज को प्रेरित करती है।

हमें अपने इतिहास, संस्कृति और पूर्वजों के योगदान को न केवल याद रखना चाहिए, बल्कि इसे पूरी दुनिया में फैलाने का प्रयास करना चाहिए। विक्रमादित्य के वंशज इस दिन को अपनी सनातनी संस्कृति की जीत के रूप में मनाते हुए, अपने गौरवमयी इतिहास को सहेजते और उसे आगे बढ़ाते हैं। सम्राट विक्रमादित्य की प्रेरणा से हम आगे बढ़ सकते हैं, और हमें अपने इतिहास को सम्मानित रखते हुए अपने वर्तमान को और बेहतर बनाना चाहिए।

****

7.8
पंवार सम्राट विक्रमादित्य की कुलदेवी माता हरसिद्धि

माता सती के जहां-जहां अंग गिरे, वहां शक्तिपीठ के रूप में स्थापना हुई। धर्मग्रंथों में कुल ५१ शक्तिपीठों की मान्यता है। इन्हीं शक्तिपीठों में से एक हैं माता हरसिद्धि। यहां माता सती की कोहनी गिरी थी। इनका मंदिर मध्यप्रदेश के उज्जैन और गुजरात के द्वारका दोनों जगह स्थित हैं। माता की सुबह की पूजा गुजरात में और रात की पूजा उज्जैन में होती है। माता का मूल मंदिर गुजरात के द्वारका के मार्ग में स्थित है। यहीं से महाराज विक्रमादित्य इन्हें प्रसन्न करके अपने साथ उज्जैन ले गए थे। इस बात का प्रमाण है कि दोनों माता मंदिरों में देवी का पृष्ठ भाग एक जैसा है। मंदिर को लेकर कई पौराणिक कथाएं हैं।

मान्यता है कि उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य की यह कुलदेवी थीं और वे ही उनकी पूजा किया करते थे। विक्रमादित्य माता के परम भक्त थे। वह हर बारह साल में एक बार अपना सिर काटकर माता के चरणों में अर्पित कर देते थे। लेकिन माता की कृपा से उनका सिर फिर से जुट जाता था। ऐसा राजा ने ११ बार किया। बारहवीं बार जब राजा ने अपना सिर चढ़ाया, तो वह फिर नहीं जुटा। इस कारण उनका जीवन समाप्त हो गया। आज भी मंदिर में ११ सिंदूर लगे रुण्ड मौजूद हैं। मान्यता है कि ये राजा विक्रमादित्य के कटे हुए मुण्ड हैं।

आज भी उज्जैन में माता की आरती शाम के समय होती है और सुबह के समय गुजरात में होती है। उज्जैन में हरसिद्धि माता का मंदिर महाकालेश्वर मंदिर के पीछे, पश्चिम दिशा में स्थित है। दोनों मंदिरों के बीच एक समानता है, और वह है पौराणिक रूद्रसागर। दोनों मंदिरों के गर्भगृह में माता श्रीयंत्र पर विराजमान हैं। तंत्र साधना के लिए उज्जैन में स्थित माता हरसिद्धि का मंदिर काफी प्रसिद्ध है। माता हरसिद्धि के आस-पास महालक्ष्मी और महासरस्वती भी विराजित हैं। माता के मंदिर में श्री कर्कोटेश्वर महादेव मंदिर भी स्थित है, जहां कालसर्प दोष के निवारण के लिए पूजा की जाती है।

****

7.9
भोजशाला: भारतवर्ष का पहला संस्कृत विश्वविद्यालय

भोजशाला, भारतवर्ष का पहला संस्कृत विश्वविद्यालय था, जिसकी स्थापना मालवा (अवन्ती) के महान नरेश, महाराज भोजदेव ने की थी। यह महाविद्यालय न केवल शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था, बल्कि यहां की व्यवस्था और शिक्षण विधि ने पूरे उपमहाद्वीप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। इस विश्वविद्यालय में महाराज भोजदेव और उनकी पटरानी लीलावती सहित लगभग पंद्रह सौ शिक्षक उपस्थित थे, जो विभिन्न विषयों में गहरी जानकारी प्रदान करते थे। वेद, धर्म-दर्शन, गणित, विज्ञान, कला, इतिहास और भूगोल सहित सभी प्रमुख विषयों में गहन अध्ययन होता था और विशेष रूप से वैज्ञानिक शोधकार्य को प्रोत्साहन दिया जाता था।

पौराणिक कथाओं के अनुसार, राजा भोज ने अपनी आराध्य देवी, माँ सरस्वती के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या की थी। कहा जाता है कि स्वयं माँ सरस्वती ने उन्हें अपने वाग्देवी स्वरूप में दर्शन दिए और उन्हें अपना पुत्र स्वीकार किया था, जिसके कारण महाराज भोजदेव को माँ सरस्वती का वृहदपुत्र भी कहा जाता है। इस दिव्य प्रेरणा से ही राजा भोज ने धारा नगरी में भोजशाला विश्वविद्यालय की स्थापना की और साथ ही इस विश्वविद्यालय के परिसर में माता सरस्वती के मंदिर का भी निर्माण कराया। यहां पर संस्कृत में साहित्य लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाता था, और स्वयं राजा भोज ने माँ सरस्वती के आशीर्वाद से चौरासी ग्रंथों की रचना की थी।

महारानी लीलावती भी एक महान शिक्षिका के रूप में जानी जाती थीं। उन्होंने स्वयं अध्यापन कार्य किया और विशेष रूप से लड़कियों की शिक्षा पर जोर दिया। भोजशाला विश्वविद्यालय में राजा भोज सहित सैकड़ों विद्वानों ने हजारों साहित्यिक ग्रंथों की रचना की थी। यहां पर विद्वानों के साथ संवाद करने का भी एक विशेष स्थान था, जिससे छात्रों को निरंतर नई-नई जानकारी प्राप्त होती रहती थी।

संस्कृत भाषा उस समय जम्बूद्वीप की प्रमुख भाषा थी और सभी वैदिक और उत्तर वैदिक साहित्य संस्कृत में ही लिखे जाते थे। हालांकि समय के साथ अन्य भाषाओं का भी विकास हुआ और संस्कृत में लेखन कार्य कम होने लगा, राजा भोज ने प्राचीन सनातनी संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए भोजशाला विश्वविद्यालय की स्थापना

की। उन्होंने संस्कृत को समृद्ध करने के लिए अनेक प्रयास किए और इसे एक प्रमुख शैक्षिक केंद्र बनाया। इसके अलावा, उन्होंने भारतवर्ष के चारों धामों का पुनरुद्धार किया, अपने राज्य में कई विद्यालयों और मंदिरों का निर्माण किया और बड़ी-बड़ी झीलों का निर्माण भी कराया। उन्होंने नगरों का भी विकास किया, जिससे व्यापारिक गतिविधियाँ बढ़ीं, और धार, भोपाल जैसे नगरों को समृद्ध किया।

राजा भोज के समय में, भोजशाला विश्वविद्यालय में प्रवेश सभी विद्यार्थियों के लिए खुला था, चाहे वे किसी भी जाति, वर्ण या वर्ग से आते हों। इस समय कोई भी प्रतिबंध नहीं था और यह शिक्षा का एक समान अवसर प्रदान करने वाला स्थल था। यह विश्वविद्यालय पूरे भारतवर्ष से विद्यार्थियों को आकर्षित करता था, और यह शिक्षा के प्रचार-प्रसार का प्रमुख केंद्र बन चुका था।

लेकिन सन १३१० में, अलाउद्दीन खिलजी ने धार पर आक्रमण कर अंतिम पंवार राजा महलकदेव को हराया और भोजशाला विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया। इस आक्रमण के दौरान विश्वविद्यालय में आग लगा दी गई, जिससे हजारों किताबें और ग्रंथ जलकर नष्ट हो गए। इनमें राजा भोज द्वारा रचित कई महत्वपूर्ण ग्रंथ भी शामिल थे। इसके साथ ही, माँ वाग्देवी के मंदिर को भी तोड़ा गया और उनकी मूर्ति को खंडित कर दिया गया, जिसे बाद में ब्रिटिश काल में लंदन ले जाकर एक संग्रहालय में रख दिया गया।

अब समय आ गया है कि हम अपने प्राचीन सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर को फिर से सहेजें। खंडित मूर्तियों की जगह, माँ वाग्देवी की नई प्रतिमा स्थापित करने की आवश्यकता है, ताकि उनके आशीर्वाद से हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को पुनर्जीवित कर सकें। भोजशाला विश्वविद्यालय को फिर से जीवित किया जाना चाहिए, ताकि यह भारतवर्ष के महान इतिहास और संस्कृति का प्रतीक बन सके और आक्रांताओं के चंगुल से पूर्णत: मुक्त हो सके। यही महाराज भोज और महारानी लीलावती के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा और सम्मान होगा।

यदि हम भोजशाला के ऐतिहासिक महत्व को समझते हुए इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास करें, तो यह न केवल हमारे सांस्कृतिक गौरव को पुनः स्थापित करेगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को अपने इतिहास और संस्कृति से जुड़ने का एक अद्वितीय अवसर भी प्रदान करेगा।

****

7.10
छतीस कुलों से सुसज्जित एकीकृत क्षत्रिय पोवार(पंवार) समाज

मालवा राजपुताना के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले छत्तीस क्षत्रियों का संघ, जो उज्जैन-धार क्षेत्र में हजारों वर्षों से निवास कर रहा था, अठारवी सदी के शुरुआत में विदर्भ की राजधानी नगरधन (नन्दिवर्धन) में आकर आगे बढ़ते हुए वैनगंगा क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गया, उसे पोवार या छत्तीस कुल पंवार समाज के नाम से जाना जाता है। यह समाज सदियों से एकीकृत रहकर अपनी पहचान, संस्कृति और ऐतिहासिक गौरव को संरक्षित करते हुए समय-समय पर हर चुनौती का सामना करते हुए समाज में अपनी विशेष पहचान बना रहा है।

प्राचीन दस्तावेजों के अध्ययन से यह जानकारी मिलती है कि ब्रिटिश काल में नाम के साथ जातिनाम लिखने की प्रथा थी। इसी समय कुछ लोगों को उनके पद के आधार पर उपाधियां दी गईं, जो बाद में उपजाति या सरनेम बन गईं। उदाहरण स्वरूप, कुछ लोगों को लगान वसूली के लिए "पटेल" का पद दिया गया था, और यह पद उनके वंशजों के लिए भी स्थायी रूप से जुड़ा रहा। इस प्रकार ये लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो गए और अपने आपको उच्च वर्ग के रूप में मानने लगे, जबकि यह एक ऐतिहासिक रूप से भ्रमित दृष्टिकोण था। परिणामस्वरूप, एकरूप छत्तीस कुल पंवार समाज में दो वर्गों का निर्माण हुआ, जो पहले कभी नहीं थे।

आजादी के बाद, लगान वसूली के पद जैसे पटेल, देशमुख, मुकद्दम, जमींदार, जागीरदार आदि समाप्त हो गए, परंतु इनके वंशज इन पदों को अपने सरनेम के रूप में अपनाए हुए हैं, जो पूरी तरह से अनुचित है। क्योंकि यह पद इतिहास में कभी स्थायी नहीं थे और भारतीय स्वतंत्रता के बाद इनमें कोई औचित्य नहीं बचा। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी व्यक्ति को शिक्षक का पद दिया गया, तो वह सेवानिवृत्ति तक शिक्षक रहेगा, लेकिन उसके परिवार के सदस्य शिक्षक नहीं हो सकते। उसी प्रकार, मराठा और ब्रिटिश काल में गांव की लगान वसूली के काम में जिन पोवारों को लगाया गया, वे भी अस्थायी पद थे। समय के साथ ये पद खत्म हो गए, और आज के भारत में इनका कोई स्थान नहीं है।

इसलिए, समाज के बीच में इन भेदभावपूर्ण पदों को आधार बना कर भेदभाव और विभाजन करना न केवल गलत है, बल्कि यह हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक

एकता को भी कमजोर करता है। ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से देखा जाए, तो पूर्वजों द्वारा दिए गए पदों के कारण उनके वंशजों को आज कोई विशेषाधिकार नहीं मिल सकते। एकरूप छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज को पटेली, साहूकारी, महाजनी, या जमींदारी में बांटकर देखना न केवल मूर्खता है, बल्कि यह समाज के संगठनों द्वारा भी अमान्य कर दिया गया है।

समाज की पहचान और अस्तित्व को परिभाषित करने वाले "क्षत्रिय पोवार (पंवार) महासंघ" के ऐतिहासिक "तुमसर अधिवेशन प्रस्ताव" में भी यह स्पष्ट किया गया है कि एकरूप छत्तीस कुल पंवार समाज के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए, सभी विभाजनकारी और विघटनकारी मान्यताएं जिन्हें समाज के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को नष्ट करने के रूप में देखा जाता है, पूरी तरह से अमान्य कर दिया गया है। हम सभी को मिलकर अपनी ऐतिहासिक पहचान और संस्कृति का संरक्षण करते हुए एकता, भाईचारे और सामंजस्य के साथ समाज में योगदान देना चाहिए। यही नहीं, हम अपने दायित्वों का निर्वहन कर राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में योगदान दे सकते हैं।

****

7.11
पोवार समाज और प्राचीन बैनगंगा ज़िला तथा वैनगंगा नदी

ब्रिटिश काल में जब भारतीय उपमहाद्वीप को विभिन्न प्रशासनिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया, तब सेंट्रल प्रोविन्सेस (केंद्रीय प्रांत) राज्य की स्थापना की गई। इस प्रांत में वैनगंगा क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान था, जो आज के मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र राज्यों के बीच स्थित है। वैनगंगा नदी इस क्षेत्र की जीवनदायिनी रही है और इसके किनारे बसी हुई सभ्यताएं एवं संस्कृतियां हमेशा से समृद्ध रही हैं।

सेंट्रल प्रोविन्सेस का गठन करने के बाद, वैनगंगा क्षेत्र में कई प्रशासनिक बदलाव किए गए। शुरुआत में भंडारा और बालाघाट जिले इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण हिस्से थे। बाद में वैनगंगा क्षेत्र का हिस्सा सिवनी जिले से जुड़ा और फिर छिंदवाड़ा से अलग होकर एक स्वतंत्र जिला बन गया। इस प्रक्रिया में कई भौगोलिक और सांस्कृतिक बदलाव हुए, जो इन जिलों के विकास और समृद्धि में महत्वपूर्ण साबित हुए।

इसके बाद, गोंदिया जिले को भंडारा और बालाघाट जिलों से अलग कर एक स्वतंत्र जिला बनाया गया। यह प्रशासनिक बदलाव स्थानीय शासन, जनसंख्या वृद्धि, और क्षेत्रीय विकास को दृष्टिगत रखते हुए किए गए थे। यह कदम न केवल प्रशासनिक रूप से ज़रूरी था, बल्कि इससे इन क्षेत्रों के लोगों के लिए स्थानीय शासन की प्रक्रिया भी आसान हो गई।

वैनगंगा नदी की महत्वता केवल जल आपूर्ति तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रही है। वैनगंगा नदी का उद्गम सिवनी जिले के मुंडारा क्षेत्र से हुआ था और यह नदी बालाघाट जिले में प्रवेश करती है, फिर गोंदिया और भंडारा जिलों से होते हुए आगे बढ़ती है। इस नदी के आसपास बसे क्षेत्रों में पोवारों की महत्वपूर्ण उपस्थिति रही है।

देवगढ़ राजाओं के शासनकाल में, वैनगंगा नदी के पश्चिमी भाग में पोवारों की बसाहट नगरधन से लेकर पहले ही हो चुकी थी। इन पोवारों ने क्षेत्र में न केवल प्रशासनिक बल्कि सामाजिक और सैन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका विस्तार धीरे-धीरे वैनगंगा के पूर्वी भाग में हुआ, जो आज के लाँजी, गोंदिया, आमगांव, कटंगी और लामता तक फैला हुआ था। इन क्षेत्रों में पोवारों की बसी हुई सामरिक शक्ति और प्रशासन की स्थापना ने इस क्षेत्र को एक नया आकार दिया।

उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और बंगाल पर भोसले शासकों के नियंत्रण में पोवार सेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भोसले शासकों के साथ मिलकर पोवारों ने कई महत्वपूर्ण लड़ाइयों में भाग लिया था और इन क्षेत्रों में अपनी स्थिति को मजबूती से स्थापित किया था। भोसले शासक जब इन इलाकों पर विजय प्राप्त करते थे, तो पोवारों की सेना ने न केवल समर्थन किया, बल्कि सामरिक दृष्टि से भी इस क्षेत्र में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था।

पोवारों के सामरिक विस्तार के बाद, उन्हें वैनगंगा नदी के पूर्वी भाग में कई क्षेत्रों का अधिकार मिला। यह क्षेत्र आज के लाँजी, गोंदिया, आमगांव, कटंगी और लामता तक फैला हुआ था। इन क्षेत्रों में पोवारों ने कृषि, व्यापार, और सैन्य गतिविधियों के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाई। इसके अलावा, उन्होंने सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया, जिससे इन क्षेत्रों में स्थायी रूप से उनकी पहचान बनी।

वैनगंगा क्षेत्र में पोवारों के विस्तार के साथ-साथ यहां की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान भी विकसित हुई। इस क्षेत्र के लोग कृषि, शिल्प, और व्यापार में भी शामिल थे। पोवारों के नेतृत्व में, इस क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे का निर्माण हुआ, जैसे कि झीलों का निर्माण, मंदिरों की स्थापना, और नगरों का विकास। इन कार्यों से न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक मेलजोल भी बढ़ा।

वैनगंगा क्षेत्र की ऐतिहासिक यात्रा, जो पोवारों और भोसले शासकों की सामरिक विजय और सामाजिक योगदान से संबंधित है, आज भी इस क्षेत्र के लोगों के लिए गर्व का विषय है। पोवारों का यह योगदान न केवल इस क्षेत्र की राजनीति और सेना में महत्वपूर्ण था, बल्कि उनके प्रयासों से वैनगंगा नदी के किनारे एक समृद्ध और सशक्त समाज का निर्माण हुआ। पोवारों की ऐतिहासिक विरासत आज भी इस क्षेत्र के लोगों के बीच जीवित है, और उनका योगदान क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा बन चुका है।

****

7.12
पोवार (छत्तीस कुल पंवार) समाज और तुमसर अधिवेशन प्रस्ताव

पोवार (36 कुल पंवार) समाज का अस्तित्व, पहचान, इतिहास और संस्कृति की रक्षा हेतु "तुमसर अधिवेशन प्रस्ताव" हर पोवार समाज के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रस्ताव का उद्देश्य पोवार समाज, जिसे छत्तीस कुल पंवार समाज भी कहा जाता है, की वास्तविक पहचान और सही इतिहास को उजागर करते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक परिधि को स्पष्ट करना है। यह प्रस्ताव ऐतिहासिक साक्ष्यों, समाज के नियमों, विधानों, रीति-रिवाजों और बुजुर्गों के ज्ञान पर आधारित है। यह प्रस्ताव समाज की सर्वोच्च संस्था, "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार (पोवार) महासंघ" द्वारा तुमसर अधिवेशन में पारित किया गया, जिसमें हजारों स्वजातीय भाई-बहनों की उपस्थिति में समाज के गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

तुमसर अधिवेशन प्रस्ताव के मुख्य अंश निम्नलिखित हैं:

१. समाज का ऐतिहासिक संदर्भ

छत्तीस कुल पोवार समाज लगभग तीन सौ वर्ष पहले मालवा-राजपुताना क्षेत्र से नगरधन-नागपुर होते हुए वैनगंगा क्षेत्र में स्थायी रूप से बस गया। यह समाज के इतिहास के अनुसार, पोवार समाज में कुल मिलाकर छत्तीस कुल होते हैं और इन सभी के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध होते हैं जिन्हें स्वजातीय संबंध माना जाता है।

२. विवाह के नियम

पोवार समाज में विवाह का आधार "कुर" (कुल) होता है, और समान कुल में विवाह संबंध वर्जित होते हैं। प्रत्येक कुल का अपना ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्व होता है, और चूँकि पोवार समाज के लोग हमेशा छत्तीस कुल में विभाजित रहे हैं, इसलिए समाज की पहचान "छत्तीस कुल पंवार समाज" के नाम से जानी जाती है।

३. पोवारी भाषा और सांस्कृतिक पहचान

पोवार समाज की अपनी विशिष्ट भाषा, "पोवारी भाषा" है, जो अन्य समाजों द्वारा नहीं बोली जाती। पोवारी भाषा में समाज के पुराने नेंग-दस्तूर,

गीत और परंपराएँ मौजूद हैं, जो इसे अन्य समाजों से अलग करती हैं। यह भाषा समाज की सांस्कृतिक पहचान का अहम हिस्सा है और इसे संरक्षित रखने के लिए "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासंघ" निरंतर प्रयासरत है।

४. **युवाओं का मार्गदर्शन**

युवाओं का उचित मार्गदर्शन करना और उन्हें जीवन में सफल बनाना, ताकि वे समाज से जुड़कर अपनी सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध कर सकें, समाज का कर्तव्य है। "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासंघ" इस दिशा में कार्य कर रहा है और आगे भी समाजजनों के सहयोग से समाजोत्थान के लिए संकल्पित है। यह महासंघ सभी समाजजनों को प्रेरित करता है कि वे अपने परिवार और समाज के साथ राष्ट्र की उन्नति में योगदान करें।

५. **संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन**

समाज की पुरानी सांस्कृतिक धरोहर जैसे नेंग-दस्तूर, रीति-रिवाज, गीत और मान्यताएँ, समाज की पहचान और गौरव का प्रतीक हैं। इनका संरक्षण और प्रचार-प्रसार आवश्यक है ताकि समाज का हर सदस्य चाहे वह कहीं भी रहे, वह अपनी संस्कृति, इतिहास और पहचान से जुड़ा रहे। यह समाज में सांस्कृतिक पतन और नैतिक भटकाव को रोकने के लिए जरूरी है।

६. **समाज की वास्तविक पहचान की रक्षा**

अतीत में कुछ व्यक्तियों और संगठनों द्वारा छत्तीस कुल पंवार (पोवार) समाज के इतिहास के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास किया गया था। इन प्रयासों को नाकाम करने के लिए ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर समाज की असली पहचान को सामने लाया गया। तुमसर अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि समाज की मूल पहचान, नाम और संस्कृति को बनाए रखते हुए ऐसे सभी प्रस्तावों को अमान्य किया जाएगा जो समाज की वास्तविक पहचान को नष्ट करने का प्रयास करते थे।

७. **संस्कृति और भाषा के प्रति स्वाभिमान**

समाज को अपनी संस्कृति और भाषा के प्रति गर्व और स्वाभिमान का भाव जागरूक करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। संस्कृति विहीन समाज किसी भी राष्ट्र के लिए हानिकारक होता है। छत्तीस कुल पंवार समाज एक महान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर का वारिस है और इस धरोहर को संजोने

का कार्य महासंघ कर रहा है। यह समाज ने सनातनी संस्कृति का पालन किया है और इसे बचाने के लिए हमेशा संघर्ष किया है।

८. **प्रेरणा और युवाओं का मार्गदर्शन**

समाज के गौरवशाली अतीत और वर्तमान को उन्नत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने युवाओं को सही दिशा में मार्गदर्शन करें। उनका सही मार्गदर्शन उन्हें अपने सांस्कृतिक मूल्यों के साथ आगे बढ़ने में मदद करता है। "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासंघ" इस दिशा में निरंतर कार्य कर रहा है, और समाज की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखते हुए समाजोत्थान के लिए कार्य कर रहा है।

तुमसर अधिवेशन प्रस्ताव पोवार (छत्तीस कुल पंवार) समाज की ऐतिहासिक पहचान और गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए एक ऐतिहासिक कदम है। इस प्रस्ताव के माध्यम से समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी सांस्कृतिक धरोहर और इतिहास को संजोने और आगे बढ़ाने का संदेश दिया गया है। "अखिल भारतीय क्षत्रिय पंवार महासंघ" इस दिशा में लगातार काम कर रहा है और समाज के प्रत्येक सदस्य को इस दिशा में प्रयासरत रहने के लिए प्रेरित करता है। समाज के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी पहचान को बनाए रखते हुए समाज की सेवा करें और राष्ट्र के उत्थान में योगदान दें।

****

7.13
बीसलदेव रासो और अग्निकुल पंवार वंश

बीसलदेव रासो एक ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ है जिसे महान कवि नरपति नाल्ह ने रचा था। यह ग्रंथ विशेष रूप से मालवा के पंवार वंश के इतिहास और उनके शासकों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। इस काव्य की रचना विक्रम संवत् १२१२ में की गई थी, जैसा कि ग्रंथ के निर्माणकाल से संबंधित विवरण में देखा जाता है, जिसमें लिखा गया है "बारह सै बहोत्तराँ मझारि। जेठबदी नवमी बुधावारि।" इस तिथि के आधार पर माना जाता है कि बीसलदेव रासो की रचना का समय लगभग १२१२ ईस्वी के आसपास था।

इस ग्रंथ में बीसलदेव (विग्रहराज) और राजमती के प्रेमकाव्य और विवाह का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। साथ ही इस ग्रंथ में बीसलदेव के वीरता और शौर्य को भी विस्तार से वर्णित किया गया है। यह ग्रंथ न केवल एक साहित्यिक धरोहर है, बल्कि मालवा और पंवार वंश की गौरवशाली परंपरा को भी उजागर करता है। बीसलदेव रासो में मालवा के प्रसिद्ध शासक और परमार वंश के महान सम्राट भोज की पुत्री राजमती और शाकम्भरी नरेश बीसलदेव के विवाह तथा उनके बीच के विरह की कथा भी वर्णित की गई है।

बीसलदेव रासो के माध्यम से पंवार वंश की उत्पत्ति और उनके राजवंश की शक्तिशाली छवि का भी वर्णन किया गया है। इस काव्य में कहा गया है कि पंवार क्षत्रियों का उत्पत्ति स्थल आबू पर्वत का अग्निकुंड था। यह जानकारी पंवार वंश के ऐतिहासिक महत्व को दर्शाती है। पंवार वंश के लोग अग्निकुल से उत्पन्न होने के कारण न केवल शौर्य और वीरता के प्रतीक माने जाते हैं, बल्कि वे अपनी प्राचीन और गौरवशाली परंपराओं के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

इस काव्य में यह भी बताया गया है कि उज्जैन के महान सम्राट विक्रमादित्य और धार के शासक महाराजा भोज भी पंवार वंश से थे। ये दोनों राजा अपने समय के महान शासक माने जाते थे, जिन्होंने अपने शासनकाल में न्याय, धर्म, और सांस्कृतिक उन्नति के लिए कार्य किया। विशेष रूप से महाराजा भोज ने मध्य भारत में भारतीय संस्कृति को बढ़ावा दिया और विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्माण कार्य किए।

बीसलदेव रासो के माध्यम से यह भी बताया गया है कि पंवार वंश के शासकों की शक्ति केवल युद्ध क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी व्यापक थी। इस ग्रंथ में पंवार वंश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर की गहरी छाप देखी जा सकती है, जो न केवल भारतीय इतिहास के लिए, बल्कि भारतीय साहित्य के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इस ग्रंथ के अनुसार, पंवार वंश के शासकों ने सदियों तक मध्य भारत में शासन किया और अपनी वीरता, ज्ञान, और धर्म के प्रति समर्पण से भारतीय इतिहास में अपनी अनूठी पहचान बनाई। बीसलदेव रासो में दिए गए वर्णन और कथाएँ इस वंश की गौरवमयी परंपराओं और उनके शासकीय कार्यों का प्रमाण हैं।

अग्निकुल पंवार वंश की उत्पत्ति

पंवार वंश की उत्पत्ति के बारे में बीसलदेव रासो में यह उल्लेख मिलता है कि ये क्षत्रिय आबू पर्वत के अग्निकुंड से उत्पन्न हुए थे। भारतीय इतिहास में अग्निकुल क्षत्रिय शब्द का विशेष स्थान है। यह मान्यता है कि जो क्षत्रिय जातियाँ अग्नि से उत्पन्न हुईं, वे अत्यधिक वीर, साहसी और शौर्यवान होती थीं। पंवार वंश का संबंध इसी अग्निकुल से बताया जाता है, जो उनकी वीरता और पराक्रम को प्रमाणित करता है।

अग्निकुल पंवार वंश के शासक न केवल युद्ध के मैदान में अपने अद्वितीय पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थे, बल्कि वे अपने शासन में धर्म, न्याय और संस्कृति को बढ़ावा देने में भी अग्रणी थे। बीसलदेव रासो में इस वंश की परंपरा और शासकों के शौर्य की प्रशंसा की गई है, जो उनके ऐतिहासिक महत्व को दर्शाता है।

बीसलदेव रासो और अग्निकुल पंवार वंश के बारे में दी गई जानकारी से यह स्पष्ट होता है कि पंवार वंश का इतिहास न केवल भारतीय राजनीति और सैन्य इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह भारतीय साहित्य और संस्कृति के लिए भी अमूल्य धरोहर है। इस ग्रंथ के माध्यम से हम पंवार वंश की परंपरा, उनकी वीरता, और उनके शासकीय कार्यों को जान सकते हैं, जो भारतीय इतिहास की गौरवमयी धारा को जीवित रखते हैं।

****

7.14
क्षत्रिय, राजपूत और परमार कुल की उत्पत्ति के सिद्धांत: ऐतिहासिक परिपेक्ष्य और विश्लेषण

राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। कुछ इतिहासकार इन्हें विदेशी मानते हैं, तो कुछ इन्हें देसी, जबकि कुछ इतिहासकार इन्हें मिश्रित देसी-विदेशी उत्पत्ति मानते हैं। इसके अतिरिक्त, राजपूतों की उत्पत्ति को सूर्यवंशी और चंद्रवंशी प्राचीन मतों के आधार पर भी देखा जाता है। दसवीं शताब्दी से राजपूतों की उत्पत्ति का अग्निवंशी मत भी प्रचलित होने लगा था। कुछ इतिहासकार इन्हें ब्राह्मण वंशीय अर्थात ऋषिवंशीय मानते हैं, तो कुछ इन्हें प्राचीन वैदिक आर्य मानते हैं। इतिहासकारों के अलग-अलग मतों का विवेचन करने पर यह निष्कर्ष निकलकर सामने आता है कि किसी एक मत या सिद्धांत से क्षत्रियों या राजपूतों की उत्पत्ति की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

ऋग्वेद से लेकर उसके बाद के सभी प्राचीन ग्रंथों में सिर्फ 'क्षत्रिय' शब्द का उल्लेख आया है, जिसका मुख्य दायित्व शासन करना था। क्योंकि वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी, इसीलिए जिन्होंने शासन किया, वे क्षत्रिय बनते गए। और इसमें कुछ ऐसे नाम भी हैं, जो राजवंशों से थे, लेकिन उनके वंश की समाप्ति के बाद उनका इतिहास में क्षत्रिय के रूप में उल्लेख नहीं मिलता है। क्षत्रियों का राजपूत जाति के रूप में उत्पत्ति का इतिहास शासकों, अर्थात् राजपुत्रों के एक संघ के रूप में सम्मिलित होना था। ऋग्वेद के युद्धों से लेकर पृथ्वीराज चौहान के द्वारा मोहम्मद गौरी के विरुद्ध ३६ कुलों के क्षत्रियों के साथ मिलकर युद्ध लड़ने के अनेक ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं।

राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत इस अर्थ में अपूर्ण है कि इतिहासकारों ने उनके मूल क्षेत्र को अखंड भारतवर्ष से अलग समझ लिया। अधिकतर इतिहासकारों ने ब्रिटिश भारत के क्षेत्र को आधार मानकर उसके बाहर के लोगों को विदेशी मानने की गलती की है। अखंड भारतवर्ष की संकल्पना उन सभी क्षेत्रों को मिलाकर की गई थी, जहां पर साझा संस्कृति के लोग निवास करते थे। पश्चिम में मिस्र से लेकर यूनान तक और कैस्पियन सागर से लेकर प्रशांत क्षेत्र तक अखंड भारतवर्ष की संस्कृति का विस्तार था। इन सभी क्षेत्रों में लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर विभिन्न कारणों से स्थानांतरण होता रहता था। सभी प्रकृति पूजा करते थे और साझा संस्कृति को मानते

थे। इसलिए यदि कोई व्यक्ति एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर बसता, तो उसे आज की भौगोलिक सीमाओं के संदर्भ में विदेशी मानना एक बहुत बड़ी भूल होगी। इतिहास को वर्तमान भौगोलिक सीमाओं के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि प्राचीन काल में सीमाएं आज की तरह स्थिर नहीं थीं, और वे निरंतर बनती और समाप्त होती रहती थीं।

इतिहासकारों ने यही मत आर्यों के आगमन पर भी दिया है, लेकिन वे यह भूल गए कि संपूर्ण क्षेत्र, जिसे वे विदेशी मानते हैं, वह समान संस्कृति वाले क्षेत्रों का हिस्सा है। हालांकि कुछ हजार साल पहले या मुस्लिम धर्म के उत्पत्ति के बाद उन प्रकृति पूजा करने वालों ने इन धर्मों को अपना लिया, इसीलिए आज के इतिहासकार उन क्षेत्रों को विदेशी कहकर अखंड भारतवर्ष की सीमाओं को संकुचित करने का प्रयास करते हैं। जैसे, मिस्र के प्राचीन राजा खुद को सूर्य का पुत्र मानते थे और यूनानी राजा भी अपनी उत्पत्ति के सिद्धांत को इसी प्रकार मानते थे।

चीन के राजा खुद को देवताओं का पुत्र मानते थे और इसी तरह यहूदी धर्म में भी उत्पत्ति का सिद्धांत कुछ इसी प्रकार का है। यूनान से लेकर जापान तक सभी प्रकृति की पूजा करते थे। अग्नि, सूर्य, आकाश, वायु, जल, जीव-जंतु सहित प्रकृति के विभिन्न तत्वों की पूजा इन क्षेत्रों में निवास करने वालों द्वारा की जाती थी। हालांकि, इन देवी-देवताओं के नाम में भिन्नताएं हो सकती थीं, लेकिन एक तत्व जो सभी में सर्वमान्य रूप से स्वीकार किया जाता था, वह यह था कि ये सभी प्रकृति को एक शक्ति के रूप में पूजते थे। इसीलिए इनका भौगोलिक विस्तार बहुत बड़ा था।

ईसाई और इस्लाम धर्म के उदय के बाद, अपने मतों को इन सभी प्रकृति पूजा करने वाले धर्मों पर प्रतिस्थापित करने के लिए कई संघर्ष हुए और इन्हीं संघर्षों की परिणति के परिणामस्वरूप वर्तमान संदर्भ में संकुचित भौगोलिक सीमाओं का निर्माण हुआ। यदि उन सीमाओं के संदर्भ में भारतीय इतिहास को लिखा जाए, तो ब्रिटिश कालीन भारत, जिसमें अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार और तिब्बत शामिल थे, के बाहर के सभी क्षेत्रों को तत्कालीन और उनके परवर्ती इतिहासकारों ने विदेशी मान लेने की यह बहुत बड़ी गलती थी। जबकि यूनान, मिस्र, अरब देशों, तुर्की, ताजिकिस्तान, किर्गिस्तान, उज़्बेकिस्तान से लेकर तिब्बत, भारत, थाईलैंड, इंडोनेशिया, फिलीपींस और जापान तक सभी में प्रकृति की पूजा की जाती थी और उनके राजा खुद को किसी न किसी प्रकृति के अंश का वंशज मानते थे।

भारतवर्ष में विकसित सिंधु घाटी सभ्यता और वैदिक सभ्यता के बीच अंतर किया गया था, लेकिन वास्तव में सिंधु घाटी सभ्यता ही वैदिक सभ्यता थी। महाभारत के युद्ध के समय उनके द्वारा सहयोग करने वाले राजाओं के क्षेत्र को देखें तो यह सभी क्षेत्र महाभारत के युद्ध में मिल जाते हैं। यही सबसे बड़ा तथ्य है कि इतिहासकारों ने यह कैसे मान लिया कि वर्तमान का भारतवर्ष ही पुरातन अखंड भारतवर्ष की संपूर्ण भूमि है, जबकि हमारे प्राचीन ग्रंथों, ऋग्वेद, महाभारत, रामायण आदि का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वजों को इन संपूर्ण क्षेत्रों का ज्ञान था और वे आपस में सांस्कृतिक रूप से जुड़े हुए थे। इसीलिए किसी भी भारतीय की विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत पूरी तरह से भ्रामक और संकुचित तथ्यों के आधार पर दिया गया निष्कर्ष ही कहा जा सकता है।

राजाओं ने अपने आराध्य ऋषियों और सूर्य तथा चंद्रमा, जिनकी वे पूजा करते थे, से अपनी उत्पत्ति मानी है। इसी प्रकार, दसवीं शताब्दी में भी परमार राजाओं ने अग्नि से उत्पन्न होने की अवधारणा को स्वीकार किया। इससे भी प्राचीन ग्रंथों जैसे महाभारत, रामायण और पुराणों में अग्नि के द्वारा व्यक्ति के उत्पन्न होने की अवधारणा का प्रतिपादन किया गया है। भले ही इसे एक मिथक या पौराणिक कथा माना जाए, लेकिन इससे उनके अपने वंश को एक पहचान मिलती थी, जिसके आधार पर वैवाहिक और अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध स्थापित किए जाते थे। जैसे प्राचीन महाकाव्य और पुराणों में एक 'अग्नि जाति' का उल्लेख है, जिसका अर्थ होता है, अग्नि से उत्पन्न जाति। कुछ इतिहासकार ऐसे ही अग्नि जाति से ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति मानते हैं।

हर राजा खुद को किसी न किसी प्राचीन महान वंश से जोड़ने की कोशिश करता था और शायद यही बात मालवा के परमार राजाओं पर भी लागू होती है। उज्जैन के राजा सबसे पहले परमार वंश से जुड़े और उसके बाद राजपूताना और अन्य क्षेत्रों के लोगों ने भी खुद को 'अग्निमंशी परमार' बताना शुरू किया। कालांतर में इन राजाओं के वंशजों से एक महान परमार वंश की नींव पड़ी।

प्रश्न यह उठता है कि परमार वंशियों के पूर्वज कौन थे? अगर गुरु वशिष्ठ ने अग्निकुंड से एक क्षत्रिय का नाम 'परमार' रखा था, तो इसका इतिहास प्राचीन वेदों में क्यों नहीं मिलता? इसके इतिहास को जानने के लिए वेदों और पुराणों का गहन अध्ययन करना आवश्यक है, ताकि यह समझा जा सके कि किस प्रकार ३६ क्षत्रियों के कुलों का संघ बना और वह इन ग्रंथों में किस नाम से उल्लेखित हैं। ऋग्वेद से लेकर बाद के सभी

ग्रंथों में 'क्षत्रिय' शब्द का उल्लेख मिलता है। उनके संघ की आवश्यकता क्यों पड़ी? अगर हम इसका विस्तृत विश्लेषण करते हैं तो हम पाते हैं कि युद्ध के लिए किसी राजाओं को सहयोग करने के लिए ही क्षत्रियों को क्षेत्रवार संघों के रूप में संगठित होना पड़ा।

क्षत्रियों की उत्पत्ति का अग्निवंशीय मत

अपने वंश की उत्पत्ति देवताओं से मानने की प्राचीन परंपरा रही है। दैवी उत्पत्ति से अपने वंश की श्रेष्ठता स्थापित करना एक मानवीय दुर्बलता है, लेकिन इसे प्रतिष्ठा का प्रतीक भी माना जाता है। मिस्र के शासक 'फराओ' स्वयं को सूर्य के देवता 'रा' का पुत्र मानते थे, और यूनानी शासक अपनी एकता बनाए रखने के लिए अपनी उत्पत्ति एक ही देवता से मानते थे। कुशाण शासक और चीनी शासक भी 'देवपुत्र' की उपाधि धारण करते थे। भारत में भी कुछ लोग अपनी उत्पत्ति सूर्य, चंद्र और अग्नि देवता से मानते थे। इसी प्रकार, अग्निवंशीय मत भी सूर्य और चंद्रवंशी मत की तरह एक मिथक है।

आग्नेय जाति का उल्लेख और उत्पत्ति

पार्टी ने सर्वप्रथम 'आग्नेय' जाति का उल्लेख महाकाव्यों और पुराणों में किया गया है। मार्कण्डेय पुराण, महाभारत के वन पर्व, अनुशासन पर्व और रामायण के अयोध्या काण्ड में आग्नेय जाति का उल्लेख किया गया है। पार्टी के अनुसार यह जाति 'कुरु क्षेत्र' के उत्तर में निवास करती थी। वी. एस. पाठक ने इन स्रोतों के आधार पर इस जाति का अधिवासन उत्तरी भारत में बताया है, जो बाद में ब्राह्मणों में परिणत हो गई। आसोपा ने मार्कण्डेय और विष्णु पुराण के आधार पर आग्नेय अर्थात अग्नि से उत्पन्न जाति के पूर्वज 'अग्निधारा' (जिसके वंश में भरत नामक प्रतापी राजा हुआ) की उत्पत्ति 'मनु स्वयंभुव' से मानी है। यह 'मनु स्वयंभुव' 'मनु वैवस्वत' से भिन्न है। मनु वैवस्वत सूर्यवंशीयों का पूर्वज था, जबकि 'इला' चंद्रवंशियों का पूर्वज था। ऋग्वेद में वर्णित भरतवंशी आग्नेय थे, जो बाद में ब्राह्मण बने, और वे चंद्रवंशीय दुष्यन्त के पुत्र भरत से संबंधित नहीं थे।

अग्निवंशीय उत्पत्ति के स्रोतों और मान्यताएँ

आसोपा की मान्यता है कि अग्निवंश की अवधारणा कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि यह महाभारत और पुराणों के युग तक प्राचीन है। 'अग्निजया' शब्द अग्नि से

उत्पन्न वंश का द्योतक है। कृष्ण स्वामी अयंगर ने दूसरी शताब्दी के तमिल भाषा के ग्रंथ 'पुर्नानुरु' में एक सामंत की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बतलाई है। डी. सी. सरकार ने महाराष्ट्र के नानदेड जिले से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख में (जो ११वीं शताब्दी का है) अग्निवंश का उल्लेख पाया है। पद्मगुप्त के ग्रंथ 'नवशशांक-चरित' (९७४-१००० ई.) में परमार शासक को आबू पर्वत पर वशिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न माना गया है। इसके बाद परमारों के सभी परवर्ती लेखों में अग्निवंशी होने का उल्लेख मिलता है।
नीलकंठ शास्त्री को अग्निवंश का प्रमाण दक्षिण भारत के शासक कुलोतुंग तृतीय (११७८-१२१६ ई.) के शिलालेख से मिलता है। चंदवरदायी द्वारा १२वीं शताब्दी के अंत में रचित ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' में चालुक्य (सोलंकी), प्रतिहार, चहमान और परमार राजपूतों की उत्पत्ति आबू पर्वत के अग्निकुण्ड से बतलाई गई है। हालांकि, इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थल पर इन्हीं राजपूतों को "रवि-शशि जाधव वंशी" भी कहा गया है।

अग्निवंशीय उत्पत्ति की व्याख्या

अग्निवंशीय उत्पत्ति के स्रोतों की समीक्षा करने से इस मत से संबंधित कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पद्मगुप्त ने परमारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बतलाते हुए इन्हें 'ब्रह्म-क्षेत्र' भी माना है। बी. एम. राऊ ने इस व्याख्या को इस प्रकार समझाया कि वशिष्ठ के वंशज परमार क्षत्रियों को (जिनके पूर्वज पहले ब्राह्मण थे, लेकिन बाद में बौद्ध बन गए थे) पवित्र अग्निकुण्ड से पवित्र किया गया था।

ओझा ने 'ब्रह्मक्षत्र' की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो शासक ब्राह्मणतत्त्व और क्षत्रीय गुण दोनों धारण करते थे, उन्हें 'ब्रह्मक्षत्र' कहा जाता था। डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि परमार पहले ब्राह्मण थे, लेकिन धर्म की रक्षार्थ उन्होंने क्षत्रिय व्रत अपनाया। इसके पूर्व भी श्री शुंग, सातवाहन, कदंब और पल्लव शासक ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय कहलाए। ओझा ने अग्निवंशी मत की एक अन्य व्याख्या भी की है। परमार वंश के प्रथम शासक 'धूम्रराज' का एक उत्कीर्ण लेख में उल्लेख है। अतः 'धूम्र' अर्थात अग्नि से निकले हुए धुएं से धूम्रराज की अग्निवंशी उत्पत्ति मानी गई। हालांकि, अन्य अग्निवंशी राजपूतों ने इस मत को मान्यता नहीं दी है। आसोपा का मत है कि परमार ब्राह्मण से क्षत्रिय बने, और यह मान्यता परमारों के उत्पत्ति से जुड़ी कुछ गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

मंडौर के प्रतिहार ब्राह्मण हरिश्चन्द्र के वंशज तथा कन्नौज के प्रतिहार लक्ष्मण के वंशज कहे जाते हैं। अत: प्रतिहार भी ब्राह्मण से क्षत्रिय बने। चहमानों का पूर्वज सामन्त बिजोलिया लेख के अनुसार विप्र था। चालुक्य भी अभिलेखों के आधार पर ब्राह्मणों के वंशज थे। इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' में उल्लिखित सभी चार राजपूत वंश ब्राह्मण से क्षत्रिय बने। अग्निवंशी कहने का तात्पर्य था कि अग्निकुण्ड से उनकी शुद्धि की गई। ये ब्राह्मण अपनी प्राचीन आग्नेय उत्पत्ति बनाए रखते हुए, शासक वर्ग में परिवर्तित हुए और अपनी वंश परंपरा को प्रतिष्ठित किया।

अध्याय 8

पंवार समाज के आदर्श : मालवा के पंवार(परमार) शासक

अध्याय 8
पंवार समाज के आदर्श : मालवा के पंवार(परमार) शासक

पोवार समाज को मालवा के पंवार/परमार के रूप में ही जाना जाता है। प्रथम अध्याय में पंवार/परमार कुल और पंवार/पोवार जाति के अंतर की विस्तृत व्याख्या की गई है। भले ही इनमें अंतर हो, लेकिन सभी मालवा के परमार राजाओं को ही अपना पूर्वज और आदर्श मानते हैं। पोवारों द्वारा बसंत पंचमी को राजा भोज जयंती और हिंदू नववर्ष के दिन सम्राट विक्रमादित्य का राज्यारोहण दिवस, पोवारी दिवस और उनके जन्मदिन के रूप में भी मनाते हैं। सम्राट विक्रमादित्य की कुलदेवी मां हरसिद्धि, धार की मां गढ़कालिका या काली माता को कुलदेवी के रूप में सभी मानने लगे हैं।

हालांकि पंवार/परमार कुल के लोग अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग कुलदेवी को मानते हैं। उज्जैन और धार से सभी अपना जुड़ाव महसूस करने लगे हैं। सभी चाहते हैं कि भोजशाला अपने वास्तविक रूप में, मां वाग्देवी का मंदिर एक संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में फिर से स्थापित हो। इनकी उत्पत्ति पर विभिन्न मत हैं और सांस्कृतिक-सामाजिक भिन्नता के बावजूद उपरोक्त अनेक राष्ट्रीय मुद्दों पर आपस में जुड़ते नजर आते हैं। इसीलिए पोवारों के आदर्श राजाओं का संक्षिप्त परिचय इस अध्याय में लिया गया है।

इतिहास में वर्णित है कि अनेक जगह परमार वंश के राजाओं का शासन था। परमार कुल को अग्निवंश क्षत्रिय मानकर इसकी उत्पत्ति आबूगढ़ से मानकर आगे इसका विस्तार मालवा तक माना जाता है। जबकि दूसरा प्रमुख मत यह है कि परमार कुल वास्तव में मालवा में सम्राट उपेंद्र के शासक बनने से शुरू हुआ। कुछ इतिहासकारों ने परमारों की उत्पत्ति के अनुसंधान का प्रयास अवश्य किया है।

इस प्रक्रिया में गांगुली ने ९४८ ईस्वी के सीयक द्वितीय के हर्सोल अभिलेख में प्रयुक्त राष्ट्रकूट उपाधियों के आधार पर उन्हें मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। उनका यह भी मानना है कि परमार वाक्पति मुंज ने अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ और पृथ्वीवल्लभ जैसी राष्ट्रकूट उपाधियाँ ही धारण की थीं। उन्होंने आइने अकबरी के इस कथन की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया कि परमार वंश के संस्थापक धंजी (धनञ्जय) ने दक्षिण से अपनी राजधानी बदलकर मालवा क्षेत्र पर अधिकार किया। किन्तु इस मत को स्वीकार करने में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यदि परमार

सुप्रथित राष्ट्रकूट राजवंश से संबंधित होते, तो इस बात का गर्व पूर्वक उल्लेख अवश्य करते।

डॉ. राजवंत राव और डॉ. प्रदीप कुमार राव के अनुसार, प्रशस्तिकारों ने धूम और अग्नि के सानिध्य को देखते हुए परमारों को अग्निवंशी मान लिया। उनके अनुसार, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि धूमराज का उल्लेख अपेक्षाकृत परवर्ती अभिलेखों में मिलता है, जबकि नवसाहसांकचरित तथा पूर्ववर्ती अभिलेखों में परमारों की उत्पत्ति आबू पर्वत पर होने वाले वशिष्ठ के यज्ञ से मानी गयी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नवसाहसांकचरित में परमारों की उत्पत्ति से संबंधित जो काव्यात्मक कल्पना की गयी है, उसमें मुख्यतः परमार नाम की व्याख्या को ही दृष्टि में रखा गया है, न कि परमारों की उत्पत्ति की ऐतिहासिक व्याख्या को।

प्रतिपाल भाटिया ने परमारों का इतिहास लिखते हुए हर्सोल अभिलेख में राष्ट्रकूट उपाधियों के प्रयोग का एक कारण यह बताया है कि वे मातृपक्ष से राष्ट्रकूटों से जुड़े हुए थे। उनका यह भी कहना है कि हर्सोल पट्ट मूलतः राष्ट्रकूटों का था, जिसे सीयक द्वितीय ने राष्ट्रकूट राजधानी की लूट में पाया था और उस लेख के प्रारंभिक भागों को बिना हटाए ही उस पर अपना लेख उत्कीर्ण करवा दिया था। इस प्रकार यह एक मिश्रित दान पत्र है, जो राष्ट्रकूट आलेख्य के रूप में प्रारंभ होता है, किंतु सीयक द्वितीय के आलेख्य रूप में इसका अंत होता है।

जहाँ तक आइने अकबरी के उल्लेख का प्रश्न है, यह ग्रंथ बहुत बाद का है और इसमें बताये गए धंजी नामक शासक का अस्तित्व किसी परमार अभिलेख अथवा परमार कालीन किसी साहित्यिक कृति से प्रमाणित नहीं होता।

परमार शब्द का अर्थ और इसकी उत्पत्ति की व्याख्या अग्निकुंड से उत्पन्न एक क्षत्रिय योद्धा से होती है, जिसे शत्रु को मारने के लिए गुरु वशिष्ठ ने उत्पन्न किया। इसी प्रकार से चौहान, प्रतिहार और चालुक्य वंश की उत्पत्ति भी मानी गई है। लेकिन अग्निकुल क्षत्रियों को महान छत्तीस क्षत्रियों की सूची में भी शामिल किया गया है, जिसमें सूर्यवंशीय और चंद्रवशीय क्षत्रिय भी शामिल थे।

बाद में यह सूची आगे बढ़ती रही और यही एक कुल की कई शाखाएं बनती रही। बहुत से कुल अपने पूर्वज रघुवंशियों को मानते हैं, जो सूर्यवंशीय थे। अवंति नरेश सम्राट विक्रमादित्य ने प्रभु श्रीराम को अपना पूर्वज माना है, और मालवा के परमार ने सम्राट विक्रमादित्य को अपना पूर्वज माना है। इससे एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है

कि परमार कुल को अग्निकुंड से उत्पन्न मानने के कारण अग्निवंशीय भी मान लिया गया।

इनके वंशजों ने अपने प्राचीन वंश सूर्यवंश को न मानकर अग्निवंश का होना मान लिया। इसलिए अग्निवंश का इतिहास वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता है। ऊपर वर्णित है कि परमार एक उपाधि की तरह ही थी, जिसे अनेक शासकों के द्वारा अपनाया गया। जैसे राजा मुंज, सीयक द्वितीय के दत्तक पुत्र थे, जो उन्हें मुंज घास पर मिले थे। मुंज, राजा बनने के बाद परमार मुंज हो गए।

इतिहासकारों के अनुसार, परमार उपाधि सर्वप्रथम मालवा के राजाओं के द्वारा धारण की गई और बाद में इनके वंशजों का अन्य क्षेत्रों में विस्तार हुआ। कालांतर में परमार राजाओं के वंशजों और उनके ठिकानों या राज्यों के आधार पर उनमें कई शाखाएं बनती रही।

कतिपय भारतीय ग्रन्थों में परमारों को ब्रह्म-क्षत्र कुलीन कहा गया है। हलायुध की पिंगलसूत्रवृत्ति में इस **ग्रन्थ** के लेखक ने अपने ग्रन्थ के आश्रयदाता वाक्पति मुंज को ब्रह्म-क्षत्र कुलीन कहा है। मूलतः वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे, जो आगे चलकर क्षत्रिय वृत्ति धारण करने के बाद वशिष्ठ गोत्रीय क्षत्रिय के रूप में स्वीकृत हुए।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उदयपुर प्रशस्ति में इस राजवंश के संस्थापक उपेन्द्रराज को द्विजवर्गरत्न कहा गया है।

8.1 सनातनी हिंदुत्व के संरक्षक: पंवार (परमार) क्षत्रिय

गुरु वशिष्ठ ने पवित्र पर्वत आबूगढ़ में यज्ञ कर जनकल्याण के लिए अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति की थी। यह कथा भले ही पौराणिक हो, लेकिन गुरु के उद्देश्य को उनके परम शिष्य और उनके वंशजों ने अवश्य ही पूरा किया है। पंवार वंशीय राजा विक्रमादित्य और राजा भृतहरि ने विदेशी शकों को खदेड़कर उज्जैन नगरी में सनातनी धर्म को पुनर्स्थापित किया।

परमार वंशीय गुरु भृतहरि ने समाज को भक्ति, ध्यान और अध्यात्म की शिक्षा दी। परमार सम्राट शालिवाहन ने सनातनी हिंदू धर्म के संवर्धन के लिए अनेक कार्य किए। सम्राट विक्रमादित्य के द्वारा विक्रम संवत और सम्राट शालिवाहन के द्वारा शक संवत पंचांग की शुरुआत की गई। पहली शताब्दी के आसपास राजपुताना और मालवा में परमार/पंवार क्षत्रियों का परचम लहरा चुका था। मध्यकाल में मालवा में राजा उपेंद्र,

राजा शीयक, राजा मुंजदेव, राजा भोज, राजा नरवर्मन देव, राजा उदियादित्य, राजा जगदेव, राजा लक्ष्मण देव जैसे अनेक वीर पुरुषों ने सनातनी धर्म और संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार किया।

राजा भोज द्वारा धार में धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कला और साहित्य के सृजन, विकास तथा प्रचार-प्रसार हेतु संस्कृत विश्वविद्यालय, भोजशाला की स्थापना की गई थी। उन्होंने पूर्वज और आराध्य भगवान श्रीराम की नगरी अयोध्या का पुनर्निर्माण किया था। राजा भोज ने मुस्लिम आक्रांताओं को देश से बाहर खदेड़ दिया और मालवा में एकल पत्थर से सबसे बड़े शिवलिंग की स्थापना कर भगवान सोमनाथ को भोजपुर में स्थापित कर भारतवर्ष को संदेश दिया कि यह सनातनी हिंदुओं का देश है।

सम्राट विक्रमादित्य और सम्राट भोजदेव के द्वारा चारों धामों का विकास किया गया। प्राचीन सनातनी मंदिरों का पुनर्निर्माण किया गया और अनेक मंदिरों की स्थापना की गई। सम्राट विक्रमादित्य और उनके राजा मुंजदेव ने भी अनेक मंदिरों का निर्माण कर गुरु वशिष्ठ के स्वप्नों को पूरा किया और परमार वंशियों को ब्रह्मक्षत्रिय माना। राजा जगदेव पंवार के ज्ञान और दानशीलता के शौर्य की कहानियां आज भी पूरे देश में गाई जाती हैं। उनकी आराध्य देवी मां कालिका के प्रति प्रेम और भक्ति में अपने शीश को उनके चरणों में अर्पित करने की गाथा उन्हें दानवीर कर्ण के समकक्ष खड़ा कर देती है।

पंवार वंशियों ने हमेशा गुरु वशिष्ठ की संकल्पना को पूरा किया है और आज भी सनातनी हिंदू धर्म की रक्षा और संवर्धन के लिए हर एक पंवार योद्धा सज्ज है। अपने पूर्वज राजा परमार, जिन्हें इतिहासकार राजा धूमराज भी मानते हैं, ने अपने गुरु वशिष्ठ के धर्म की रक्षा के स्वप्न को पूरा किया था। कालांतर में उनके अनुयायियों के महान कर्मों के कारण ही कहा गया कि पृथ्वी की शोभा पंवारों से है। आज उनके वंशजों से भी यही अपेक्षा है कि वे अपने कुलगुरु और पूर्वजों के आदर्श और संस्कारों को धारण करें और सनातनी धर्म के संरक्षण और संवर्धन के प्रयास में एकीकृत होकर जुट जाएं।

8.2 विक्रमसेन: विक्रमादित्य प्रथम

प्राचीन काल में अवन्ति राज्य एक अत्यधिक शक्तिशाली राज्य था, जिसमें विभिन्न क्षत्रिय कुलों का समय-समय पर शासन रहा। पोवारों की उत्पत्ति पश्चिमी अखंड भारत के पौर, अर्थात प्राचीन नगर प्रमुख क्षत्रिय राजाओं से मानी जाती है। राजा पोरस का पुरु राजवंश इस क्षेत्र का सबसे शक्तिशाली राजवंश था। बाद में इनका विस्थापन

अखंड भारत के पूर्व और दक्षिण में हुआ। अवन्तिका या अवन्ति, जिनकी प्रमुख राजधानियाँ उज्जैन और महिष्मति थीं, में इनके एक वंशज राजा शासन करते थे।

राजा गन्धर्वसेन के पुत्र राजा भरथरी और उनके भाई विक्रमसेन, जिन्हें विक्रमादित्य प्रथम कहा जाता है, ने अवन्ति राज्य को एक शक्तिशाली राज्य में तब्दील किया। इन्हें ही प्राचीन पंवार या परमार शासक माना जाता है। हालांकि इतिहासकार राजा उपेंद्र को मालवा के परमार वंश का संस्थापक मानते हैं, लेकिन उनकी वंशावली का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनका संबंध सम्राट विक्रमादित्य से जुड़ा था। बाद में गुप्त साम्राज्य के शासकों ने भी उज्जैन पर शासन किया और सम्राट समुद्रगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया था।

8.2.1 विक्रमादित्य एक उपाधि

इतिहास में अनेक राजाओं ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। प्रश्न यह उठता है कि विक्रमादित्य नाम एक उपाधि कैसे बना। अगर हम इतिहास में देखें, तो यह पता चलता है कि शब्द विक्रमादित्य, पंवार सम्राट विक्रमसेन के नाम "विक्रम" और "आदित्य" शब्दों से मिलकर बना है। अवंति नरेश गंधर्वसेन के पुत्र और राजा भरथरी के छोटे भाई विक्रमसेन ने शकों को भारतभूमि से बाहर खदेड़कर स्वतंत्र और विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने इस विजय दिवस के अवसर पर कालगणना पंचांग "विक्रमसंवत" की स्थापना की थी। सिहासन बत्तीसी पर बैठकर न्याय करने की और विक्रम बेताल नामक उनकी अनेक कहानियाँ आज भी जन-जन को प्रेरणा देती हैं। उन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, और यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि उनके बाद के अनेक राजाओं ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की थी।

गुप्त शासक समुद्रगुप्त विक्रमादित्य भी उज्जैन के शक्तिशाली शासक थे और उनके दरबार में कालिदास तथा अन्य नवरत्नों का वास था। ऐतिहासिक तथ्यों और उनके कालक्रम के अनुसार, यह तथ्य सत्य हैं, और गुप्त शासक का कालक्रम ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। हाल के वर्षों में उज्जैन में विक्रमादित्य और उनके नवरत्नों की प्रतिमाओं का निर्माण किया गया है, जो गुप्त कालीन सम्राट विक्रमादित्य के दरबार को दर्शाते हैं, न कि पोवार सम्राट विक्रमसेन विक्रमादित्य को। हालांकि इतिहासकारों ने उज्जैन के इस महान शासक पर बहुत कम लिखा है, लेकिन विदेशी लेखकों ने उनके इतिहास पर विस्तृत विवरण दिया है।

कई लोग सम्राट विक्रमादित्य के बारे में प्रामाणिक इतिहास न होने की बात करते हैं, लेकिन यह सत्य नहीं है। सन 1836 में कलकत्ता से प्रकाशित एक किताब में स्पष्ट रूप से लिखा है कि सम्राट विक्रम, जिन्होंने विक्रम संवत की शुरुआत की थी, वे परमार (Prumura) जाति से थे, जिसे पोवार (Powar) या पुआर (Puar) भी कहा जाता था। इनके वंशज सम्राट शालीवाहन भी शक्तिशाली राजा हुए थे। जहाँ उन्हें प्रमार या पोवार राजपुत या क्षत्रिय लिखा गया है, वहीं कुछ स्थानों पर उन्हें तुवर (Tuar) राजपुत भी लिखा मिलता है।

राजा गन्धर्वसेन के पुत्र राजा भरथरी और बाद में उनके भाई विक्रमसेन, जिन्हें विक्रमादित्य प्रथम कहा जाता है, ने अवन्ति राज्य को एक शक्तिशाली राज्य बना दिया। इन्हें ही प्राचीन पंवार या परमार शासक माना जाता है। हालांकि इतिहासकार राजा उपेंद्र को ही मालवा के परमार वंश का संस्थापक मानते हैं, लेकिन उनकी वंशावली का अवलोकन करें तो उनका अतीत सम्राट विक्रमादित्य से जुड़ता है। इसके बाद, गुप्त शासकों का भी उज्जैन पर शासन था और राजा चंद्रगुप्त द्वितीय ने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी।

राजा गन्धर्वसेन के पुत्र राजा भरथरी और बाद में उनके भाई विक्रमसेन, जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और अवन्ति राज्य को शक्तिशाली राज्य बना दिया था। इन्हें ही प्राचीन पंवार या परमार शासक माना जाता है। हालांकि इतिहासकार राजा उपेंद्र को ही मालवा के परमार वंश का संस्थापक मानते हैं, लेकिन उनकी वंशावली का अवलोकन करें तो उनका अतीत सम्राट विक्रमादित्य से जुड़ता है। बाद में गुप्त शासकों का भी उज्जैन पर शासन था और राजा चंद्रगुप्त द्वितीय ने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी।

इतिहास में अनेक राजाओं ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। अब यह सवाल उठता है कि विक्रमादित्य नाम एक उपाधि कैसे बना। यदि हम इतिहास में देखें, तो यह पता चलता है कि शब्द "विक्रमादित्य", पंवार सम्राट विक्रमसेन के नाम "विक्रम" और "आदित्य" शब्द से मिलकर बना है। अवंति नरेश गंधर्वसेन के पुत्र और राजा भरथरी के छोटे भाई विक्रमसेन ने शकों को भारतभूमि से बाहर खदेड़कर स्वतंत्र और विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने इस विजय दिवस के अवसर पर कालगणना पंचांग "विक्रमसंवत" की स्थापना की थी। सिहासन बत्तीसी पर बैठकर न्याय करने की और विक्रम बेताल नाम से उनकी अनेक कहानियाँ आज भी जन-जन

को प्रेरणा देती हैं। उन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी और यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि उनके बाद के अनेक राजाओं ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की थी।

8.3 उपेन्द्रराज पंवार

मालवा के परमार राजवंश का प्रारंभिक शासक उपेन्द्रराज था, हालांकि वाक्पति मुंज के लेखों में प्रथम शासक के रूप में कृष्णराज का उल्लेख मिलता है, परंतु अधिकांश विद्वानों ने इस कृष्णराज को उपेन्द्रराज का पर्याय माना है। उपेन्द्रराज का राज्याभिषेक ७९१ ईस्वी में हुआ। उदयपुर प्रशस्ति में कहा गया है कि उसने अपने पराक्रम से राजत्व का उच्च पद प्राप्त किया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उपेन्द्रराज ने अपने समय की विक्षुब्ध राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर मालवा क्षेत्र में अपनी सत्ता स्थापित की। उस समय नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्रों पर प्रभुत्व को लेकर गुर्जर प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के बीच संघर्ष चल रहा था। उपलब्ध प्रमाणों जैसे भोज की ग्वालियर प्रशस्ति, स्कन्द पुराण, भोजकालीन बारतों संग्रहालय अभिलेख और महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि मालवा और सौराष्ट्र पर गुर्जर प्रतिहारों का अधिकार था।

इस संदर्भ में यह तर्कसंगत प्रतीत होता है कि उपेन्द्रराज ने अपनी राजनीतिक शक्ति का विकास प्रतिहार सम्राट नागभट्ट द्वितीय के अधीन एक सामंत के रूप में प्रारंभ किया होगा। गांगुली महोदय का यह मत कि उपेन्द्रराज ने राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के मांडलिक के रूप में शासन किया, स्वीकार करना कठिन है।

उपेन्द्रराज की सामरिक उपलब्धियों के विषय में नवसाहसांकचरित और अन्य परमार अभिलेखों में कोई महत्वपूर्ण सूचना नहीं मिलती, परंतु उसे प्रजा पर लगने वाले करों में कमी करने का श्रेय दिया गया है। संभव है कि उसने लोकप्रियता प्राप्त करने और अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए यह नीति अपनाई हो।

नवसाहसांकचरित से यह भी ज्ञात होता है कि उसकी राजसभा में सीता नाम की एक कवयित्री थी, और उसने अनेक वैदिक यज्ञों का संपादन भी किया। उपेन्द्रराज ने उज्जैनी में श्रेष्ठ शासन व्यवस्था लागू की और प्रजा के कल्याण के अनेक कार्यक्रम चलाए। उन्होंने ८१८ ईस्वी तक मालवा पर शासन किया, और उनके पश्चात वैरिसिंह प्रथम मालवा के राजा बने।

8.4 उज्जैन नरेश, पंवार वैरीसिंह प्रथम

परमार (पंवार) शासक वैरीसिंह प्रथम, महाराज उपेन्द्र के बाद मालवा के शासक बने। उन्होंने ८१८ ईस्वी में उज्जैन नरेश के रूप में शासन की बागडोर संभाली और ८४३ ईस्वी तक शासन किया। महाराज उपेन्द्र द्वारा परमार वंश की नींव पुनः स्थापित करने के पश्चात वैरीसिंह ने उसे स्थायित्व प्रदान किया और वंश की गरिमा को और अधिक बढ़ाया।

वैरीसिंह प्रथम ने अपने शासनकाल में मालवा का विस्तार किया और उज्जैन को सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से समृद्ध किया। उनके शासन में उज्जैन में कई महत्वपूर्ण निर्माण कार्य संपन्न हुए, जिससे इस नगर को एक नई पहचान प्राप्त हुई। कुलदेवी माँ हरसिद्धि और माँ गढ़कालिका के आशीर्वाद से सम्राट विक्रमादित्य की यह नगरी पुनः समृद्धि के शिखर तक पहुँच सकी।

उनके शासनकाल में उज्जैन में केवल धार्मिक स्थलों का ही पुनर्निर्माण नहीं हुआ, बल्कि प्रशासनिक और सामाजिक संरचनाओं में भी महत्वपूर्ण सुधार किए गए। इसके परिणामस्वरूप उज्जैन फिर से एक प्रमुख सांस्कृतिक और धार्मिक केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वैरीसिंह प्रथम द्वारा किए गए इन सुधारों और निर्माण कार्यों ने परमार वंश के साम्राज्य को मजबूती प्रदान की और इतिहास में एक नया गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ा।

8.5 उज्जैन नरेश वाकपति मुंज (पृथ्वी वल्लभ)

पंवार (परमार) वंश के महाप्रतापी राजा वाकपति मुंज, जिन्हें शक्ति, ज्ञान और साहित्य के प्रणेता के रूप में जाना जाता है, परमारों के स्वर्णकाल के निर्माता थे। उनका काल परमार वंश के लिए गौरव और सांस्कृतिक उत्थान का काल माना जाता है। राजा वाकपति मुंज, राजा सीयक के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी थे।

उनके जन्म के विषय में प्रबंधचिंतामणि में एक अनोखी कथा वर्णित है। इस कथा के अनुसार, राजा सीयक को दीर्घकाल तक कोई संतान प्राप्त नहीं हुई थी। एक दिन उन्हें संयोगवश मुंज घास में पड़ा एक नवजात शिशु मिला। उन्होंने उसे घर लाकर उसका पालन-पोषण किया। बाद में सीयक की पत्नी से सिंधुराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, किंतु राजा सीयक ने मुंज के प्रति स्नेह और विश्वास में कोई अंतर नहीं किया। इस

कारण उस बालक का नाम "मुंज" रखा गया और राजा सीयक ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

राजा मुंज ने 'श्री वल्लभ', 'पृथ्वी वल्लभ' और 'अमोघवर्ष' जैसी उपाधियाँ धारण कीं। उनके राजदरबार में अनेक विद्वान और साहित्यकार उपस्थित रहते थे जिनमें 'यशोरूपावलोक' के रचयिता धनिक, 'नवसाहसांकचरित' के लेखक पद्मगुप्त और 'दशरूपक' के रचयिता धनंजय प्रमुख थे।

राजा मुंज एक महान योद्धा भी थे। उन्होंने चालुक्य, हूण और कलचुरी जैसे शक्तिशाली शासकों को परास्त किया। उनके शासन काल में स्थापत्य और जलसंरचना का विशेष विकास हुआ। उन्होंने धार नगरी की वास्तविक स्थापना की थी और वहाँ मुंज सागर तथा मांडू में मुंज तालाब का निर्माण करवाया।

राजा मुंज ने गुजरात में 'मुंजपुर' नामक एक नगर बसाया और उज्जैन, धर्मपुरी तथा माहेश्वर जैसे तीर्थ एवं सांस्कृतिक स्थलों पर कई महत्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण कराया। उनका शासनकाल ९७० से ९९० ईस्वी तक रहा। उनके द्वारा किए गए कार्यों ने न केवल परमार वंश को महान बनाया, बल्कि भारतीय संस्कृति, साहित्य और स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी उन्हें एक विशेष स्थान प्रदान किया।

8.6 माँ सरस्वती के वरदपुत्र: महाराजा भोज

परमार (पंवार) वंश के सबसे महान और प्रसिद्ध शासक महाराजा भोजदेव ने १००० ईस्वी से १०५५ ईस्वी तक धार नगरी से शासन किया। उन्हें "माँ सरस्वती के वरदपुत्र" के रूप में जाना जाता है और उनका योगदान भारतीय संस्कृति तथा साहित्य में अमूल्य और अविस्मरणीय है।

कहा जाता है कि धार की तपोभूमि में राजा भोज ने साधना और तप के माध्यम से माँ सरस्वती को प्रसन्न किया था। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर माँ सरस्वती ने उन्हें साक्षात दर्शन दिए। इस दिव्य अनुभव के पश्चात राजा भोज ने वाग्देवी की दिव्य प्रतिमा स्थापित करने का निश्चय किया और उसका स्थान बना धार की प्रसिद्ध भोजशाला। यह न केवल एक धार्मिक प्रतीक थी, बल्कि राजा भोज के धर्म, साहस और सांस्कृतिक दृष्टिकोण का जीवंत प्रमाण भी बनी।

राजा भोज ने धार, मांडव और उज्जैन में "सरस्वतीकण्ठभरण" नामक विद्या मंदिरों का निर्माण कराया। १०३४ ईस्वी में उन्होंने मनोहर वाग्देवी की प्रतिमा भी

स्थापित की। इन धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से उन्होंने भारतीय ज्ञान, साहित्य और कला के प्रति अपनी गहरी आस्था को दर्शाया।

राजा भोज के शासनकाल में कई महत्वपूर्ण निर्माण कार्य सम्पन्न हुए, जिनमें धार की भोजशाला, मांडव का रानी रूपमती महल और उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर प्रमुख हैं। इन निर्माणों से उनकी स्थापत्य कला और सौंदर्य बोध की स्पष्ट झलक मिलती है।

उनके द्वारा निर्मित भोजपुर का विशाल तालाब और भोपाल नगर की स्थापना विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रारंभ में भोपाल को "भोजपाल" कहा जाता था, जो उनके नाम पर आधारित था। राजा भोज की नीतियाँ, धार्मिक और सांस्कृतिक योगदान तथा निर्माण कार्य मध्यकालीन भारत के इतिहास में उनकी महानता का प्रमाण हैं, जो आज भी हमारी सांस्कृतिक धरोहर में जीवंत हैं।

8.7 महाराजा उदियादित्य पंवार

महाराजा भोजदेव के आकस्मिक निधन के पश्चात मालवा पर संकट के बादल गहराने लगे थे। राजा जयसिंह पंवार ने राज्य की बागडोर तो संभाल ली, परन्तु चालुक्य और कलचुरी शासकों के लगातार आक्रमणों ने राज्य की स्थिति को अत्यंत कठिन बना दिया। उदयपुर प्रशस्ति लेख के अनुसार, परमार वंश में एक नए सूर्य का उदय हुआ, और वह सूर्य महाराजा उदियादित्य पंवार के रूप में प्रकट हुए, जिन्होंने मालवा के गौरव को पुनः स्थापित किया और धारा नगरी को फिर से प्रकाश से भर दिया।

नागपुर शिलालेख के अनुसार, महाराजा भोज के निधन के पश्चात उनके संबंधी महाराजा उदियादित्य ने चालुक्य शासक कर्ण के प्रभाव को समाप्त कर परमार वंश के गौरव को पुनर्स्थापित किया। जैन मान्यताओं के अनुसार, महाराजा उदियादित्य, सम्राट भोजदेव के अनुज थे। उन्होंने १०५९ से १०८८ ईस्वी तक मालवा पर सफलतापूर्वक शासन किया। उनके पुत्र नरवर्मन देव, लक्ष्मण देव तथा जगदेव ने बाद में मालवा और अन्य क्षेत्रों में शासन किया।

महाराजा उदियादित्य अपने पूर्वजों महाराजा मुंज, महाराजा शीयक और महाराजा भोज की भांति ही कला, साहित्य और शिक्षा प्रेमी शासक थे। उन्होंने अपने शासनकाल में विद्या और स्थापत्य को विशेष प्रोत्साहन दिया। १०८०-८१ ईस्वी में

उन्होंने उदयपुर (विदिशा) में प्रसिद्ध नीलकंठेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर प्राचीन भारतीय शिल्पकला का अद्वितीय उदाहरण है।

विदिशा जिले की गंज बासोदा तहसील के समीप स्थित इस मंदिर के प्रमुख स्तंभों में बारह राशियाँ और रवि नक्षत्रों को दर्शाने वाली घंटा-नुमा आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई हैं, जो भगवान सूर्य के बारह नामों से संबंधित हैं। इसकी स्थापत्य कला, धार्मिक महत्ता और ऐतिहासिक विशेषता ने इसे एक अमूल्य धरोहर बना दिया है।

8.8 विदर्भ/मध्यभारत के महाराज लक्ष्मण देव पंवार

महाराज उदयादित्य परमार के पुत्र और महाराजा भोजदेव के भतीजे, राजा लक्ष्मण देव पंवार १०८६ ईस्वी में धार के राजा बने। उनके और उनके भाइयों, राजा जगदेव पंवार और राजा नरवर्मन देव के बीच धार के उत्तराधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। इस विवाद का समाधान एक समझौते के रूप में हुआ, जिसके तहत राजा नरवर्मन देव को धार की रियासत जबकि राजा लक्ष्मण देव को विदर्भ की रियासत सौंपी गई।

१०९४ ईस्वी में राजा लक्ष्मण देव पंवार को नगरधन का राजा बनाया गया। उस समय नगरधन, विदर्भ की राजधानी थी, जो वर्तमान में नागपुर के पास स्थित थी। राजा लक्ष्मण देव ने विदर्भ और आसपास के कई क्षेत्रों को जीत लिया था। उन्होंने राजा भोज के वैभव और पराक्रम को मध्यभारत में पूरी तरह से प्रचारित किया और सनातनी धर्म और संस्कृति को इन क्षेत्रों में फैलाया। हालांकि राजा मुंज और राजा भोज का भी इस क्षेत्र पर अधिपत्य था, लेकिन राजा लक्ष्मण देव पंवार ने ११०४ ईस्वी में स्वयं विदर्भ का शासन संभाला।

उनके भाई, महाराजा जगदेव पंवार भी विदर्भ के चंद्रपुर जिले के चंदुर्गढ़ नामक किले से दक्षिणी भारत और मध्यभारत पर शासन कर रहे थे। राजा लक्ष्मण देव ने ११२६ ईस्वी तक विदर्भ पर शासन किया और उसके बाद राजा जगदेव पंवार ने उत्तर भारत के साथ-साथ इन क्षेत्रों पर भी शासन किया।

आज भी महाराजा भोज और राजा लक्ष्मण देव पंवार के वंशज बड़ी संख्या में महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के इन क्षेत्रों में निवास करते हैं, और परमार पंवार वंश की विजय पताका को लहरा रहे हैं।

8.8 पंवार/परमार वंश के दानवीर, महाप्रतापी और शौर्यवान राजा, जगदेव पंवार का इतिहास

पंवार/परमार वंश के महान दानवीर और महाप्रतापी राजा जगदेव पंवार का नाम भारतीय इतिहास में सदैव प्रतिष्ठित रहेगा। वे उन महान दानियों में से एक हैं, जिनका नाम आज भी सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। बलि, कर्ण और अन्य दानी राजाओं के साथ-साथ राजा जगदेव का नाम दानवीरता के सर्वोच्च उदाहरण के रूप में लिया जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने अपने राज्य और यहां तक कि अपना सिर भी दान में दे दिया था, जिस कारण कलियुग में उन्हें सबसे बड़े दानी के रूप में पूजा जाता है।

संवत ११ इक्कीस, चैत तीज रविवार को एक प्रसिद्ध घटना घटी, जिसमें उन्होंने अपने शीश का दान किया। यह घटना न केवल भारतीय इतिहास, बल्कि भारतीय संस्कृति का भी अनमोल हिस्सा बन गई। जगदेव पंवार, महाराजा उदयादित्य पंवार के छोटे पुत्र थे। पहले तो उनके पिता ने उन्हें राज्य सौंपने की इच्छा जताई थी, लेकिन बड़े भाई के रहते हुए राजा बनने की धार्मिक मंशा के चलते उन्होंने अपना राजपाट त्याग कर गुलबर्गा (कर्नाटक) की ओर रुख किया। वहां उन्हें राजा विक्रमादित्य षष्ठ ने बहुत सम्मान दिया, और वे अपने भाई के समान उन्हें मानते थे।

जगदेव का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण दान उनके सिर का दान था, जिसे उन्होंने गुजरात के शासक, चालुक्य के सिद्धराज जयसिंह के काल में दिया था। इस घटना ने उनकी दानवीरता को और भी ऊंचा बना दिया।

महाराज विक्रमादित्य के नगर में उनकी वंशज श्री उपेन्द्र ने परमार वंश की स्थापना ८०० ई. में की थी। उनके बाद महाराज मुंज और चक्रवर्ती राजा भोज ने परमार/पंवार वंश की महिमा को चरम सीमा तक पहुंचाया। राजा भोज ने मध्यभारत के राजवंशों जैसे कलचुरी राजवंश, रतनपुर, गोंड, हैहय आदि से अच्छे संबंध बनाने की कोशिश की और इन क्षेत्रों पर अपने नियंत्रण की कोशिश की। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद परमार वंश के लिए संकट के बादल छा गए थे।

राजा उदयादित्य देव पंवार (१०६०-१०८७ ई.) ने परमार वंश के पुनर्निर्माण की शुरुआत की और मालवा को चतुराई से चालुक्य, होयसल और कलचुरी राजाओं से सुरक्षित किया। उन्होंने धार को पुनः स्थापित किया और सोने के सिक्के जारी किए। इसके बाद उनके पुत्र राजा लक्ष्मणदेव और राजा जगदेव ने इस गौरवमयी वंश को और

आगे बढ़ाया। राजा जगदेव पंवार ने गुजरात में सोलंकी राजा जयसिंह सिद्धराजा के साथ कई युद्ध लड़े और विजय प्राप्त की। इसके बाद वह वापस गुजरात लौटे, और उनके पिता राजा उदयादित्य ने उन्हें राज्य सौंपने का मन बनाया, लेकिन पारिवारिक उलझनों के कारण उन्होंने अपना राज्यपाट त्याग दिया और भाई नरवर्मन देव को राजा बना दिया। फिर उन्होंने विदर्भ राज्य की ओर रुख किया और मध्यभारत में तत्कालीन शक्तिशाली राजा कल्याणी चालुक्य, राजा विक्रमादित्य VI (१०७६-११२६ ई.) की सेनाप्रमुख बन गए।

राजा जगदेव ने अपनी बुद्धि, शौर्य और पराक्रम से आंध्र, डोरसमुद्रा और अर्बुदा पर्वत के क्षेत्रों को जीत लिया। इसके बाद उन्होंने कर्नाटक के राजा किंग कर्ण, आंध्र के राजा, चक्रदुर्गा और डोरसमुद्रा के राजा होयसल को भी पराजित किया। ११२६ में, कल्याणी चालुक्य राजा विक्रमादित्य VI की मृत्यु के बाद, राजा जगदेव ने स्वतंत्र रूप से शासन करना शुरू किया और पंवार वंश की स्वतंत्र राजशाही की नींव रखी। उन्होंने गढ़ चांदुर (वर्तमान राजुरा तालुका, चंद्रपुर जिला, महाराष्ट्र) को अपनी राजधानी बनाया, जहां से उन्होंने आंध्र, बस्तर, कर्नाटक, विदर्भ और मध्यभारत के क्षेत्रों पर नियंत्रण रखा।

राजा जगदेव के शासनकाल में सात प्रकार के सोने के सिक्के चलाए गए थे, जो आज नागपुर के केंद्रीय संग्रहालय और हैदराबाद के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

इतिहासकारों के मत में भले ही मतभेद हो, लेकिन यह तथ्य स्पष्ट है कि राजा जगदेव पंवार का कार्यक्षेत्र केवल एक स्थान तक सीमित नहीं था। उनका क्षेत्र उत्तर, पश्चिम, मध्य और दक्षिण भारत तक फैला हुआ था।

राजा जगदेव की मृत्यु लगभग ११५१ ई. में मानी जाती है। उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशज राजा जगदेव II ने १२वीं शताब्दी के मध्य तक विदर्भ में शासन किया, लेकिन वे उतने प्रसिद्ध नहीं हो सके। इसके बाद विदर्भ क्षेत्र के कुछ हिस्से गोंड राजाओं के अधीन आ गए। आज भी महाराजा जगदेव पंवार की पूजा महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान, जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में की जाती है। उनका कार्यक्षेत्र विशाल था और वे भारत के विभिन्न हिस्सों में अपने महान कार्यों के लिए याद किए जाते हैं।

सन्दर्भ

1. Asiatic Society of Bengal. *Volume xxxii no. II* (1803).
2. Jenkins, Richard. *Reports on the Territories of the Rajah of Nagpore* (1827).
3. *Census Report* (1868).
4. *Central Provinces' Census* (1872).
5. Shering, M. A. *Hindu Tribes and Castes*, vol. II (1879).
6. *The Gazetteer of the Central Provinces of India* (1870).
7. *Nagpur District Gazetteer* (1908).
8. *Central Provinces District Gazetteer, Bhandara, Volume-A* (1908).
9. *Central Provinces District Gazetteer, District Seoni* (1907).
10. Mc Eldowney, Philip Fredric. *Colonial Administration and Social Developments in Middle India, The Central Provinces, 1861-1921*.
11. *Imperial Gazetteer of India* (1907).
12. *Balaghat District Gazetteer* (1907).
13. *Census of India*, vol. XIII: *Central Provinces Part I: Report* (1901).
14. Thomson, "Report," pp. 134-35, Pars. 63-68.
15. *C.P. Gazetteer* (1870), p. 23.
16. Bloomfield, "Progress," p. 99, part 56.
17. *Census of India*, *Central Provinces and Berar* (1911).
18. *Census of India*, vol. XIII: *Central Provinces. Part I* (1901).
19. *Census of India*, Volume 10, Parts 1-2, p. 188.
20. *Census of India*, *Language chapter*, Volume 11, Part 1, published in 1893, p. 136.

21. *Census of India*, Volume XI, *The Central Provinces, and Feudatories. Part I, The Report* (1891).
22. *The Reports of Nagpur Antiquarian Society*.
23. Sane, Dr. Hemant. "THE DEOGAD-NAGPUR GOND DYNASTY" [Research Paper].
24. पँवार, लखाराम. *धर्मोपदेश* (1892). तुरकर, स्व. श्री लखाराम पँवार, राजस्व निरीक्षक.
25. टेम्भरे, दामोदर (ed.). *पंवार जाति का इतिहास*. बालाघाट.
26. *भोज पत्र, स्मरण ग्रन्थ* (1986).
27. पटले, श्री जयपाल सिंह. *पंवार गाथा* (2006).
28. टेम्भरे, डॉ. ज्ञानेश्वर. *पंवारी ज्ञानदीप* (2011).
29. बिसेन, श्री ऋषि. *पोवारी संस्कृति* (2021).
30. पटले, श्री महेन. *पोवार* (2022).
31. बिसेन, श्री ऋषि. *पोवारी भाषा का परिचय* (2023).
32. *A Compendium of the Caste and Tribes Found in India*, compiled from the (1881) Census Reports for the Various Provinces.
33. Methodist Episcopal Church. *Annual Report of the Missionary Society of the Methodist Episcopal, Volume 105* (1923).
34. *The National Encyclopedia*, Volume II. London: 1855.
35. Karve, सुश्री इरावती. *Anthropometric Measurements of Maharashtra* (1951).
36. *The Tribes and Castes of the Central Provinces of India*, Volume 4.
37. *Anthropological Linguistics*, Volume 7.
38. *जारी किताब कोश विज्ञान सिद्धांत एवं मूल्याङ्कन*. केंद्रीय हिंदी संस्थान (1989).

39. *Central Provinces District Gazetteers*, Volume 3, Part 2 (1927).
40. *Excession List, India*, Volume 18 (1980).
41. *भारत की जनगणना 1901*, Central Provinces (3 volumes).
42. *Central Provinces Ethnological Committee*, 1866-67.
43. Grierson, George Abraham. *Linguistic Survey of India, Sixth Report*, pp. 178-179.
44. चंदबरदाई कृत. *पृथ्वीराज रासो*.
45. नल्ह कृत. *बीसलदेव रासो*, काशी नागरी प्रचारणी सभा (1982).
46. सोमवंशी, भगवानदीन सिंह. *क्षत्रिय वंशावर्ण* (1987).
47. Ganguly, D. C. *History of the Paramara Dynasty*.
48. भाटिया, प्रतिपाल. *The Parmaras* (c. 800-1305 A.D.).
49. राव, डॉ. राजवन्त और डॉ. प्रदीप कुमार राव. *गुप्तोत्तर युगीन भारत का राजनीतिक इतिहास (550 ईस्वी से 1200 ईस्वी तक)*.
50. पंवार, श्री कुंवरलाल. *मालवा क्षेत्र के पंवार समाज की उत्पत्ति* (शाजापुर).
51. *The Cyclopedia of India and of Eastern and Southern Asia*, Volume 2.
52. Sarkar, Jadunath. *History of Aurangzib*, Vol. V, p. 409.
53. Eyre, Chatterton. *The Story of Gondwana* (1916).
54. *L.C. Classification: Additions and Changes*, p. 87. Library of Congress, Cataloging Policy and Support Office, 1996.
55. Croydon, Birdhurst. *Annals and Antiquities of Rajasthan*. 1829.
56. Shah, Tribhuvandas. *Ancient India*. 1940. Page 235.

“इतिहास वह आलोकित दीपक है जो न केवल हमें भूतकाल की घटनाओं से अवगत कराता है, बल्कि वर्तमान में सही निर्णय लेने और भविष्य को दिशा देने में भी सहायक होता है। यह हमें हमारे पूर्वजों के अनुभवों, संघर्षों और आदर्शों से जोड़ता है, जिससे हम उनके त्याग और बलिदानों को समझ सकें। संस्कृति समाज की आत्मा है, जो उसकी विशिष्ट पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखती है। जैसे पुष्प की पहचान उसकी

सुगंध से होती है, वैसे ही समाज की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। अतः इतिहास और संस्कृति को जानना केवल ज्ञान नहीं है, यह एक उत्तरदायित्व है, जो हमें अपनी अस्मिता के संरक्षण, शाश्वत विकास और आत्मिक उन्नयन की दिशा में प्रेरित करता है।”

------ऋषि बिसेन

मध्य भारत में पंवार (पोवार) समाज

978-93-342-7498-1